नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 40



आगम ४५

“कल्प(बारसा)सूत्रं” मूलं

२४.चतु:शरण, २८.तंदुलवैचारिक, ३०.गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति:

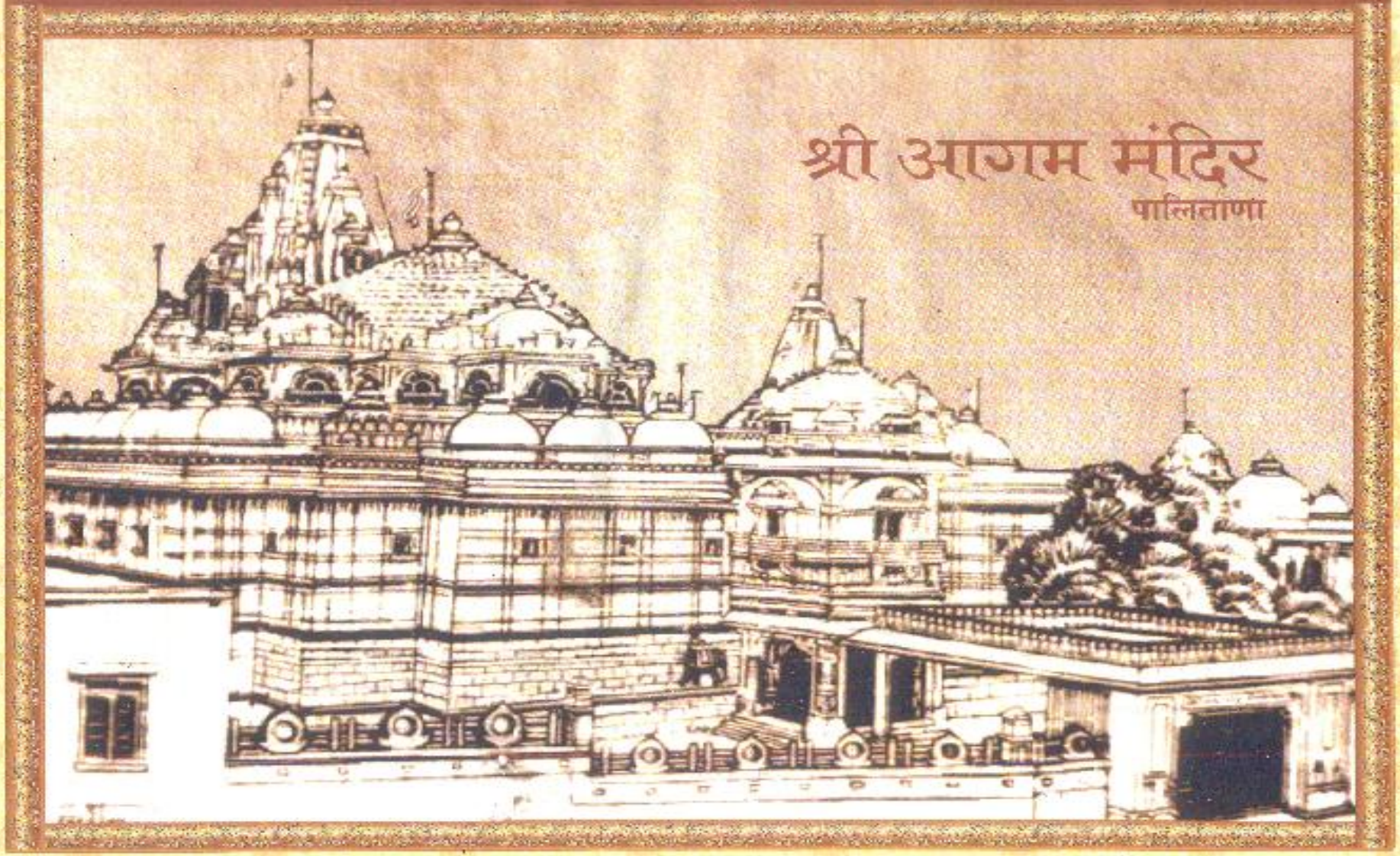
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

‘वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था’ पालिताणा

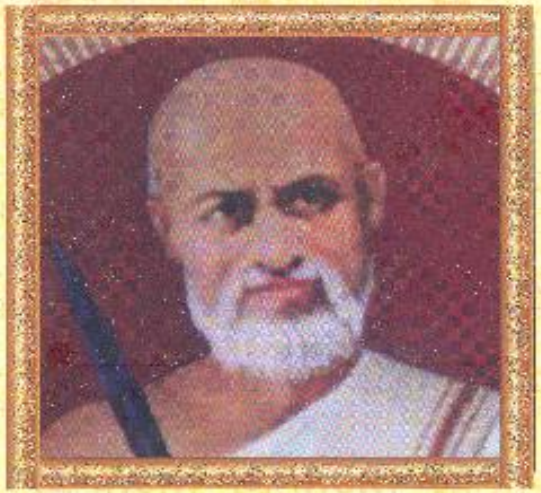
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

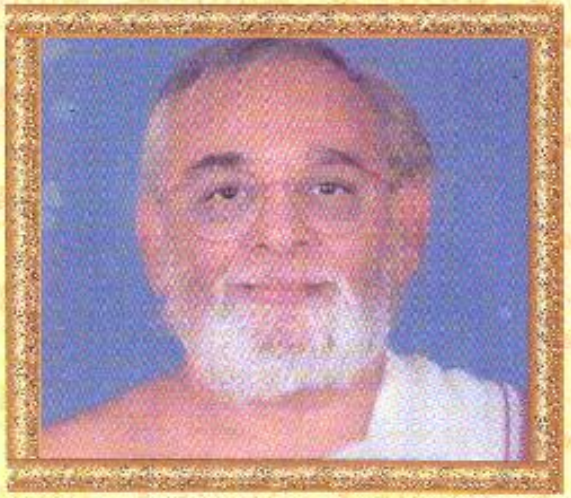
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-४०] कल्प/बारसा-सूत्र, चतु:शरण, तंदुलवैचारिक, गच्छाचार

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

["दशाश्रुतस्कंध" छेदसूत्र अन्तर्गत् एक अध्ययन] **"कल्प(बारसा)सूत्रं" मूलं**

+ सवृत्तिक प्रकीर्णक आगम सूत्राणि (त्रयम्)

२४.चतु:शरण, २८.तंदुलवैचारिक, ३०.गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति:

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-40

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

ंध

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है , फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये , तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा , सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे , उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी , जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली , बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही , साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो , मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी , [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना | *** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ | *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य , शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

*** *मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

भाग-४०-अनुक्रमणिका

'कल्प (बारसा)' सूत्रस्य विषयानुक्रम

मूलांक:	विषय	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय	पृष्ठांक:
००१	भ० महावीर-आदि चरित्रं	०१२			स्थवीरावलि	११०			सामाचारी	१२६
०००	नमस्कार पठनं	०१२		००१	भ० महावीरस्य च्यवनं	०१३		०२४	भ० महावीरस्य गर्भ-संक्रमणं	०२७
०३३	१४ स्वप्नफ़लम्	०३३		०८८	भ०महावीर-जन्मस्य पूर्व-पश्चात स्थिते: वर्णनं	०५७		१०३	भ० महावीरस्य नाम-कथनं	०६६
११०	भ० महावीरस्य दीक्षा	०६९						११५	भ० महावीरस्य केवलज्ञान	०७३
१२०	भ० महावीरस्य केवलज्ञान एवं चातुर्मासानां वर्णनं	०७७		१२३	भ० महावीरस्य निर्वाणं	०७८		१३३	भ०महावीरस्य श्रमणादि संपदा	०८१
				१४९	भ० पार्श्वनाथ-चरित्रं	०८५		१७०	भ० नेमिनाथ-चरित्रं	०९२
२०५	भ० आदिनाथ-चरित्रं	१०२		२१४	स्थवीरावले: वर्णनं	११०		२६३	सामाचारी-वर्णनं	१२६

मूलाङ्का: ६३ (२४) 'चतु:शरण' प्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रम दीप-अनुक्रमा:

मूलांक::	गाथा	पृष्ठांक:		मूलांक:	गाथा	पृष्ठांक:		मूलांक:	गाथा	पृष्ठांक:
००१	आवश्यक-अर्थाधिकार:	१५०		००८	मंगल-आदि	१५५		०१०	चतु:शरणम्	१५६
०४९	दुष्कृत् गर्हा	१८१		०५५	सुकृत् अनुमोदना	१८४		०५९	उपसंहार:	१८६

मूलाङ्का: २०+१३९ (२८) 'तन्दुलवैचारिक' प्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रम दीप-अनुक्रमा:

मूलांक:	सूत्र//गाथा	पृष्ठांक:		मूलांक:	सूत्र//गाथा	पृष्ठांक:		मूलांक:	सूत्र//गाथा	पृष्ठांक:
००१	मङ्गलं-द्वाराणि	१९१		००४	गर्भ-प्रकरणं	१९५		०४३	जीवस्य दश-दशा	२२३
०५८	धर्मोपदेश: एवं तस्य फ़लम्	२५३		०६५	देहसंहननं-आहारादि	२५३		०७५	काल-प्रमाणं	२५४
०९६	अनित्य-अशुचित्वादि	२७५		११७	उपदेश:, उपसंहार:	२७६		---	----------	

मूलाङ्का: १३७ (३०) 'गच्छाचार' प्रकीर्णकसूत्रस्य विषयानुक्रम दीप-अनुक्रमा:

मूलांक:	गाथा:	पृष्ठांक:		मूलांक:	गाथा:	पृष्ठांक:		मूलांक:	गाथा:	पृष्ठांक:
००१	मङ्गलं-आदि:	३०४		००३	गच्छ-संवसमानस्य-गुणा:	३०५		००७	सूरि-स्वरुपस्य वर्णनं	३०६
०४१	गुरू-स्वरुपस्य वर्णनं	३२८		१०७	आर्या-स्वरुपस्य वर्णनं	३६८		१३४-१३७	उपसंहार	३८२

['कल्प-बारसासूत्र - मूलं] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

पूज्यपाद आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) के संशोधन एवं संपादन से सन १९१४ (विक्रम संवत १९७०) में इस प्रत का संशोधन एवं संपादन करके प्रकाशन करवाया | "दशाश्रुस्कन्ध" नामक छेदसूत्र, जो की ३४ वा आगमसूत्र है, उस सूत्र का आठवाँ अध्ययन, जिसे हम "कल्पसूत्र" याने "बारसासूत्र" के नामसे जानते है, जिस सूत्र का स्वयम् अपना एक स्थान जैन जगतमे रहा है| इसका मुद्रण "देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार" से हुआ|

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा 'प्रत' (पोथी) स्वरुपमे प्रकाशित साहित्य के प्रति लोगो का अधिक आदर देखकर हमने प्रताकारमे मुद्रित ४५ आगम [+ २ वैकल्पिक आगम] के Net Publications के साथ-साथ ये कल्पसूत्र भी पुन:संपादित कर दिया | अलबत हमे एक बात का अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि काल्प(बारसा)सूत्र के बहोत प्रकाशन हुए है , एक-दो प्रकाशन को छोडकर बाकी सभी प्रकाशन प्राय: सचित्र प्रकाशित हुए है |

एक स्पेशियल फोरमेट बनवा कर हमने बीचमे पूज्यश्री संपादित पृष्ठो को ज्यों के त्यों रख दिए , ऊपर शीर्षस्थानमे इस स्प्प्तर का नाम और साथमे मूलसूत्र या गाथाजो जहां प्राप्त है उसके क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र या गाथा चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे गुजराती, इंग्लिश आदि प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है , इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रो के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जहां पर कल्पसूत्र के मुख्य तीन विभाग देकर प्रथम विभाग अन्तर्गत् विविध विषयो को नाम-निर्देश सह प्रदर्शित कर दिये है | और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है , जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते अध्ययन या विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठो के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-३९ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

१, [२४- 'चतु:शरण' - मूलं एवं विजयविमलगणि विवृत्ता अवचूर्णि:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत "सावचूर्णिकं श्री महावीरहस्तदीक्षित-वीरभद्रमुनि प्रणीतं चतु:शरणप्रकीर्णकं " नामसे प्रकाशित हुई , इस प्रतमे (आगम-२४) 'चतु:शरणं' नामक प्रकीर्णक-१ एवं विजयविमलगणि विवृत्ता अवचूर्णि सम्मिलित है इसके आद्य संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

२, [२८-'तन्दुलवैचारिक' - मूलं एवं विजयविमलगणि गणि विवृत्ता अवचूर्णि:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत "श्रुतस्थविरदृब्ध तन्दुलवैचारिकप्रकीर्णकम्" नामसे प्रकाशित हुई , इस प्रतमे (आगम-२ ८) 'तंदुलवैचारिक' नामक प्रकीर्णक-५ एवं वानर्षि गणि विवृत्ता अवचूर्णि: सम्मिलित है इसके आद्य संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

३, [३०-'गच्छाचार - मूलं एवं विजयविमलगणि विवृत्ता वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत "श्रीमद् गच्छाचारप्रकीर्णकम्" नामसे प्रकाशित हुई, इस प्रतमे (आगम-३०) 'गच्छाचार नामक प्रकीर्णक-७ एवं वानर्षि विवृत्ता वृत्ति: सम्मिलित है इसके आद्य संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब | इस प्रत को पूज्य आचार्यदेव श्री सागरानन्दसूरीश्वरजी ने सन १९२३ मे अर्थात् विक्रम संवत १९८० मे आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशीत करवाई थी |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर मूलसूत्र या गाथा के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र या गाथा चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रो के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है , जिसमे प्रत्येक विषय-आदि लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है , जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | कई-कई पृष्ठो के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है, जहां उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन-भूल सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

.....मुनि दीपरत्नसागर

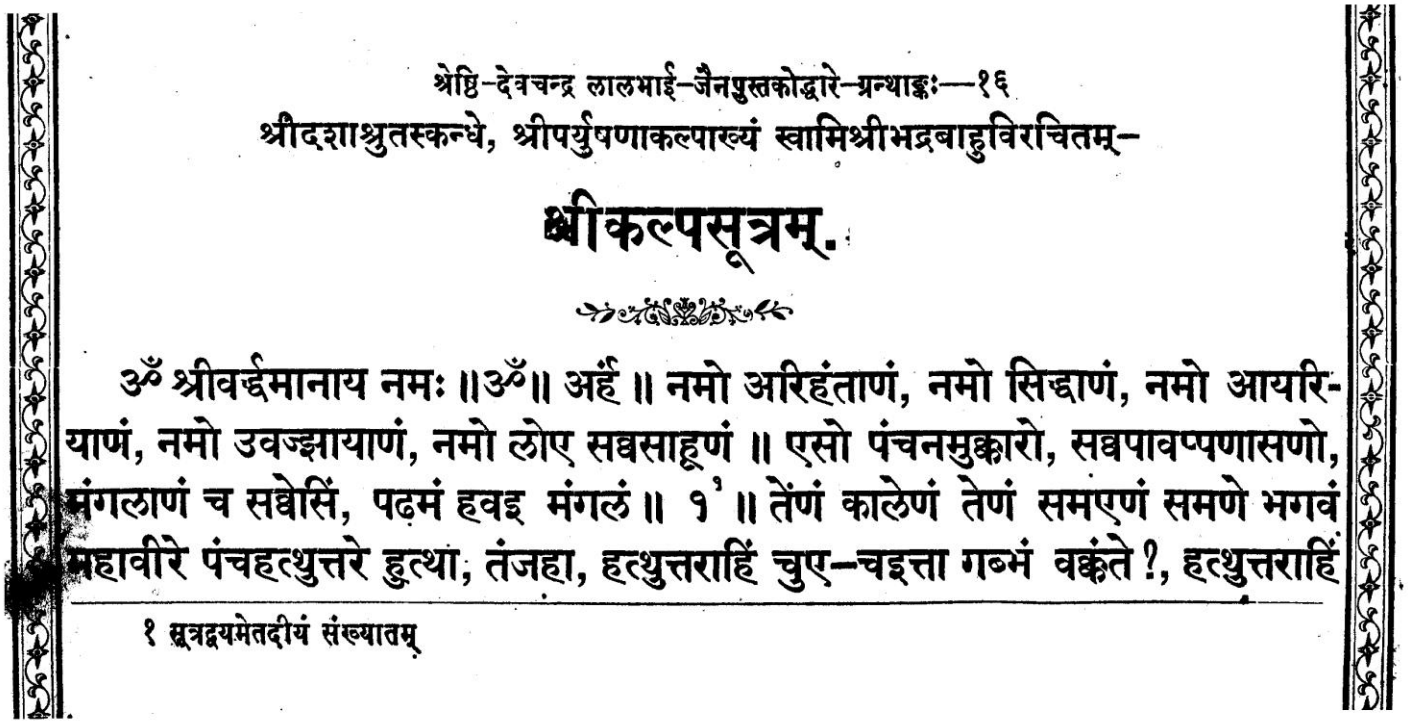
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[१] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१]

दीप अनुक्रम [०]



श्रेष्ठि-देवचन्द्र लालभाई-जैनपुस्तकोद्धारे-ग्रन्थाङ्कः—१६

श्रीदशाश्रुतस्कन्धे, श्रीपर्युषणाकल्पाख्यं स्वामिश्रीभद्रबाहुविरचितम्-

श्रीकल्पसूत्रम्.

ॐ श्रीवर्द्धमानाय नमः ॥ॐ॥ अर्हं ॥ नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं ॥ एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १[1] ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे हुत्था, तंजहा, हत्थुत्तराहिं चुए-चइत्ता गब्भं वक्कंते ?, हत्थुत्तराहिं

१ सूत्रद्वयमेतदीयं संख्यातम्

मंगल-अर्थे नमस्कार-पठनं,

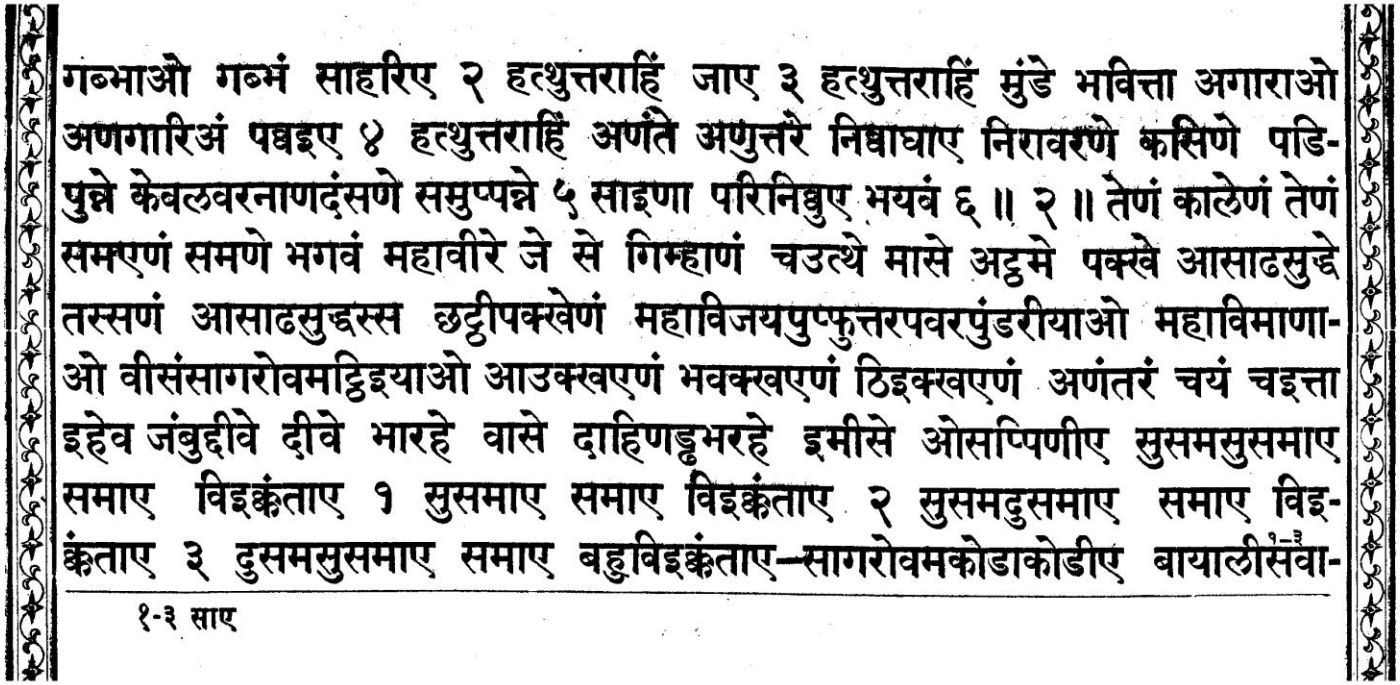
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[२] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२]

दीप अनुक्रम [१]



कल्प० ॥ १ ॥

गब्भाओ गब्भं साहरिए २ हत्थुत्तराहिं जाए ३ हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ४ हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ५ साइणा परिनिव्वुए भयवं ६ ॥ २ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्सणं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं महाविजयपुप्फुत्तरपवरपुंडरीयाओ महाविमाणाओ वीसंसागरोवमट्ठिइयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए १ सुसमाए समाए विइक्कंताए २ सुसमदुसमाए समाए विइक्कंताए ३ दुसमसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए–सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसंवा-[१-३]

१-३ साए

बारसो

॥ १ ॥

भ० महावीरस्य च्यवनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३]

दीप अनुक्रम [२]

ससहस्सेहिं ऊणिआए पंचहत्तरिवासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं–इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खागकुलसमुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहिं, दोहि य हरिवंसकुलसमुप्पन्नेहिं गोअमसगुत्तेहिं, तेवीसाए तित्थयरेहिं विइक्कंतेहिं, समणे भगवं महावीरे चरिमतित्थयरे[1] पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठे, माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारिआए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥ ३ ॥ समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आविहुत्था–चइस्सामित्ति जाणइ, चयमाणे न याणइ, चुएमि त्ति जाणइ ॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते, तं रयणिं च णं सा देवाणं-

१ चरिमे

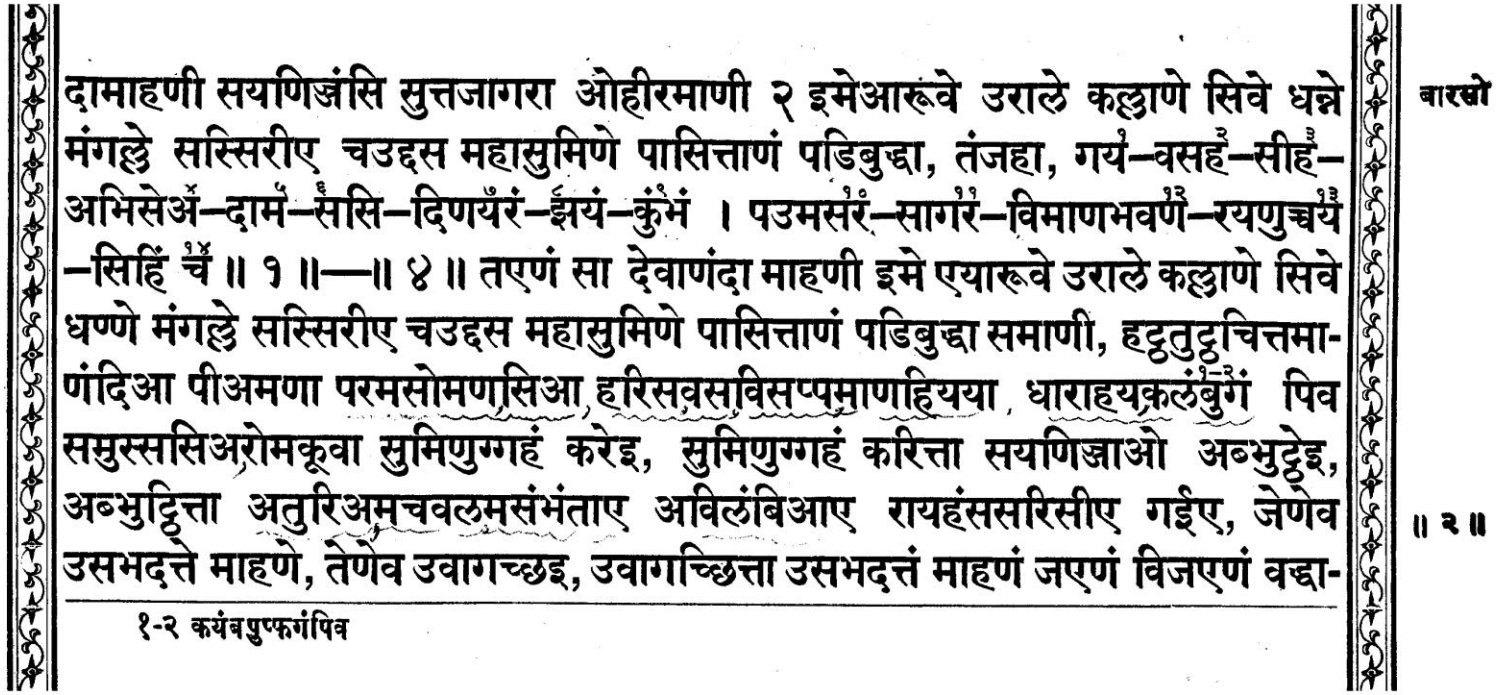
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[४] / गाथा.||१|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४] + ||१||

दीप अनुक्रम [३-५]



कल्प० ॥ २ ॥

दामाहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमेआरूवे उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा, तंजहा, गय[1]–वसह[2]–सीह[3]–अभिसेअ[4]–दाम[5]–ससि[6]–दिणयर[7]–झयं[8]–कुंभं[9] । पउमसर[10]–सागर[11]–विमाणभवण[12]–रयणुच्चय[13]–सिहिं[14] च[15] ॥ १ ॥—॥ ४ ॥ तएणं सा देवाणंदा माहणी इमे एयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धण्णे मंगल्ले सस्सिरीए चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी, हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ पीअमणा परमसोमणसिआ हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलंबुगं[1-2] पिव समुस्ससिअरोमकूवा सुमिणुग्गहं करेइ, सुमिणुग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरिअमचवलमसंभंताए अविलंबिआए रायहंससरिसीए गईए, जेणेव उसभदत्ते माहणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उसभदत्तं माहणं जएणं विजएणं वद्धा-

१-२ कयंबपुप्फगंपिव

बारसो ॥ २ ॥

देवानंदा दृष्ट १४ स्वप्नानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [५]

दीप अनुक्रम [६]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

वेइ, वद्धावित्ता सुहासणवरगया आसत्था वीसत्था करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥ ५ ॥ एवं खलु अहं देवाणुप्पिआ ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमेआरूवे उराले जाव सस्सिरीए चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा, तंजहा, गय–जाव–सिहिं च ॥ ६ ॥ एएसिं णं उरालाणं जाव चउदसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? तएणं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एअमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हिअए धाराहयकलंबुअंपिव समुस्ससियरोमकूवे सुमिणुग्गहं करेइ, करित्ता ईहं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थुग्गहं करेइ, करित्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी ॥ ७ ॥ ओरालाणं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा,

१-२ महासण १-२ सुहासणवरगया क० १-२ देवाणुपिआ ! उ०

ऋषभदत्तब्राह्मण कथितं १४ स्वप्नफ़लम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [८]

दीप अनुक्रम [८]

कल्लाणा सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरिआ आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणमंगल्लकारगाणं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, तंजहा–अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सुक्खलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदिआणं विइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेअं माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पिअदंसणं सुरूवं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि ॥ ८ ॥

सेविअ णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जुव्वणगमणुपत्ते, रिउव्वेअ–जउव्वेअ–सामवेअ–अथव्वणवेअ–इतिहासपंचमाणं निघंटुछट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेआणं सारए पारए धारए, सडंगवी, सट्ठितंतविसारए, संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे अन्नेसु अ बहुसु बंभण्णएसु परिवायएसु नएसु

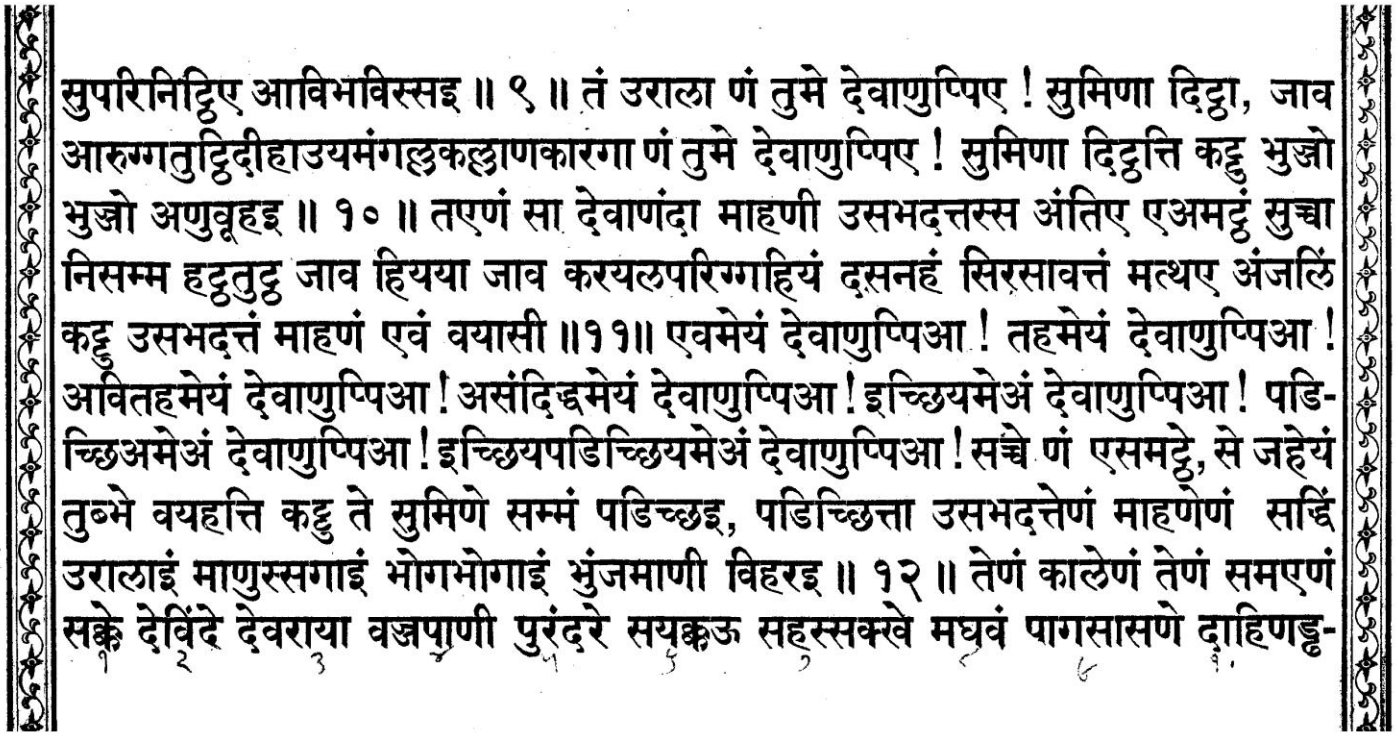
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[९] / गाथा.||१|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [९]

दीप अनुक्रम [९]



सुपरिनिट्ठिए आविभविस्सइ ॥ ९ ॥ तं उराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, जाव आरुग्गतुट्ठिदीहाउयमंगल्लकल्लाणकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठत्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवूहइ ॥ १० ॥ तएणं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स अंतिए एअमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया जाव करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तं माहणं एवं वयासी ॥११॥ एवमेयं देवाणुप्पिआ ! तहमेयं देवाणुप्पिआ ! अवितहमेयं देवाणुप्पिआ ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिआ ! इच्छियमेअं देवाणुप्पिआ ! पडिच्छिअमेअं देवाणुप्पिआ ! इच्छियपडिच्छियमेअं देवाणुप्पिआ ! सच्चे णं एसमट्ठे, से जहेयं तुब्भे वयहत्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता उसभदत्तेणं माहणेणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ॥ १२ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कऊ सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढ-

सौधर्मकल्पस्थित शक्रस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१३]

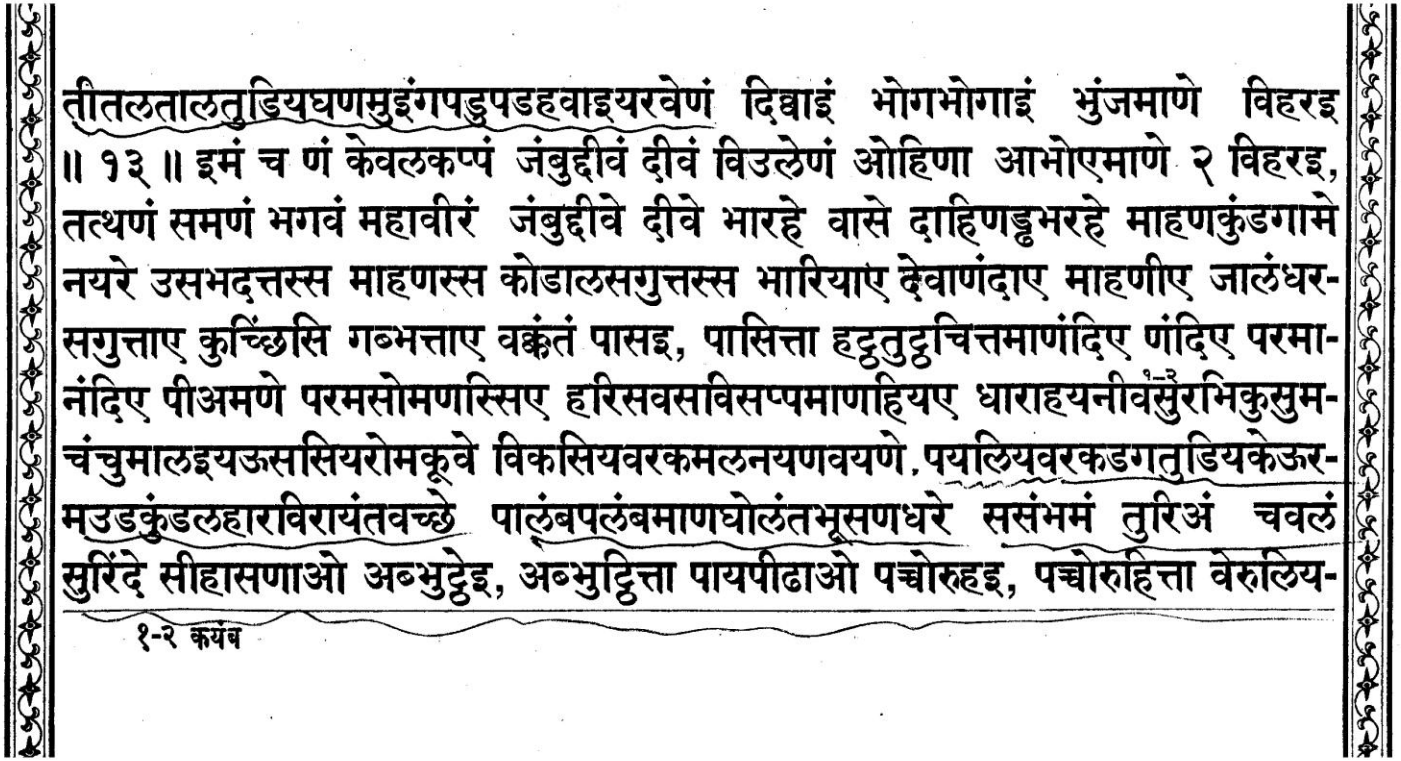
दीप अनुक्रम [१३-१४]

लोगाहिवई बत्तीसविमाणसयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आल-
इअमालमउडे नवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगल्ले महिड्ढिए महज्जुइए
महाबले महायसे महाणुभावे महासुक्खे भासुरबुंदी पलंबवणमालधरे सोहम्मे कप्पे सो-
हम्मवडिंसए विमाणे सुहम्माए सभाए सक्कंसि सीहासणंसि, से णं तत्थ बत्तीसाए विमा-
णवाससयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं,
चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अ-
णीआणं, सत्तण्हं अणीआहिवईणं, चउण्हं चउरासीए[१-२] आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं
च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणिआणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं
भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयनट्टगीयवाइअतं-

१ वडंसए १-२ णं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१३]

दीप अनुक्रम [१३-१५]



तीतलतालतुडियघणमुइंगपडुपडहवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ १३ ॥ इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ विहरइ, तत्थणं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे माहणकुंडगामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए परमानंदिए पीअमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयऊससियरोमकूवे विकसियवरकमलनयणवयणे पयलियवरकडगतुडियकेऊरमउडकुंडलहारविरायंतवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेरुलिय-

१-२ कयंब

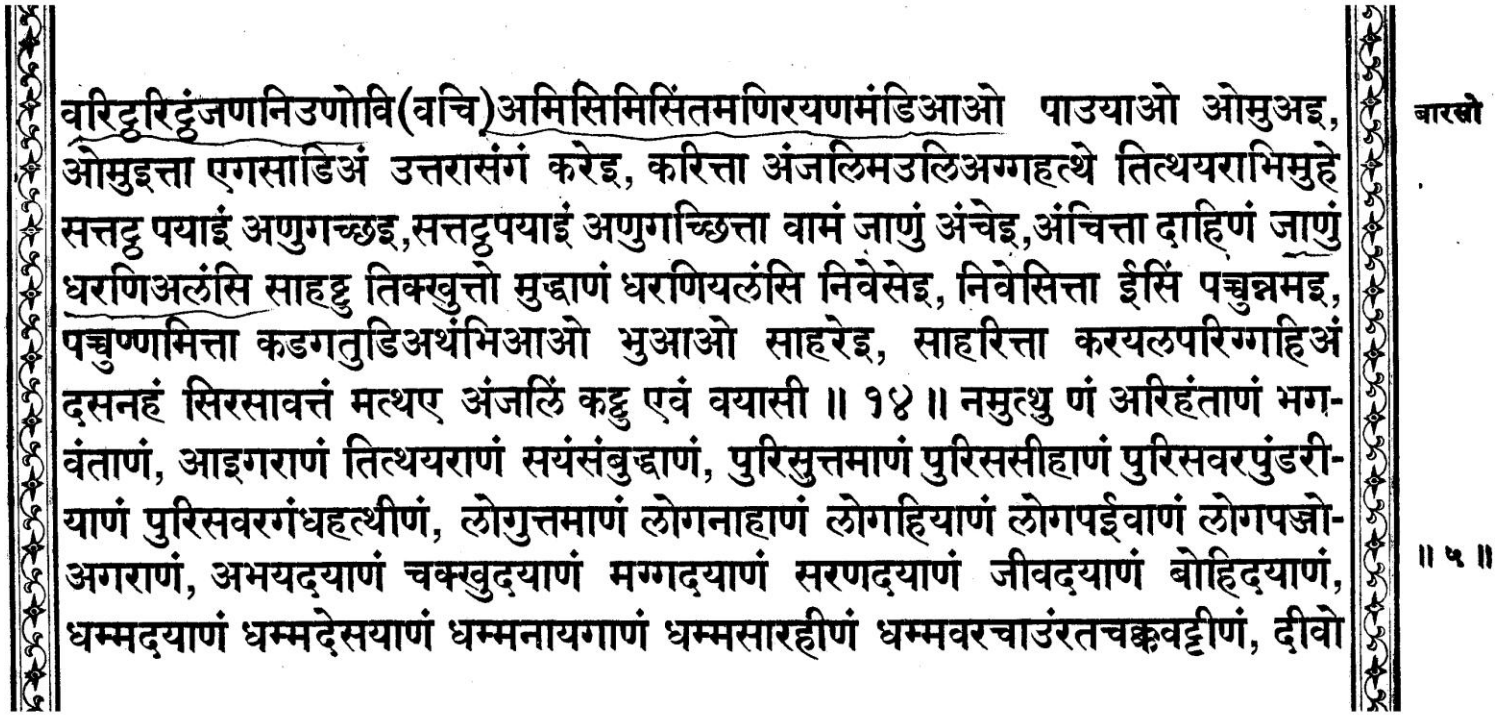
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[१४] / गाथा.||१|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१४]

दीप अनुक्रम [१३-१५]



कल्प० ॥ ५ ॥

वरिट्ठरिट्ठंजणनिउणोवि(वचि)अमिसिमिसिंतमणिरयणमंडिआओ पाउयाओ ओमुअइ, ओमुइत्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता अंजलिमउलिअग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ,सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ,अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणिअलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसिं पच्चुन्नमइ, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडिअथंभिआओ भुआओ साहरेइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहिअं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥ १४ ॥ नमुत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं, धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं, दीवो

बारसो ॥ ५ ॥

शक्रस्तव-स्तोत्रेण सौधर्मेन्द्र कृत् भगवत्-वंदना

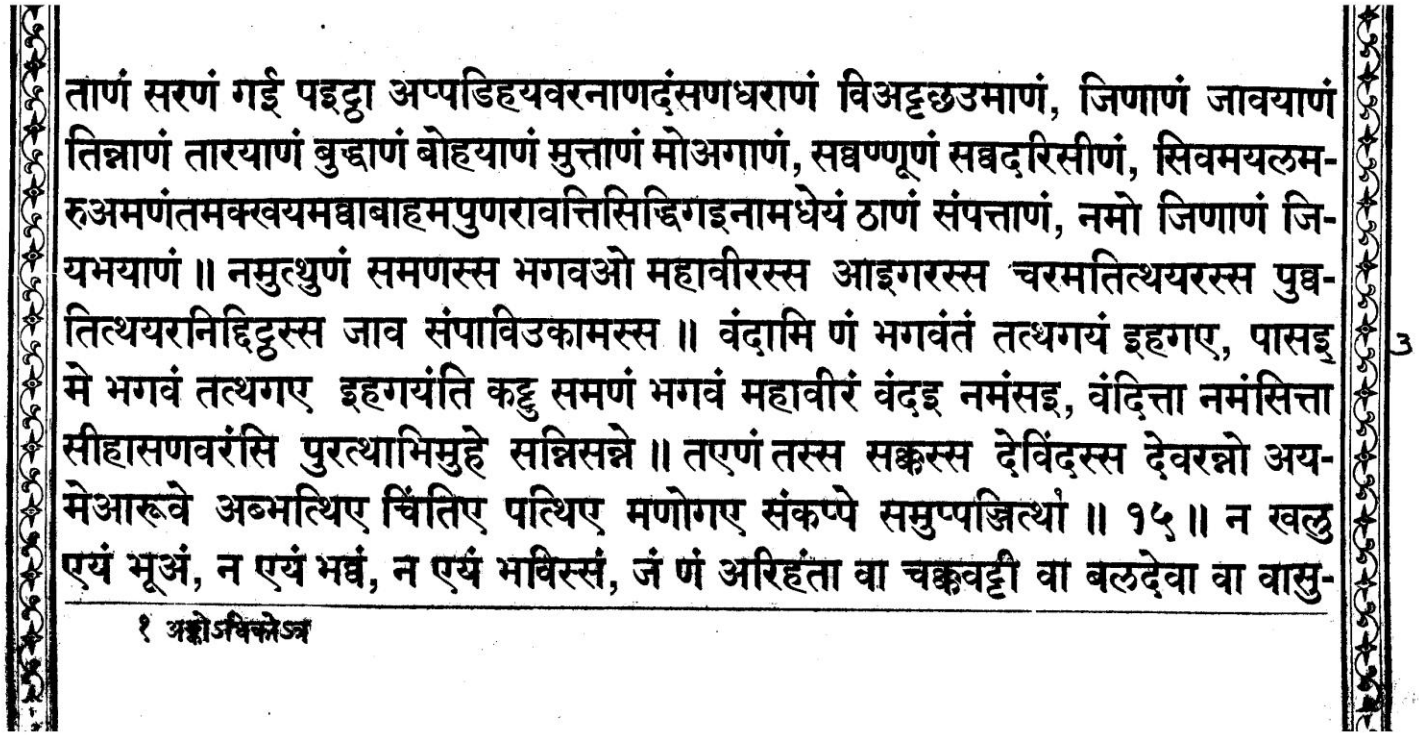
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[१५] / गाथा.||१|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१५]

दीप अनुक्रम [१६]



ताणं सरणं गई पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं, जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं, सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं, सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तिसिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जियभयाणं ॥ नमुत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स चरमतित्थयरस्स पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स जाव संपाविउकामस्स ॥ वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासइ मे भगवं तत्थगए इहगयंति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने ॥ तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेआरूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था ॥ १५ ॥ न खलु एयं भूअं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जं णं अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासु-

१ अहोऽविनोऽत्र

३

भ० महावीरस्य नीचगोत्रे च्यवन-संबंधे शक्रस्य मनोगत् संकल्प

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१६]

दीप अनुक्रम [१७]

देवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा किवणकुलेसु वा भिक्खागकुलेसु वा माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ॥१६॥ एवं खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइण्णकुलेसु वा इक्खागकुलेसु वा खत्तियकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा॥ १७ ॥ अत्थि पुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जइ, (ग्रं. १००) नामगुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइअस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं जंणं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छ० दरिद्द० भिक्खाग० किवण०, आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा, कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कमिंसु वा वक्कमंति वा वक्कमिस्संति वा, नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं नि-

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य १०० श्लोकाणि समाप्तानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१८]

दीप अनुक्रम [१७]

क्खमिंसु वा निक्खमंति वा निक्खमिस्संति वा ॥ १८॥ अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥ १९ ॥ तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पन्नमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं, अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अन्तकुलेहिंतो पंत० तुच्छ० दरिद्द० भिक्खाग० किवणकुलेहिंतो तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा रायन्न० नायखत्तियहरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु वा[२] साहरावित्तए, तं सेयं खलु ममवि समणं भगवं महावीरं चरमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तिय-

२ जाव रज्जसिरिं कारेमाणेसु पालेमाणेसु

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२०]

दीप अनुक्रम [२०]

कल्प० ॥ ७ ॥

कुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरावित्तए। जेवियणं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तंपियणं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरावित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं अग्गा[१-२]णीयाहिवइं देवं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी ॥ २० ॥ एवं खलु देवाणुप्पिआ! न एअं भूअं, न एअं भव्वं, न एअं भविस्सं, जंणं अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंत० पंत० किवण० दरिद्द० तुच्छ० भिक्खाग०, आयाइंसु वा ३, एवं खलु अरिहंता वा चक्क० बल० वासुदेवा वा उग्गकुलेसु वा भोग० राइन्न० नाय० खत्तिय० इक्खाग० हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु

१-२ पायत्ताणीया०

बारसो ॥ ७ ॥

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२१]

दीप अनुक्रम [२१]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

वा ३ ॥ २१॥ अत्थि पुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं विइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइअस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं, जंणं अरिहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छ० किवण० दरिद्द० भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा ३, नो चेव णं जोणीजम्मण-निक्खमणेणं निक्खमिंसु वा ३ ॥२२॥ अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते॥२३॥ तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णम-णागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अन्तकुलेहिंतो पंत० तुच्छ० किवण० दरिद्द० वणीमग०जाव माहणकुलेहिंतो तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोग-कुलेसु वा राइण्ण० नाय० खत्तिय० इक्खाग० हरिवं० अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्ध-

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२४]

दीप अनुक्रम [२४]

जाइकुलवंसेसु साहरावित्तए ॥२४॥ तं गच्छणं तुमं देवाणुप्पिआ ! समणं भगवं महावीरं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि, जेविअणं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तंपिअणं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि, साहरित्ता ममेयमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ॥ २५ ॥ तएणं से हरिणेगमेसी अग्गाणीयाहिवई[1-2] देवे सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठे जाव हयहियए करयल जावत्तिकट्टु एवं जं देवो आणवेइत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अ-

१-२ पायत्ताणीया०

हरिनणेगमेसिदेव कृत् भ० महावीरस्य गर्भ-संक्रमणं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२६]

दीप अनुक्रम [२६]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

वक्कमित्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणइ, वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणित्ता संखिज्जाइं जोअणाइं दंडं निसिरइ, तंजहा–रयणाणं वइराणं वेरुलिआणं लोहिअक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं रयणाणं जायरूवाणं सुभगाणं अंकाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ[1], परिसाडित्ता अहासुहुमे पुग्गले परिआदियइ ॥ २६ ॥ परियाइत्ता दुच्चंपि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जइणाए उद्धुआए सिग्घाए[2] दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे २ तिरिअमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे, जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे, जेणेव देवाणंदा माहणी, तेणेव उवा-

१ परिसाडिअ क० २ छेआए क०

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२७]

दीप अनुक्रम [२७]

गच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ, करित्ता देवाणंदाए माहणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलइ, ओसोवणिं दलित्ता असुभे पुग्गले अवहरइ, अवहरित्ता सुभे पुग्गले पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अणुजाणउ मे भयवंतिकट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं करयलसंपुडेणं गिह्णइ, समणं भगवं महावीरं० गिण्हित्ता जेणेव खत्तिअकुंडग्गामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स गिहे, जेणेव तिसला खत्तियाणी, तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलाए खत्तिआणीए सपरिजणाए ओसोअणिं दलइ, ओसोअणिं दलित्ता असुभे पुग्गले अवहरइ, अवहरित्ता सुभे पुग्गले पक्खिवेइ, पक्खिवित्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तिआणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ[1], जेविअणं से तिसलाए खत्तिआणीए गब्भे तंपि-

१ इ, साहरित्ता

अणं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ, साहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥ २७ ॥ उक्किट्ठाए तुरिआए चवलाए चंडाए जवणाए उद्धुआए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए, तिरिअमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं जोअणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे २ जेणामेव सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे देवराया, तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ ॥ २८ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आवि हुत्था, तंजहा—साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे न जाणइ, साहरिएमित्ति जाणइ ॥ २९ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जेसे वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोअबहुले, तस्सणं अस्सोअबहुलस्स तेरसीपक्खेणं बासीइराइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदिअस्स

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[३०] / गाथा.||१|| .....

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३०]

दीप अनुक्रम [३०]

अंतरा वट्टमाणे हिआणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमिसिणा सक्कवयणसंदिट्ठेणं माहणकुंडग्गा-
माओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारिआए देवाणंदाए माहणीए
जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तिआणं सिद्धत्थस्स खत्ति-
अस्स कासवगुत्तस्स भारिआए तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठसगुत्ताए पुव्वरत्तावरत्तका-
लसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिंसि गब्भ-
त्ताए साहरिए ॥ ३० ॥ जं रयणिं चणं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालं-
धरसगुत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साह-
रिए, तं रयणिं चणं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमेयारूवे
उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चउद्दस महासुमिणे तिसलाए खत्तियाणीए

१ वट्टमाणस्स क० सु०

॥ १० ॥

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३१]

दीप अनुक्रम [३२]

हडेत्ति पासित्ताणं पडिबुद्धा, तंजहा—गय० गाहा ॥ ३१ ॥ जं रयणिं चणं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए, तं रयणिं च णं सा तिसला खत्तिआणी तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे बाहिरओ दूमिअघट्ठमट्ठे विचित्तउल्लोअचिल्लियतले मणिरयणपणासिअंधयारे बहुसमसुविभत्तभूमिभागे पंचवन्नसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंधवट्टिभूए तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बोअणे उभओ उन्नए मज्झे णयगंभीरे गंगापुलिणवालुअउद्दालसालिसए ओअविअखोमिअदुगुल्लपट्टपडिच्छन्ने सुविरइअरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आईणगरूयबूरनवणीअतूलतुल्लफासे सुगंधवरकुसुमचुन्नसयणोवयारकलिए, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[३३] / गाथा.||१|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३३] + ||१||

दीप अनुक्रम [३३-३५]

ओहीरमाणी २ इमेआरूवे उराले जाव चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा, तंजहा–गय[1]–वसह[2]–सीह[3]–अभिसेय[4]–दाम[5]–ससि[6]–दिणयर[7]रं झयं कुंभं । पउमसर[8]–सागर[9]–विमाण-भवण[10]–रयणुच्चय[11]–सिहिं च[12] ॥ १ ॥ तएणं सा तिसला खत्तिआणी तप्पढमयाए तओअ-चउद्दंतमूसिअविपुलजलहरहारनिकरखीरसागरससंककिरणदगरयरययमहासेलपंडुरतरं, समागयमहुयरसुगंधदाणवासियकपोलमूलं देवरायकुंजरं (र) वरप्पमाणं पिच्छइ सजलघ-णविपुलजलहरगज्जियगंभीरचारुघोसं इभं सुभं सव्वलक्खणकयंबिअं वरोरु १ ॥ ३३ ॥ तओ पुणो धवलकमलपत्तपयराइरेगरूवप्पभं , पहासमुदओवहारेहिं सव्वओ चेव दीवयंतं अइ-सिरिभरपिल्लणाविसप्पंतकंतसोहंतचारुककुहं तणुसुइसुकुमालरोमनिद्धच्छविं, थिरसुबद्ध-मंसलोवचिअलट्ठसुविभत्तसुंदरंगं ,पिच्छइ घणवट्टलट्ठउक्किट्ठविसिट्ठतुप्पग्गतिक्खसिंगं दंतं

१ नास्तीदं क० सु० २ सुद्ध क० सु०

त्रिशलाक्षत्रियाणि दृष्ट १४ स्वप्नानि एवं स्वप्नफ़लम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३४]

दीप अनुक्रम [३६]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

सिवं समाणसोहंतसुद्धदंतं वसहं अभिअंगुणमंगलमुहं २ ॥ ३४ ॥ तओ पुणो हारनिकर-खीरसागरससंककिरणदगरयरययमहासेलपंडुरंगं (ग्रं० २००) रमणिज्जपिच्छणिज्जं थिरलट्ठपउट्ठवट्टपीवरसुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबिअमुहं परिकम्मिअजच्चकमलकोमलपमाणसोहंतलट्ठउट्ठं रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालुनिल्लालियग्गजीहं मूसागयपवरकणगताविअआवत्तायंतवट्टतडियविमलसरिसनयणं विसालपीवरवरोरुं पडिपुन्नविमलखंधं मिउविसयसुहमलक्खणपसत्थविच्छिन्नकेसराडोवसोहिअं ऊसिअसुनिम्मिअसुजायअप्फोडिअलंगूलं सोमं सोमाकारं लीलायंतं नहयलाओ ओवयमाणं नियगवयणमइवयंतं पिच्छइ सा गाढतिक्खग्गनहं सीहं वयणसिरीपलंबपत्तचारुजीहं ३ ॥ ३५ ॥ तओ पुणो पुन्नचंदवयणा, उच्चागयठाणलट्ठसंठिअं पसत्थरूवं सुपइट्ठिअकणगकुम्मसरिसोवमाणचलणं अच्चुन-

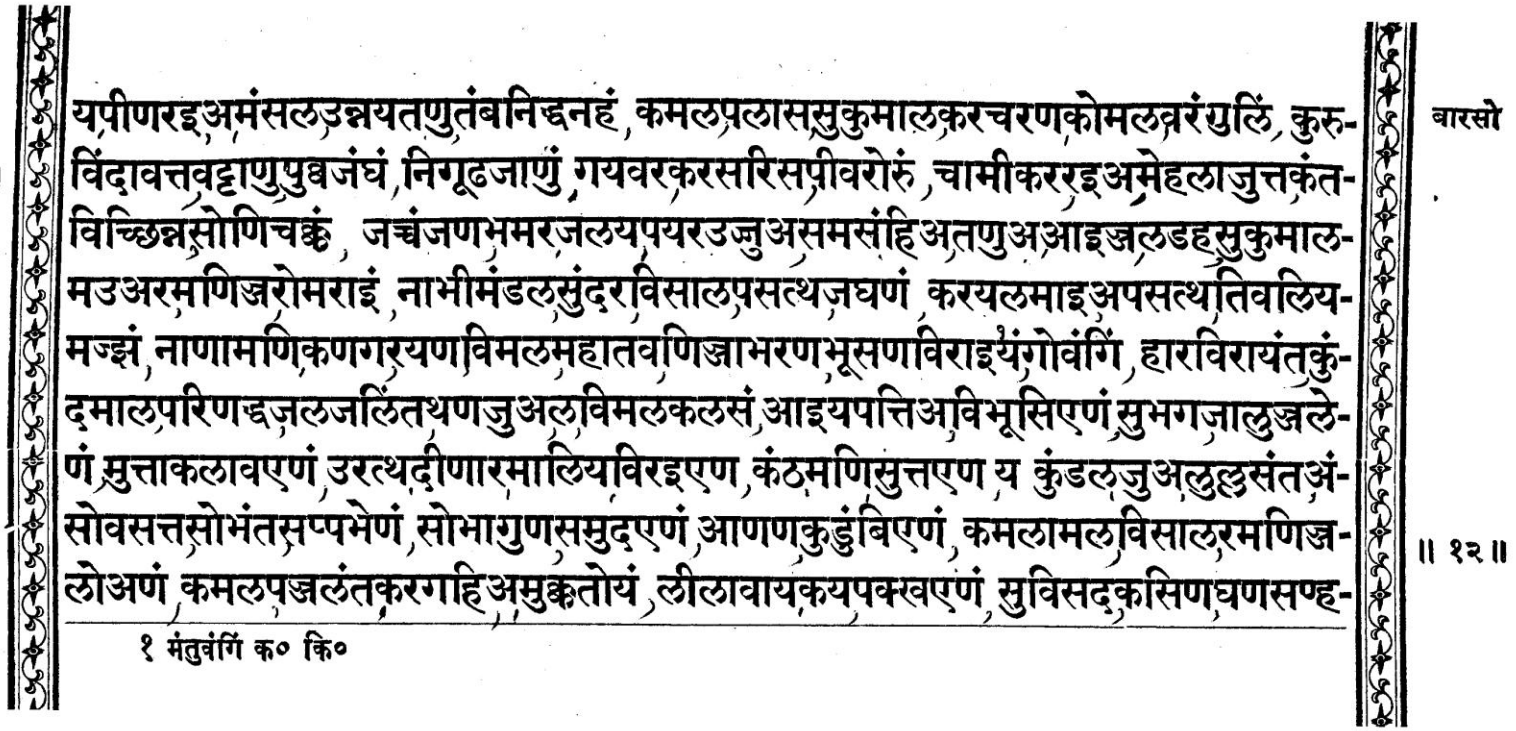
१ पलंब० क० कि० २ कणगमय० क० कि०

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य २०० श्लोकाणि समाप्तानि

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३६]

दीप अनुक्रम [३८]



कल्प० ॥१२॥

यपीणरइअमंसलउन्नयतणुतंबनिद्धनहं, कमलपलाससुकुमालकरचरणकोमलवरंगुलिं, कुरु-
विंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघं, निगूढजाणुं, गयवरकरसरिसपीवरोरुं, चामीकररइअमेहलाजुत्तकंत-
विच्छिन्नसोणिचक्कं, जच्चंजणभमरजलयपयरउज्जुअसमसंहिअतणुअआइज्जलडहसुकुमाल-
मउअरमणिज्जरोमराइं, नाभीमंडलसुंदरविसालपसत्थजघणं, करयलमाइअपसत्थतिवलिय-
मज्झं, नाणामणिकणगरयणविमलमहातवणिज्जाभरणभूसणविराइयंगोवंगिं, हारविरायंतकुं-
दमालपरिणद्धजलजलिंतथणजुअलविमलकलसं, आइयपत्तिआविभूसिएणं सुभगजालुज्जले-
णं मुत्ताकलावएणं, उरत्थदीणारमालियविरइएण, कंठमणिसुत्तएण य कुंडलजुअलुल्लसंतअं-
सोवसत्तसोभंतसप्पभेणं, सोभागुणसमुदएणं, आणणकुडुंबिएणं, कमलामलविसालरमणिज्ज-
लोअणं, कमलपज्जलंतकरगहिअमुक्कतोयं, लीलावायकयपक्खएणं, सुविसदकसिणघणसण्ह-

१ मंतुवंगिं क० कि०

बारसो

॥ १२ ॥

लंबंतकेसहत्थं पउमद्दहकमलवासिणिं सिरिं भगवइं पिच्छइ हिमवंतसेलसिहरे, दिसागइंदोरुपीवरकराभिसिच्चमाणिं ४॥ ३६ ॥ तओ पुणो सरसकुसुममंदारदामरमणिज्जभूअं चंपगासोगपुन्नागनागपिअंगुसिरीसमुग्गरगमल्लिआजाइजूहिअंकोल्लकोज्जकोरिंटपत्तदमणयनवमालिअबउलतिलयवासंतिअपउमुप्पलपाडलकुंदाइमुत्तसहकारसुरभिगंधिं अणुवममणोहरेणं गंधेणं दस दिसाओ वि वासयंतं सव्वोउअसुरभिकुसुममल्लधवलविलसंतकंतबहुवन्नभत्तिचित्तं छप्पयमहुअरिभमरगणगुमगुमायंतनिलिंतगुंजंतदेसभागं दामं पिच्छइ नहंगणतलाओ ओवयंतं ५॥ ३७ ॥ ससिं च गोखीरफेणदगरयरययकलसपंडुरं सुभं हिअयनयणकंतं पडिपुन्नं, तिमिरनिकरघणगुहिरवितिमिरकरं पमाणपक्खंतरायलेहं, कुमुअवणविबोहगं निसासोहगं सुपरिमट्ठदप्पणतलोवमं हंसपडुवन्नं जोइसमुहमंडगं तमरिपुं मयणसरा-

१ मंदारपरिजातियचंपगविउलमचकुंदपाडलजायजूहियसुगंधगंधपुप्फमालासहकार०

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३८]

दीप अनुक्रम [४०]

पूरगं समुद्दगपूरगं दुम्मणं जणं दइअवज्जिअं पायएहिं सोसयंतं पुणो सोमचारुरूवं पिच्छइ सा गगणमंडलविलाससोमचंकम्ममाणतिलगं रोहिणिमणहिअयवल्लहं देवी पुन्नचंदं समुल्लसंतं ६ ॥३८॥ तओ पुणो तमपडलपरिप्फुडं चेव तेअसा पज्जलंतरूवं, रत्तासोगपुगासकिंसुअसुअमुहगुंजद्धरागसरिसं कमलवणालंकरणं अंकणं जोइसस्स अंबरतलपईवं हिमपडलगलग्गहं गहगणोरुनायगं रत्तिविणासं उदयत्थमणेसु मुहुत्तसुहदंसणं दुन्निरिक्खरूवं रत्तिसुद्धंतदुप्पयारपमद्दणं सीअवेगमहणं पिच्छइ मेरुगिरिसययपरियट्टयं विसालं सूरं रस्सीसहस्सपयलियदित्तसोहं ७ ॥ ३९ ॥ तओ पुणो जच्चकणगलट्ठिपइट्ठिअं समूहनीलरत्तपीयसुक्किल्लसुकुमालुल्लसियमोरपिच्छकयमुद्धयं धयं अहियसस्सिरीयं फालिअसंखककुंददगरयययकलसपंडुरेण मत्थयत्थेण सीहेण रायमाणेण रायमाणं भित्तुं गगणतलमंडलं चेव ववसिएणं पिच्छइ सिवमउयमारुयलयाहयकंपमाणं अइप्पमाणं जणपिच्छ-

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४०]

दीप अनुक्रम [४२]

णिज्जरूवं ८ ॥ ४० ॥ तओ पुणो जच्चकंचणुज्जलंतरूवं, निम्मलजलपुण्णमुत्तमं, दिप्पमाण-
सोहं, कमलकलावपरिरायमाणं, पडिपुण्णसव्वमंगलभेयसमागमं, पवररयणपरायंतकमलट्ठियं
नयणभूसणकरं पभासमाणं, सव्वओ चेव दीवयंतं, सोमलच्छीनिभेलणं, सव्वपावपरिवज्जिअं
सुभं भासुरं, सिरिवरं, सव्वोउयसुरभिकुसुमआसत्तमल्लदामं, पिच्छइ सा, रययपुण्णकलसं, १
॥४१॥ तओ पुणो पुणरवि, रविकिरणतरुणबोहियसहस्सपत्तसुरभितरपिंजरजलं, जलचरप-
हकरपरिहत्थगमच्छपरिभुज्जमाणजलसंचयं महंतं, जलंतमिव, कमलकुवलयउप्पलतामरस-
पुंडरीयउरुसप्पमाणसिरिसमुदएणं, रमणिज्जरूवसोहं, पमुइयंतभमरगणमत्तमहुयरिगणुक्क-
रोलि(ल्लि)ज्जमाणकमलं, २५०कायंबगबलाहयचक्ककलहंससारसगविअसउणगणमिहुणसे-
विज्जमाणसलिलं पउमिणिपत्तोवलग्गजलबिंदुनिचयचित्तं पिच्छइ सा हिययनयणकंतं पउ-

१ नेदम् क ०सु०

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४२]

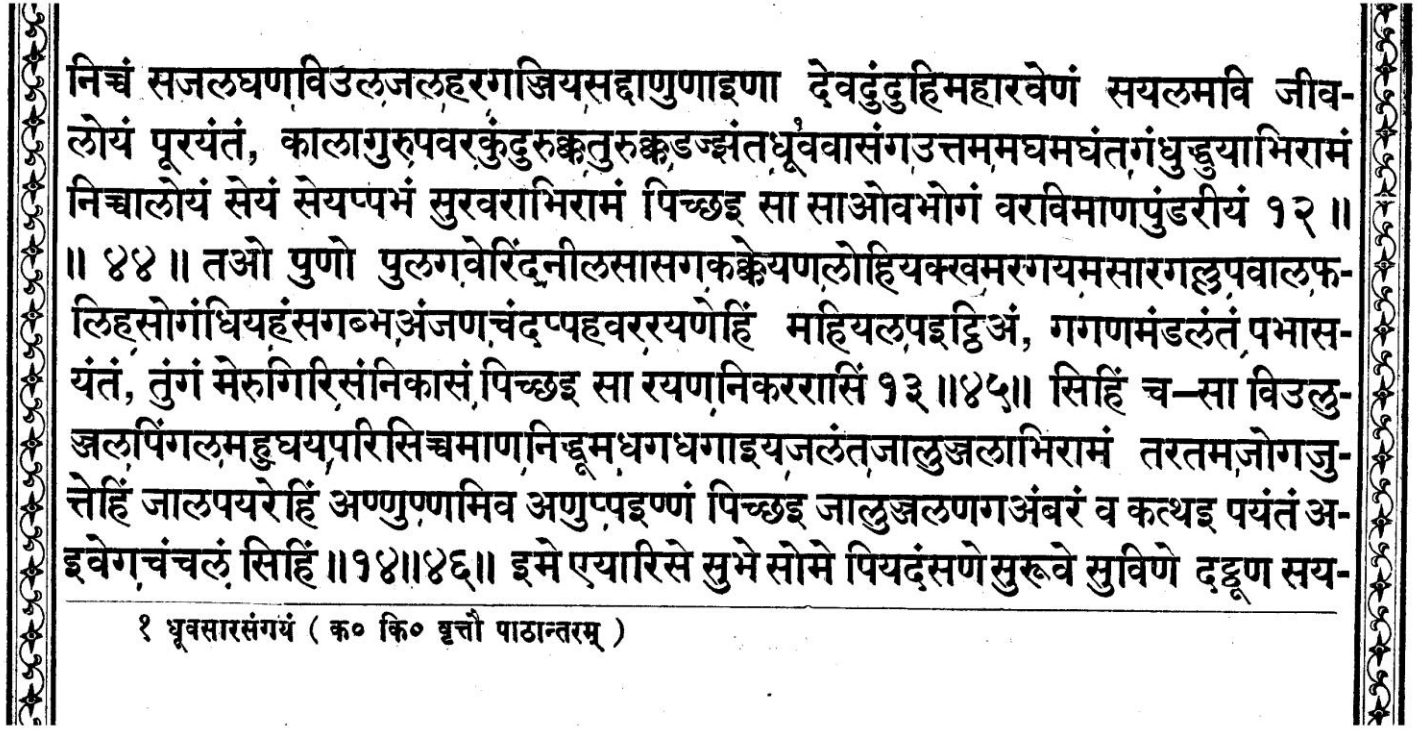
दीप अनुक्रम [४४]

मसरं नाम सरं सररुहाभिरामं १० ॥४२॥ तओ पुणो चंदकिरणरासिसरिससिरिवच्छसोहं चउगंमणपवड्ढमाणजलसंचयं चवलचंचलुच्चायप्पमाणकल्लोललोलंततोयं पडुपवणाहयचलियचवलपागडतरंगरंगंतभंगखोखुब्भमाणसोभंतनिम्मलुक्कडउम्मीसहसंबंधधावमाणोनियत्तभासुरतराभिरामं महामगरमच्छतिमितिमिंगिलनिरुद्धतिलितिलियाभिघायकप्पूरफेणपसरं महानईतुरियवेगसमागयभमगंगावत्तगुप्पमाणुच्चलंतपच्चोनियत्तभममाणलोलसलिलं पिच्छइ खीरोयसायरं सा रयणिकरसोमवयणा ११॥४३॥ तओ पुणो तरुणसूरमंडलसमप्पहं दिप्पमाणसोभं उत्तमकंचणमहामणिसमूहपवरतेयअट्ठसहस्सदिप्पंतनहप्पईवं कणगपयरलंबमाणमुत्तासमुज्जलं जलंतदिव्वदामं ईहावि(मि)गउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरसंसत्तकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं गंधव्वोपवज्जमाणसंपुण्णघोसं

१ चउगुण०

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४४]

दीप अनुक्रम [४६]



निच्चं सजलघणविउलजलहरगज्जियसद्दाणुणाइणा देवदुंदुहिमहारवेणं सयलमवि जीव-
लोयं पूरयंतं, कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूववासंगउत्तमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं
निच्चालोयं सेयं सेयप्पभं सुरवराभिरामं पिच्छइ सा साओवभोगं वरविमाणपुंडरीयं १२ ॥
॥ ४४ ॥ तओ पुणो पुलगवेरिंदनीलसासगकक्केयणलोहियक्खमरगयमसारगल्लपवालफ-
लिहसोगंधियहंसगब्भअंजणचंदप्पहवररयणेहिं महियलपइट्ठिअं, गगणमंडलंतं पभास-
यंतं, तुंगं मेरुगिरिसंनिकासं पिच्छइ सा रयणनिकररासिं १३ ॥४५॥ सिहिं च—सा विउलु-
ज्जलपिंगलमहुघयपरिसिच्चमाणनिद्धूमधगधगाइयजलंतजालुज्जलाभिरामं तरतमजोगजु-
त्तेहिं जालपयरेहिं अण्णुण्णमिव अणुप्पइण्णं पिच्छइ जालुज्जलणगअंबरं व कत्थइ पयंतं अ-
इवेगचंचलं सिहिं ॥१४॥४६॥ इमे एयारिसे सुभे सोमे पियदंसणे सुरूवे सुविणे दट्ठूण सय-

१ धूवसारसंगयं (क० कि० वृत्तौ पाठान्तरम्)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४७]

दीप अनुक्रम [४९]

णमज्झे पडिबुद्धा अरविंदलोयणा हरिसपुलइअंगी ॥ एए चउदस सुमिणे, सव्वा पासेइ तित्थयरमाया । जं रयणिं वक्कमई, कुच्छिंस महायसो अरहा ॥ ४७ ॥ तएणं सा तिसला खत्तियाणी इमे एयारूवे उराले चउद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया धाराहयकयंबपुप्फगं पिव समूस्ससिअरोमकूवा सुविणुग्गहं करेइ, करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अतुरिअमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सयणिज्जे जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धत्थं खत्तिअं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणोरमाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मिउमहुरमंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी २ पडिबोहेइ ॥ ४८ ॥ तएणं सा तिसला खत्तिआणी सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४९]

दीप अनुक्रम [५१-५२]

नाणामणिकणगरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया सिद्धत्थं खत्तिअं ताहिं इट्ठाहिं जाव संलवमाणी २ एवं वयासी ॥ ४९ ॥ एवं खलु अहं सामी! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि वण्णओ जाव पडिबुद्धा, तंजहा –गयउसभ० गाहा । तं एएसिं सामी ! उरालाणं चउदसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥ ५० ॥ तएणं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तिआणीए अंतिए एयमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयरोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हेइ, ते सुमिणे ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसइ, ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थुग्गहं करेइ, करित्ता तिसलं खत्तिआणिं ताहिं इट्ठाहिं जाव मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे २ एवं वयासी

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [५१]

दीप अनुक्रम [५४]

॥५१॥ उराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, एवं सिवा, धन्ना, मंगल्ला, सस्सिरीया, आरुग्ग–तुट्ठि–दीहाउ–कल्लाण–(ग्रं.३००) मंगल्ल–कारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, तंजहा,–अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो०, पुत्तलाभो० सुक्खलाभो० रज्जलाभो०–एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं, अम्हं कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडिंसयं, कुलतिलयं, कुलकित्तिकरं, कुलवित्तिकरं, कुलदिणयरं, कुलाधारं, कुलनंदिकरं, कुलजसकरं, कुलपायवं, कुलविवड्ढणकरं, सुकुमालपाणिपायं, अहीणसंपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं, माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगं, ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं, दारयं पयाहिसि ॥ ५२ ॥ सेविअ णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जुव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्नविउलबल- ॥ १६ ॥

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ३०० श्लोकाणि समाप्तानि

लवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ ॥५३॥ तं उराला णं तुमे देवाणुप्पिया! जाव दुच्चंपि तच्चंपि अणुवूहइ ॥ तएणं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव–हियया करयलपरिग्गहिअं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥५४॥ एवमेयं सामी! तहमेयं सामी! अवितहमेयं सामी! असंदिद्धमेयं सामी! इच्छिअमेअं सामी! पडिच्छिअमेयं सामी! इच्छिअपडिच्छिअमेयं सामी! सच्चेणं एसमट्ठे–से जहेयं तुब्भे वयह त्तिकट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबिआए रायहंससरिसीए गईए, जेणेव सए सयणिज्जे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी ॥ ५५ ॥–मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला सुमिणा दिट्ठा अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्संति त्तिकट्टु देवयगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [५६]

दीप अनुक्रम [५९]

धम्मियाहिं लट्ठाहिं कहाहिं सुमिणजागरिअं जागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ ॥ ५६ ॥ तएणं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी ॥ ५७ ॥–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! अज्ज सविसेसं बाहिरिअं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्तं सुइअसंमज्जिओवलित्तं सुगंधवरपंचवण्णपुप्फोवयारकलिअं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूअं करेह कारवेह, करित्ता कारवित्ता य सीहासणं रयावेह, रयावित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ॥ ५८ ॥ तएणं ते कोडंबिअपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठा जाव हियया करयल जाव कट्टु एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स अंतिआओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [५९]

दीप अनुक्रम [६१]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

उवट्ठाणसालं गंधोदगसित्तं जाव–सीहासणं रयाविंति, रयावित्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स तमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति ॥ ५९ ॥ तएणं सिद्धत्थे खत्तिए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मीलियंमि अहापंडुरे पभाए, रत्तासोगप्पगासकिंसुअसुअमुहगुंजद्धरागबंधुजीवगपारावयचलणनयणपरहुअसुरत्तलोअणजासुअणकुसुमरासिहिंगुलनिअरातिरेअरेहंतसरिसे कमलायरसंडबोहए उट्ठिअंमि सूरे सहस्सरस्सिंमि दिणयरे तेअसा जलंते, तस्स य करपहरापरद्धंमि अंधयारे बालायवकुंकुमेणं खचिअ व्व जीवलोए, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ ॥ ६० ॥ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अणेगवायामजोगवग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहिं संते परि-

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६१]

दीप अनुक्रम [६३]

स्संते सयपागसहस्सपागेहिं सुगंधवरतिल्लमाइएहिं पीणणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं सविंदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भंगिए समाणे तिल्लचम्मंसि निउणेहिं पडिपुण्णपाणिपायसुकुमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं अब्भंगणपरिमद्दणुव्वलणकरणगुणनिम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं जिअपरिस्समेहिं अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए सुहपरिकम्मणाए संवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे[1] अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ ॥ ६१ ॥ पडिनिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे पुप्फोदएहि अ गंधोदएहि अ उण्होदएहि अ सुहोदएहि

१ खेयपरिस्समे

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६२]

दीप अनुक्रम [६४]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

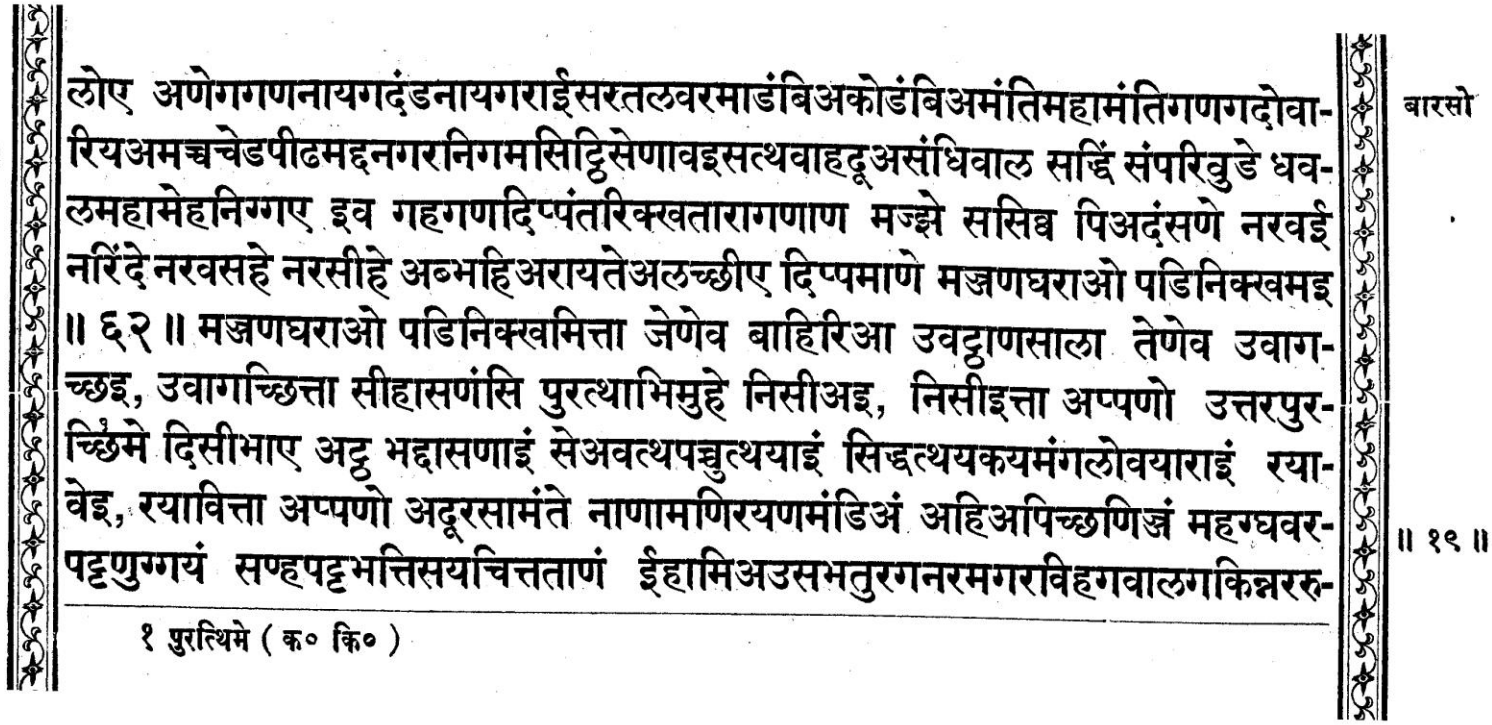
अ सुद्धोदएहि अ, कल्लाणकरणपवरमज्जणविहीए मज्जिए, तत्थ कोउअसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइअलूहिअंगे अहयसुमहग्घदूसरयण-सुसंवडे सरससुरभिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावण्णगविलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहारतिसरयपालंबपलंबमाणकडिसुत्तसुकयसोभे पिणद्धगेविज्जे अंगुलज्जग-ललियकयाभरणे वरकडगतुडिअथंभिअभुए अहिअरूवसस्सिरीए कुंडलउज्जोइआणणे मउडदित्तसिरए हारोत्थयसुकयरइअवच्छे मुद्दिआपिंगलंगुलीए पालंबपलंबमाणसुकयप-डउत्तरिज्जे नाणामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणोचिअमिसिमिसिंतविरइअसुसिलिट्ठ-विसिट्ठलट्ठआविद्धवीरवलए, किंबहुणा ?कप्परुक्खए चेव अलंकिअविभूसिए नरिंदे, सको-रिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं[1] सेअवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं मंगलजयसद्दकया-

१ नासानीसासवायवज्झचक्खुहरवण्णफरिसजुत्तहयलालापेलवाइरेगधवलकणगखचिअंतकम्मदूसरयणसुसंवुए (क० कि०)
२ एगावलिपिणद्धे इत्यादि क० कि०

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६२]

दीप अनुक्रम [६४]



कल्प० ॥ १९ ॥

लोए अणेगगणनायगदंडनायगराईसरतलवरमाडंबिअकोडंबिअमंतिमहामंतिगणगदोवारियअमच्चचेडपीढमद्दनगरनिगमसिट्ठिसेणावइसत्थवाहदूअसंधिवाल सद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए इव गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे ससिव्व पिअदंसणे नरवई नरिंदे नरवसहे नरसीहे अब्भहिअरायतेअलच्छीए दिप्पमाणे मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ ॥ ६२ ॥ मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीअइ, निसीइत्ता अप्पणो उत्तरपुरच्छिमे[1] दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेअवत्थपच्चुत्थयाइं सिद्धत्थयकयमंगलोवयाराइं रयावेइ, रयावित्ता अप्पणो अदूरसामंते नाणामणिरयणमंडिअं अहिअपिच्छणिज्जं महग्घवरपट्टणुग्गयं सण्हपट्टभत्तिसयचित्ततार्णं ईहामिअउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररु-

१ पुरत्थिमे (क० कि०)

बारसो ॥ १९ ॥

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६३]

दीप अनुक्रम [६५]

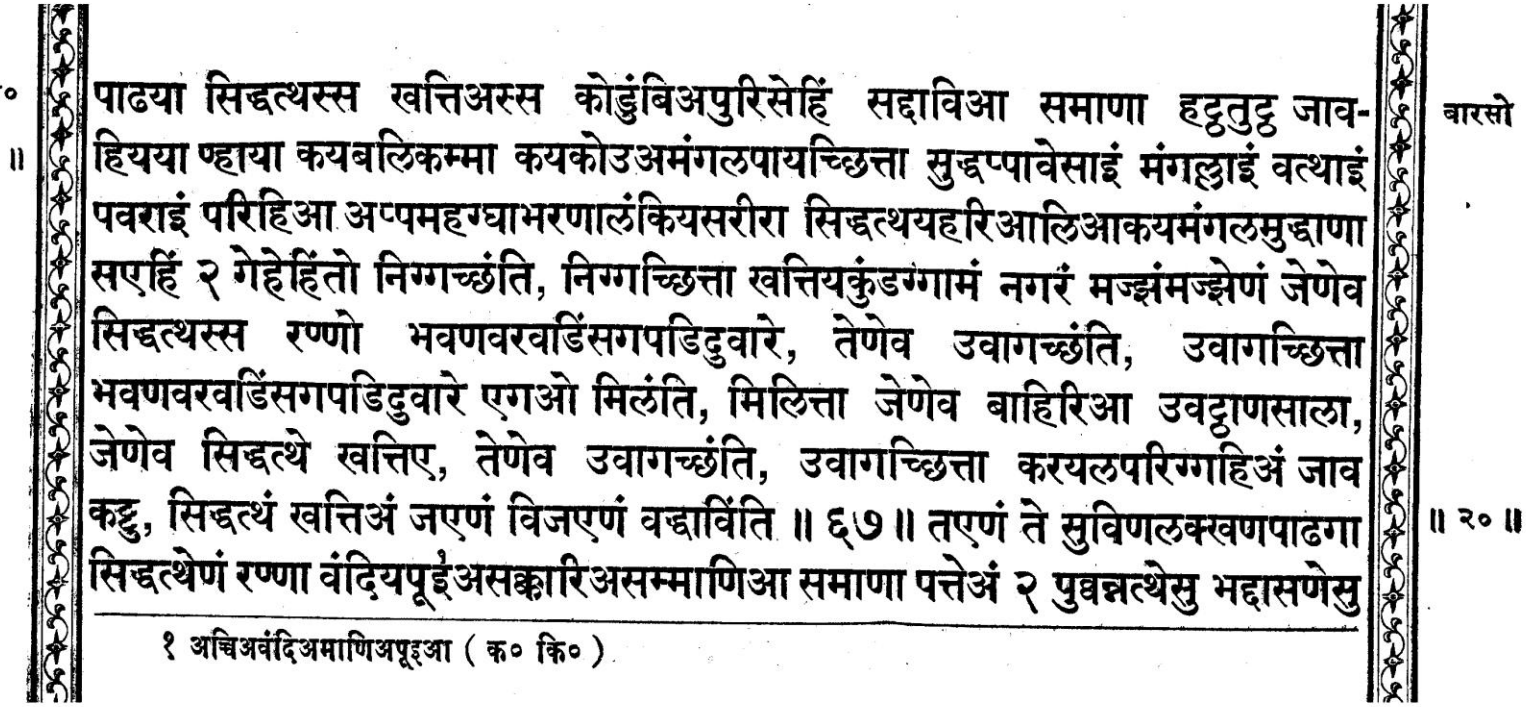
रुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्तं अब्भिंतरिअं जवणिअं अंछावेइ, अंछावेत्ता नाणामणिरयणभत्तिचित्तं अत्थरयमिउमसूरगुत्थयं सेअवत्थपच्चुत्थअं सुमउअं अंगसुह-फरिसं विसिट्ठं तिसलाए खत्तिआणीए भद्दासणं रयावेइ ॥ ६३ ॥ रयावित्ता कोडुंबिअपु-रिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी ॥ ६४ ॥–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! अट्ठंगमहानि-मित्तसुत्तत्थधारए विविहसत्थकुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह ॥ तएणं ते कोडुंबिअ-पुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव-हियया, करयल जाव-पडिसुणंति ॥ ६५ ॥ पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिआओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्ख-मित्ता कुंडपुरं[1] नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुविणलक्खणपाढगाणं गेहाइं, तेणेव उवाग-च्छंति, उवागच्छित्ता सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति ॥ ६६ ॥ तएणं ते सुविणलक्खण-

१ कुंडग्गामं (क० कि० क० सु०)

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६७]

दीप अनुक्रम [६९]



कल्प० ॥ २० ॥

पाढया सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कोडुंबिअपुरिसेहिं सद्दाविआ समाणा हट्ठतुट्ठ जाव-
हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं
पवराइं परिहिआ अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सिद्धत्थयहरिआलिआकयमंगलमुद्धाणा
सएहिं २ गेहेहिंतो निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव
सिद्धत्थस्स रण्णो भवणवरवडिंसगपडिदुवारे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता
भवणवरवडिंसगपडिदुवारे एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला,
जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिअं जाव
कट्टु, सिद्धत्थं खत्तिअं जएणं विजएणं वद्धाविंति ॥ ६७ ॥ तएणं ते सुविणलक्खणपाढगा
सिद्धत्थेणं रण्णा वंदियपूइअसक्कारिअसम्माणिआ समाणा पत्तेअं २ पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु

१ अच्चिअवंदिअमाणिअपूइआ (क० कि०)

बारसो ॥ २० ॥

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६८]

दीप अनुक्रम [७०]

निसीयंति ॥६८॥ तएणं सिद्धत्थे खत्तिए तिसलं खत्तियाणिं जवणिअंतरियं ठावेइ, ठावित्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी ॥ ६९ ॥ –एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि जाव सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमे एयारूवे उराले चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा ॥ ७० ॥ तंजहा, गयगाहा–तं एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं देवाणुप्पिया ! उरालाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥ ७१ ॥ तएणं ते सुमिणलक्खणपाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव-हयहियया, ते सुमिणे ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालेंति[1], संचालित्ता तेसिं सुमिणाणं लद्धट्ठा गहिअट्ठा पुच्छिअट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा

१ संलावंति (क्र० कि०)

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७२]

दीप अनुक्रम [७२]

सिद्धत्थस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा २ सिद्धत्थं खत्तियं एवं वयासी ॥७२॥ –एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुमिणसत्थे बायालीसं सुमिणा तीसं महासुमिणा बावत्तरि सव्वसुमिणा दिट्ठा, तत्थ णं देवाणुप्पिया ! अरहंतमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतंसि (ग्रं० ४००) वा चक्कहरंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥ ७३ ॥ तंजहा, गयगाहा– ॥ ७४ ॥ वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे सत्त महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७५॥ बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥ ७६ ॥ मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरं एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥ ७७ ॥ इमे य णं

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ४०० श्लोकाणि समाप्तानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७८]

दीप अनुक्रम [७७]

देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तिआणीए चोद्दस महासुमिणा दिट्ठा, तं उराला णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा, जाव मंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिआ ! तिसलाए खत्तिआणीए सुमिणा दिट्ठा, तंजहा- अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो० पुत्तलाभो० सुक्खलाभो देवाणुप्पिया ! रज्जलाभो देवाणु० एवं खलु देवाणुप्पिया ! तिसला खत्तियाणी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदिआणं वइक्कंताणं, तुम्हं कुलकेउं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसगं कुलतिलयं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं कुलदिणयरं कुलाहारं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलपायवं कुलतन्तुसंताणविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेअं माणुम्माणपमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिसि ॥७८॥ सेविय णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जुव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्नविपुलबलवाहणे

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७९]

दीप अनुक्रम [७८]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

कल्प० ॥ २२ ॥

चाउरंतचक्कवट्टी रज्जवई राया भविस्सइ, जिणे वा तिलोगनायगे धम्मवरचाउरंतचक्क-वट्टी ॥ ७९ ॥ तं उरालाणं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा, जाव आरुग्गतुट्ठिदीहाऊकल्लाणमंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिआ ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा ॥८०॥ तएणं सिद्धत्थे राया तेसिं सुमिणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निस-म्म हट्ठे तुट्ठे चित्तमाणंदिते पीयमणे परमसोमणसिए हरिसवसविसप्पमाणहिअए करयल-जाव ते सुमिणलक्खणपाढगे एवं वयासी॥ ८१ ॥–एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणु-प्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं० पडिच्छियमेयं० इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्तिकट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, पडि-च्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए विउलेणं असणेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ स-म्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ

बारसो ॥ २२ ॥

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [८२]

दीप अनुक्रम [८१]

॥८२॥तएणं से सिद्धत्थे खत्तिए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव तिसला खत्तियाणी जवणिअंतरिया तेणेव उवागच्छइ, उवाच्छित्ता तिसलं खत्तियाणीं एवं वयासी ॥८३॥ –एवं खलु देवाणुप्पिया! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा तीसं महासुमिणा जाव एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥८४॥ इमे अ णं तुमे देवाणुप्पिए! चउद्दस महासुमिणा दिट्ठा, तं उराला णं तुमे जाव-जिणे वा तेलुक्कनायगे धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी ॥८५॥ तएणं सा तिसला खत्तिआणी एअमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव-हयहिअया, करयल-जाव ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ ॥८६॥ पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरिअं अचवलं असंभंताए अविलंबिआए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविट्ठा॥८७॥जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे तंसि नायकुलंसि

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [८८]

दीप अनुक्रम [८६]

साहरिए,तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं से जाइं इमाइं पुरापोराणाइं महानिहाणाइं भवंति, तंजहा-पहीणसामिआइं पहीणसेउआइं पहीणगुत्तागाराइं, उच्छिन्नसामिआइं उच्छिन्नसेउआइं उच्छिन्नगुत्तागाराइं, गामागरनगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंबाहसन्निवेसेसु सिंघाडएसु वा तिएसु वा चउक्केसु वा चच्चरेसु वा चउम्मुहेसु वा महापहेसु वा गामट्ठाणेसु वा नगरट्ठाणेसु वा गामणिद्धमणेसु वा नगरनिद्धमणेसु वा आवणेसु वा देवकुलेसु वा सभासु वा पवासु वा आरामेसु वा उज्जाणेसु वा वणेसु वा वणसंडेसु वा सुसाणसुन्नागारगिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु वा सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति, ताइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति ॥ ८८ ॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसि साहरिए, तं रयणिं च णं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था सुवण्णेणं वड्ढित्था धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं

कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढित्था, विपुलधणकणगरयणमणि-मोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसारसावइज्जेणं पीइसक्कारसमुदएणं अईव २ अभिवड्ढित्था, तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिऊणं अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था ॥ ८९ ॥ जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते, तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो सुवण्णेणं धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कुट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढामो, विपुलधणकणगरयणमणिमुत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयण-माइएणं संतसारसावइज्जेणं पीइसक्कारेणं अईव २ अभिवड्ढामो, तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ, तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणुत्ति ॥ ९० ॥ तएणं समणे भगवं महावीरे माउअणुकंपणट्ठाए निच्चले

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [९१]

दीप अनुक्रम [८९]

निप्फंदे निरेयणे अल्लीणपल्लीणगुत्ते आवि होत्था ॥ ९१ ॥ तएणं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था-हडे मे से गब्भे, मडे मे से गब्भे, चुए मे से गब्भे, गलिए मे से गब्भे, एस मे गब्भे पुव्विं एयइ, इयाणिं नो एयइ त्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा चिंतासोगसागरसंपविट्ठा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमीगयदिट्ठिया झियायइ, तंपि य सिद्धत्थरायवरभवणं उवरयमुइंगतंतीतलतालनाडइज्जजणमणुज्जं दीणविमणं विहरइ ॥९२॥ तएणं से समणे भगवं महावीरे माऊए अयमेयारूवं अब्भत्थिअं पत्थिअं मणोगयं संकप्पं समुप्पन्नं वियाणित्ता एगदेसेणं एयइ, तएणं सा तिसला खत्तियाणी हट्ठतुट्ठा जाव हयहिअया एवं वयासी ॥९३॥–नो खलु मे गब्भे हडे जाव नो गलिए, मे गब्भे पुव्विं नो एयइ,इयाणिं एयइ त्तिकट्टु हट्ठ जाव एवं विहरइ, तएणं समणे भगवंमहावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ– नो खलु मे कप्पइ अम्मापिउहिं

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [९४]

दीप अनुक्रम [९३]

जीवंतेहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइत्तए ॥९४॥ तएणं सा तिसला खत्तियाणी ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया तं गब्भं नाइसीएहिं नाइउण्हेहिं नाइतित्तेहिं नाइकडुएहिं नाइकसाइएहिं नाइअंबिलेहिं नाइमहुरेहिं नाइनिद्धेहिं नाइलुक्खेहिं नाइउल्लेहिं नाइसुक्केहिं सव्वत्तुगभयमाणसुहेहिं भोयणच्छायणगंधमल्लेहिं ववगयरोगसोगमोहभयपरिस्समा जं तस्स गब्भस्स हिअं मियं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे अ काले अ आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएहिं सयणासणेहिं पइरिक्कसुहाए मणोऽणुकूलाए विहारभूमीए पसत्थदोहला संपुण्णदोहला संमाणियदोहला अविमाणिअदोहला वुच्छिन्नदोहला ववणीअदोहला सुहंसुहेणं आसइ सयइ चिट्ठइ निसीअइ तुयट्टइ विहरइ सुहंसुहेणं तं गब्भं परिवहइ॥९५॥तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं

१ जाव (क० कि०)

भ०महावीरस्य जन्म एवं तत् पूर्व-पश्चात स्थितेः वर्णनं

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [९६]

दीप अनुक्रम [९६]

महावीरे जे से गिम्हाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसी-दिवसेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं उच्चट्ठाणगएसु गहेसु पढमे चंदजोए सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जइएसु सव्वसउणेसु पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुयंसि पवायंसि निप्फन्नमेइणीयंसि कालंसि पमु-इयपक्कीलिएसु जणवएसु पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवा-गएणं आरुग्गा आरुग्गं दारयं पयाया॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए, सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं देवीहि य ओवयंतेहिं उप्पयंतेहि य उप्पिंजलमाणभूआ कहकहग-भूआ आवि हुत्था॥९६॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए तं रयणिं च णं बहवे वेसमणकुंडधारी तिरियजंभगा देवा सिद्धत्थरायभवणंसि हिरण्णवासंच सुवण्णवासं च वय-

१० लमाला० (क० कि०) देवुज्जोए एगालोए देवसन्निवाए उप्पिंजल० (क० कि०)

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [९७]

दीप अनुक्रम [९८]

र वासं च वत्थवासं च आभरणवासं च पत्तवासं च पुप्फवासं च फलवासं च बीअवासं च म-
ल्लवासं च गंधवासं च चुण्णवासं च वण्णवासं च वसुहारवासं च वासिंसु॥९७॥तेणं से सि-
द्धत्थे खत्तिए भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयरजम्मणाभिसेयमहिमाए
कयाए समाणीए पच्चूसकालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी ॥९८॥
–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कुंडपुरे नगरे चारगसोहणं करेह, करित्ता माणुम्माणवद्धणं
करेह, माणुम्माणवद्धणं करित्ता कुंडपुरं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसियसम्मज्जिओव-
लित्तं संघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु सित्तसुइसंमट्ठरत्थंरावणवीहियं मंचा-
इमंचकलिअं नाणाविहरागभूसिअज्झयपडागमंडिअं लाउल्लोइयमहिअं गोसीससरसरत्त-
चंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं

१ धण्णवासं च (क० कि०) २ पिअट्ठयाए पिअं निवेएमो, पिअं भे भवउ मउडवज्जं जहामालिअं ओमयं मत्थए धोअइ (क०कि०)

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [९९]

दीप अनुक्रम [१००]

आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगंधिअं गंधवट्टिभूअं नडनट्टगजल्लमल्लमुट्ठियवेलंबगकहगपाढगलासगआरक्खगलंखमंखतूणइल्लतुंबवीणियअणेगतालायराणुचरिअं करेह कारवेह, करित्ता कारवेत्ता य जूअसहस्सं मुसलसहस्सं च उस्सवेह, उस्सवित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह ॥ ९९ ॥ तएणं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवंवुत्ता समाणा हट्ठा जाव हिअया करयल–जाव–पडिसुणित्ता खिप्पामेव कुंडपुरे नगरे चारगसोहणं जाव उस्सवित्ता जेणेव सिद्धत्थे राया (खत्तिए) तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु सिद्धत्थस्स रण्णो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥१००॥ तएणं से सिद्धत्थे राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवा-

१० पवग० (क० कि०) २ आइक्खग० (क० कि०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१०१]

दीप अनुक्रम [१०२]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

गच्छित्ता जाव सव्वोरोहेणं सव्वपुप्फगंधवत्थमल्लालंकारविभूसाए सव्वतुडिअसद्दनिनाएणं महया इड्ढीए महया जुइए महया बलेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं महया वरतुडि-अजमगसमगपवाइएणं संखपणवभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरजमुइंगदुंदुहिनिग्घोसना-इयरवेणं उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेसं अदंडकोदंडिमं अधरिमं[1] गणिआवरनाडइज्जकलियं[2] अणेगतालायराणुचरिअं अणुद्धुअमुइंगं,(ग्रं.५००) अमिलाय-मल्लदामं पमुइअपक्कीलियसपुरजणंजाणवयं[3] दसदिवसं ठिईवडियं करेइ ॥ तएणं से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिईवडियाए वट्टमाणीए सइए य साहस्सिए य सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए अ दलमाणे अ दवावेमाणे अ, सइए अ साहस्सिए अ सयसाहस्सिए य लंभे पडिच्छमाणे य पडिच्छावेमाणे य एवं विहरइ ॥ १०१ ॥ तएणं समणस्स भग-

१ अहरिमं (क० कि०) २ अगणिअवरनाडइज्जकलिअं (क० कि०) ३ जणाभिरामं (क० कि०)

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ५०० श्लोकाणि समाप्तानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१०२]

दीप अनुक्रम [१०४]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

वओ महावीरस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइवडियं करिंति, तइए दिवसे चंदसूरदं-
सणिअं करिंति, छट्ठे दिवसे धम्मजागरियं करिंति[1], इक्कारसमे दिवसे विइक्कंते निव्वत्तिए
असुइजम्मकम्मकरणे, संपत्ते बारसाहे दिवसे, विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावें-
ति, उवक्खडावित्ता मित्तनाइनिययसयणसंबंधिपरिजणं नाए य खत्तिए अ आमंतित्ता
तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं
पवराइं वत्थाइं परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा भोअणवेलाए भोअणमंडवंसि
सुहासणवरगया तेणं मित्तनाइनिययसंबंधिपरिजणेणं नायएहिं खत्तिएहिं सद्धिं तं
विउलं असणपाणखाइमसाइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा
एवं वा विहरंति ॥ १०२ ॥ जिमिअभुत्तुत्तरा गयाविअ णं समाणा आयंता चुक्खा परम-

१ जागरिंति (क० कि० क० सु०)

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१०३]

दीप अनुक्रम [१०५]

सुइभूआ तं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणं नायए खत्तिए य विउलेणं पुप्फगंध-वत्थमल्लालंकारेणं सक्कारिंति संमाणिंति सक्कारित्ता संमाणित्ता तस्सेव मित्तनाइनियय-सयणसंबंधिपरियणस्स नायाणं खत्तिआण य पुरओ एवं वयासी ॥ १०३ ॥–पुव्विंपि णं देवाणुप्पिया ! अम्हं एयंसि दारगंसि गब्भं वक्कंतंसि समाणंसि इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था–जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते, तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो सुवण्णेणं धणेणं जाव सावइज्जेणं पीइसक्कारेणं अईव २ अभिवड्ढामो, सामंतरायाणो वसमागया य, तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ, तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स इमं एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणुत्ति ॥ १०४ ॥ ता अज्ज अम्ह मणोरहसंपत्ती जाया, तं होउ णं अम्हं कुमारे वद्धमाणे नामेणं ॥ १०५ ॥ समणे भगवं महावीरे कासवगुत्तेणं,

भ० महावीरस्य नाम-कथनं एवं तत् कारणानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१०६]

दीप अनुक्रम [१०६]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

तस्स णं तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा–अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे, सहसमुइ-आए समणे, अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे पडिमाण पालगे धीमं अरइरइसहे दविए वीरिअसंपन्ने देवेहिं से नामं कयं 'समणे भगवं महावीरे' ॥ १०६ ॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिआ कासवगुत्तेणं, तस्स णं तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा–सिद्धत्थे इ वा, सिज्जंसे इ वा, जसंसे इ वा ॥ समण-स्स णं भगवओ महावीरस्स माया वासिट्ठी गुत्तेणं, तीसे तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा–तिसला इ वा, विदेहदिन्ना इ वा, पिअकारिणी इ वा ॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पितिज्जे सुपासे, जिट्ठे भाया नंदिवद्धणे, भगिणी सुदंसणा, भारिया जसोआ कोडिन्ना गुत्तेणं॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स धूआ कासवी गुत्तेणं, तीसे दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा–अणोज्जा इ वा, पियदंसणा इ वा ॥ समणस्स णं

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१०७]

दीप अनुक्रम [११२]

भगवओ महावीरस्स नत्तुई कोसिअ(कासव)गुत्तेणं, तीसे णं दुवे नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा–सेसवई इ वा, जसवई इ वा ॥ १०७ ॥ समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपइन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिउहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने पुणरवि लोगंतिएहिं जीअकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पिआहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मिअमहुरसस्सिरीआहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं गंभीराहिं अपुणरुत्ताहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिनंदमाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी ॥१०८॥–" जय २ नंदा !, जय २ भद्दा !, भद्दं ते, जय २ खत्तिअवरवसहा !, बुज्झाहि भगवं लोगनाहा !, सयलजगज्जीवहियं पवत्तेहि धम्मतित्थं, हियसुहनिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सइत्तिकट्टु जय-

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[१०९] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१०९]

दीप अनुक्रम [११३]

जयसद्दं पउंजंति ॥ १०९ ॥ पुव्विंपि णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आभोइए अप्पडिवाई नाणदंसणे हुत्था, तएणं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं आभोइएणं नाणदंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ, आभोइत्ता चिच्चा हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा धणं, चिच्चा रज्जं, चिच्चा रट्ठं, एवं बलं वाहणं कोसं कुट्ठागारं, चिच्चा पुरं, चिच्चा अंतेउरं,चिच्चा जणवयं,चिच्चा विपुलधणकणगरयणमणिमुत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइयं संतसारसावइज्जं, विच्छड्डइत्ता, विगोवइत्ता,दाणं दायारेहिं परिभाइत्ता दाणंदाइयाणं परिभाइत्ता॥११०॥तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले,तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरसीए अभिनिवट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं चंदप्पभाए सीआए सदेवमणुआसुराए परिसाए सम-

भ० महावीरस्य दीक्षाया: वर्णनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१११]

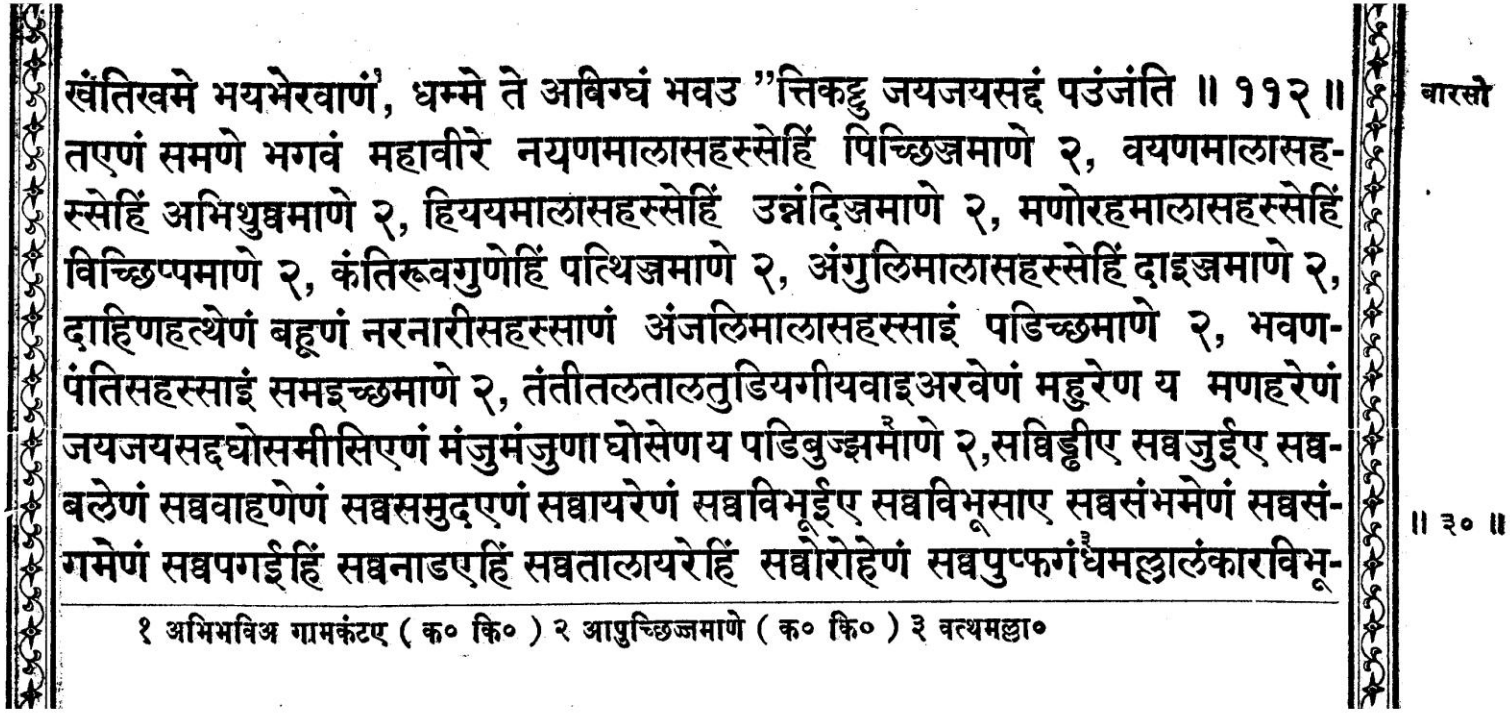
दीप अनुक्रम [११४]

णुगम्ममाणमग्गे संखियचक्कियनंगलिअमुहमंगलियवद्धमाणपूसमाणघंटियगणेहिं, ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मिअमहुरसस्सिरीआहिं वग्गूहिं अभिनंदमाणा अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी ॥ १११ ॥–

" जय २ नंदा !, जय २ भद्दा !, भद्दं ते खत्तियवरवसहा ! अभग्गेहिं नाणदंसणचरित्तेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जिअं च पालेहि समणधम्मं, जियविग्घोवि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागद्दोसमल्ले तवेणं धिइधणिअबद्धकच्छे, मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलुक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलवरनाणं, गच्छ य मुक्खं परं पयं जिणवरोवइट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं हंता परीसहचमूं, जय २ खत्तिअवरवसहा ! बहुइं दिवसाइं बहूइं पक्खाइं बहूइं मासाइं बहूइं उऊइं बहूइं अयणाइं बहूइं संवच्छराइं, अभीए परीसहोवसग्गाणं,

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [११२]

दीप अनुक्रम [११५]



कल्प० ॥ ३० ॥

खंतिखमे भयभेरवाणं, धम्मे ते अविग्घं भवउ "त्तिकट्टु जयजयसद्दं पउंजंति ॥ ११२ ॥ तएणं समणे भगवं महावीरे नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे २, हिययमालासहस्सेहिं उन्नंदिज्जमाणे २, मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे २, कंतिरूवगुणेहिं पत्थिज्जमाणे २, अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे २, दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारीसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे २, भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे २, तंतीतलतालतुडियगीयवाइअरवेणं महुरेण य मणहरेणं जयजयसद्दघोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिबुज्झमाणे २,सविड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वसंगमेणं सव्वपगईहिं सव्वनाडएहिं सव्वतालायरेहिं सव्वोरोहेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारविभू-

१ अभिभविअ गामकंटए (क० कि०) २ आपुच्छिज्जमाणे (क० कि०) ३ वत्थमल्ला०

बारसो ॥ ३० ॥

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [११३]

दीप अनुक्रम [११६]

साए सव्वतुडियसद्दसन्निनाएणं महया इड्ढीए महया जुइए महया बलेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहि-हुडुक्कदुंदुहिनिग्घोसनाइयरवेणं कुंडपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव नायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ ॥ ११३ ॥ उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुअइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोअं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगे अबीए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ॥ ११४ ॥ समणे भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं जाव चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए पाणिपडिग्गहिए ॥ समणे भगवं महावीरे साइरेगाइं दुवालस वासाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [११५]

दीप अनुक्रम [११७--११९]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

कल्प० ॥ ३१ ॥

उवसग्गा उप्पज्जंति, तंजहा–दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजाणिआ वा, अणुलोमा वा पडिलोमा वा, ते उप्पन्ने सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ॥ ११५ ॥ तएणं समणे भगवं महावीरे अणगारे जाए, इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवणखेलसंघाणजल्लपारिट्ठावणियासमिए मण-समिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी अकोहे अमाणे अमाए अलोहे संते पसंते उवसंते परिनिव्वुडे अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नगंथे[1] निरुवलेवे, कंसपाई इव मुक्कतोए, संखे इव निरंजणे, जीवे इव अप्पडिहयगई, गगणमिव निरालंबणे, वाऊ इव अप्पडिबद्धे, सारयसलिलं व सुद्धहि-यए, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे, कुम्मे इव गुत्तिंदिए, खग्गिविसाणं व एगजाए, विहग

१ छिण्णसोए (क० कि०)

बारसो ॥ ३१ ॥

भ० महावीरस्य केवलज्ञान पूर्वस्थिति

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [११६]

दीप अनुक्रम [१२०]

इव विप्पमुक्के, भारंडपक्खी इव अप्पमत्ते, कुंजरे इव सोंडीरे, वसहे इव जायथामे, सीहे इव दुद्धरिसे, मंदरे इव [१-२]निक्कंपे, सागरे इव गंभीरे, चंदे इव सोमलेसे, सूरे इव दित्ततेए, जच्चकणगं व जायरूवे, वसुंधरा इव सव्वफासविसहे, सुहुयहुयासणे इव तेयसा जलंते ॥ ११६ ॥ इमेसिं पयाणं दुन्नि संगहणिगाहाओ–"कंसे संखे जीवे, गगणे वाऊ य सरयसलिले अ। पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे य भारंडे ॥ १ ॥ कुंजर वसहे सीहे, नगराया चेव सागर-मखोहे। चंदे सूरे कणगे, वसुंधरा चेव हूयवहे ॥ २ ॥" नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे–से अ पडिबंधे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा– दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं सचित्ताचित्तमीसेसु दव्वेसु, खित्तओ णं गामे वा नगरे वा अरण्णे वा खित्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा नहे वा, काल-

१–२ अप्पकंपे १ नेमे तत्र गाथे

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[११७] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [११७]

दीप अनुक्रम [१२४]

ओ णं समए वा आवलिआए वा आणापाणुए वा थोवे वा खणे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उउए[1] वा अयणे वा संवच्छरे वा अन्नयरे वा दीहकालसंजोए, भावओ णं कोहे वा माणे वा मायाए वा लोभे वा भए वा पिज्जे वा दोसे वा कलहे वा अब्भक्खाणे वा पेसुन्ने वा परपरिवाए वा अरइरई वा मायामोसे वा मिच्छादंसणसल्ले वा (ग्रं० ६००) तस्स णं भगवंतस्स नो एवं भवइ ॥ ११७ ॥ से णं भगवं वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतिए मासे गामे एगराइए नगरे पंचराइए वासीचंदणसमाणकप्पे समतिणमणिलेट्ठुकंचणे समदुक्खसुहे[2] इहलोगपरलोगअप्पडिबद्धे जीवियमरणे अ[3] निरवकंखे संसारपारगामी कम्मसत्तुनिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए एवं च णं विहरइ ॥ ११८ ॥ तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं अणुत्तरेणं दंसणेणं

१ उऊ वा (क० कि०, क० सु०) २ समसुहदुक्खे (क० कि०, क० सु०) ३० मरणा नि० (क० कि०, क० सु०)

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ६०० श्लोकाणि समाप्तानि

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [११९]

दीप अनुक्रम [१२६]

अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं आलएणं अणुत्तरेणं विहारेणं अणुत्तरेणं वीरिएणं अणुत्तरेणं अज्जवेणं अणुत्तरेणं मद्दवेणं अणुत्तरेणं लाघवेणं अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए अणुत्तराए गुत्तीए अणुत्तराए तुट्ठीए अणुत्तरेणं सच्चसंजमतवसुचरिअसोवचिअफलनिव्वाणमग्गेणं, अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दुच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्ठाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगामस्स नगरस्स बहिआ उज्जुवालियाए नईए तीरे वेयावत्तस्स चेइअस्स अदूरसामंते सामागस्स गाहावईस्स कट्ठकरणंसि सालपायवस्स अहे गोदोहिआए उक्कुडुअनिसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोग-

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[११९] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

सुवागएणं झाणंतरिआए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ॥ ११९ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अरहा जाए, जिणे केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स परिआयं जाणइ पासइ सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं मणो माणसिअं भुत्तं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं, अरहा अरहस्स भागी, तं तं कालं मणवयकायजोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥ १२० ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए, चंपं च पिट्ठचंपं च नीसाए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए, वेसालिं नगरिं वाणियगामं च नीसाए दुवालस अंतरावासे वासावासं

१ तएणं समणे भगवं महावीरे (क० कि०, क० सु०)

भ० महावीरस्य केवलज्ञानप्राप्तिः

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१२१]

दीप अनुक्रम [१२७]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

उवागए, रायगिहं नगरं नालंदं च बाहिरियं नीसाए चउद्दस अंतरावासे वासावासं उवागए, छ मिहिलाए[1-2] दो भद्दिआए एगं आलंभियाए एगं सावत्थीए पणिअभूमीए एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए ॥ १२१ ॥ तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए ॥ १२२ ॥ तस्स णं अंतरावासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तिअबहुले, तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरमा रयणी, तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे, चंदे नामं से दुच्चे संवच्छरे पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे अग्गिवेसे नामं से

१–२ मिहिलियाए.

भ० महावीरस्य निर्वाणं

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१२३]

दीप अनुक्रम [१२९]

दिवसे उवसमित्ति पवुच्चइ, देवाणंदा नामं सा रयणी निरतित्ति पवुच्चइ, अच्चे लवे मुहुत्ते पाणू थोवे सिद्धे नागे करणे सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागए णं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ १२३ ॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहुहिं देवेहिं देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया आवि हुत्था ॥ १२४ ॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, सा रयणी बहुहिं देवेहि य देवीहि य ओवयमाणेहिं उप्पयमाणेहि य उप्पिंजलगभूआ कहकहगभूआ आवि हुत्था ॥ १२५ ॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं जिट्ठस्स गोअमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अंतेवासिस्स नायए पिज्जबंधणे वुच्छिन्ने, अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ॥ १२६ ॥ जं रयणिं च णं समणे

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१२७]

दीप अनुक्रम [१३३]

भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं नवमल्लई नवलेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारसवि गणरायाणो अमावासाए पाराभोयं[1] पोसहोववासं पट्ठविंसु, गए से भावुज्जोए, दव्वुज्जोअं करिस्सामो ॥ १२७ ॥ जं रयणिं च णं समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं खुद्दाए भासरासी नाम महग्गहे दोवाससहस्सठिईं समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते ॥ १२८ ॥ जप्पभिइं च णं से खुद्दाए भासरासी महग्गहे दोवाससहस्सठिईं समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते, तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो उदिए २ पूआसक्कारे पवत्तइ ॥ १२९ ॥ जया णं से खुद्दाए जाव जम्मनक्खत्ताओ विइक्कंते भविस्सइ, तया णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य उदिए २ पूआसक्कारे भविस्सइ ॥ १३० ॥ जं रयणिं च णं समणे

१ बाराभोए (क० कि०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१३१]

दीप अनुक्रम [१३७]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं कुंथू अणुद्धरी नामं समुप्पन्ना, जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो चक्खुफासं हव्वमागच्छति, जा अठिआ चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य चक्खुफासं हव्वमागच्छइ ॥ १३१ ॥ जं पासित्ता बहुहिं निग्गंथेहिं निग्गंथीहि य भत्ताइं पच्चक्खायाइं, से किमाहु भंते? अज्जप्पभिइं संजमे दुराराहे भविस्सइ ॥ १३२ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइपामुक्खाओ चउद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समणसंपया हुत्था ॥ १३३ ॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणापामुक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था ॥ १३४ ॥–समणस्स भगवओ० संखसयगपामुक्खाणं समणोवासगाणं एगा

१ दुराराहए (क० सु०, क० कि०)

भ० महावीरस्य श्रमण आदि संपदा

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१३५]

दीप अनुक्रम [१४१]

सयसाहस्सीं अउणट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था ॥ १३५ ॥ समणस्स भगवओ० सुलसारेवईपामुक्खाणं समणोवासिआणं तिन्नि सय-साहस्सीओ अट्ठारससहस्सा उक्कोसिआ समणोवासियाणं संपया हुत्था ॥ १३६ ॥ समणस्स णं भगवओ० तिन्नि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-सन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिआ चउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था ॥ १३७ ॥ समणस्स० तेरस सया ओहिनाणीणं अइसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणि-संपया हुत्था ॥१३८॥ समणस्स णं भगवओ० सत्त सया केवलनाणीणं संभिण्णवरनाण-दंसणधराणं उक्कोसिया केवलनाणिसंपया हुत्था ॥ १३९ ॥ समणस्स णं भ० सत्त सया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्वियसंपया हुत्था ॥ १४० ॥ समणस्स

१ साहस्सीओ (क० कि०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१४७]

णं भ० पंच सया विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु अ समुद्देसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिआ विउलमईणं संपया हुत्था ॥ १४१ ॥ समणस्स णं भ० चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुआसुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया हुत्था ॥ १४२ ॥ समणस्स णं भगवओ० सत्त अंतेवासिसयाइं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं, चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं ॥ १४३ ॥ समणस्स णं भग० अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिआ अणुत्तरोववाइयाणं संपया हुत्था ॥ १४४ ॥ समणस्स भ० दुविहा अंतगड-भूमी हुत्था, तंजहा–जुगंतगडभूमी य, परियायंतगडभूमी य, जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंत०, चउवासपरियाए अंतमकासी ॥ १४५ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता साइरेगाइं दुवालस वा-

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१४६]

दीप अनुक्रम [१५२]

साइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता बावत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुयसभाए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि संपलिअंकनिसण्णे पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता पहाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे २ कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ १४६ ॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असी-

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१५३]

इमे संवच्छरे काले गच्छइ, वायणंतरे पुण अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ इइ दीसइ ॥ १४७ ॥ (क० कि०, क० सु० १४८)

॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे हुत्था, तंजहा– विसाहाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, विसाहाहिं जाए, विसाहाहिं मुंडे भवित्ता अगा राओ अणगारिअं पव्वइए, विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने, विसाहाहिं परिनिवुए ॥१४९॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खे णं पाणयाओ कप्पाओ वीसंसागरोवमट्ठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बाणारसीए नयरीए आससेणस्स

अत्र "भगवन् महावीर" चरित्रं पूर्णम्, अथ भ० "पार्श्व" चरित्रं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१५०]

दीप अनुक्रम [१५५]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

रण्णो वामाए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए (ग्रं. ७००) भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥१५०॥ पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तिन्नाणोवगए आवि हुत्था, तंजहा–चइस्सामित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चुएमित्ति जाणइ, तेणं चेव अभिलावेणं सुविणदंसणविहाणेणं सव्वं– जाव–निअगं गिहं अणुपविट्ठा, जाव सुहंसुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥ १५१ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमंताणं दुच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले, तस्स णं पोसबहुलस्स दसमीपक्खे णं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइं-दिआणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरो-ग्गा आरोग्गं दारयं पयाया ॥१५२॥ जं रयणिं च णं पासे० जाए, सा रयणी बहुहिं देवेहिं

१ तं रयणिं च णं (क० कि०, क० सु०)

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ७०० श्लोकाणि समाप्तानि

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१५३]

दीप अनुक्रम [१५७]

देवीहि य जाव उप्पिंजलगभूया कहकहगभूया यावि हुत्था ॥ १५३ ॥ सेसं तहेव, नवरं जम्मणं पासाभिलावेणं भाणिअव्वं, जाव तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं ॥ १५४ ॥ पासे अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपइन्ने पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए, तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता पुणरवि लोगंतिएहिं जिअकप्पेहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी ॥ १५५ ॥–" जय जय नंदा, जय जय भद्दा, भद्दं ते " जाव जय-जयसद्दं पउंजंति ॥ १५६ ॥ पुव्विंपि णं पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स माणुस्स-गाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आभोइए तं चेव सव्वं–जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता जे से हेमंताणं दुच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले, तस्स णं पोसबहुलस्स इक्कारसीदिवसे णं पुव्वण्हकालसमयंसि विसालाए सिबिआए सदेवमणुआसुराए परिसाए, तं चेव सव्वं, नवरं वाणारसिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव आसमपए

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१५७]

दीप अनुक्रम [१५९]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

उज्जाणे, जेणेव असोगवरपायवे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुअइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोअं करेइ, करित्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अप्पाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ १५७ ॥ पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तंजहा–दिव्वा वा माणुस्सा वा तिरिक्खजोणिआ वा अणुलोमा वा पडिलोमा वा, ते उप्पन्ने सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ॥१५८॥ तएणं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए भासासमिए–जाव अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं, चउरासीइमे[1] राइंदिए अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे

१ चउरासीइमस्स राइंदिअस्स अंतरा वट्टमाणस्स (क० कि०, क० सु०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१५९]

दीप अनुक्रम [१६१]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

चित्तबहुले, तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खे णं पुव्वण्हकालसमयंसि धायइपायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरिआए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने, जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥ १५९ ॥ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा हुत्था, तंजहा–सुभे य १ अज्जघोसे य २, वसिट्ठे ३ बंभयारि य ४। सोमे ५ सिरिहरे ६ चेव, वीरभद्दे ७ जसेऽविय ८। ९ ॥ १६० ॥ पासस्स णं अरहओ पुरिस्सादाणीयस्स अज्जदिण्णपामुक्खाओ सोलससमणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समणसंपया हुत्था ॥ १६१ ॥ पासस्स णं अ० पुप्फचूलापामुक्खाओ अट्ठत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिआ अज्जियासंपया हुत्था ॥ १६२ ॥ पासस्स० सुव्वयपामुक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सीओ चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिआ समणोवासगाणं संपया हुत्था

॥१६३॥ पासस्स० सुनंदापामुक्खाणं समणोवासियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिआ समणोवासियाणं संपया हुत्था ॥ १६४ ॥ पासस्स० अट्ठसया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर–जाव–चउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था ॥ १६५॥ पासस्स णं० चउद्दससया ओहिनाणीणं, दससया केवलनाणीणं, इक्कारससया वेउव्वियाणं, छस्सया रिउमईणं, दससमणसया सिद्धा, वीसं अज्जियासया सिद्धा, अट्ठसया विउलमईणं, छसया वाईणं, बारससया अणुत्तरोववाइयाणं ॥ १६६ ॥ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतगडभूमी हुत्था, तंजहा–जुगंतगडभूमी, परियायंतगडभूमी य, जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी, तिवासपरिआए अंतमकासी ॥ १६७ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता, तेसीइं राइंदिआइं छउमत्थपरिआयं

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[१६८] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१६८]

दीप अनुक्रम [१६७]

पाउणित्ता, देसूणाइं सत्तरि वासाइं केवलिपरिआयं पाउणित्ता, पडिपुण्णाइं सत्तरि वासाइं सामण्णपरिआयं पाउणित्ता, एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जा-उयनामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे, तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खे णं उप्पिं संमे-असेलसिहरंसि अप्पचउत्तीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि वग्घारियपाणी कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्ख-प्पहीणे ॥ १६८ ॥ पासस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स दुवालस वाससयाइं विइक्कंताइं, तेरसमस्स य अयं तीसइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १६९ ॥

१ पुव्वरत्तावरत्त० (क० कि०, क० सु०)

अत्र "भगवन् "पार्श्व" चरित्रं पूर्णम्

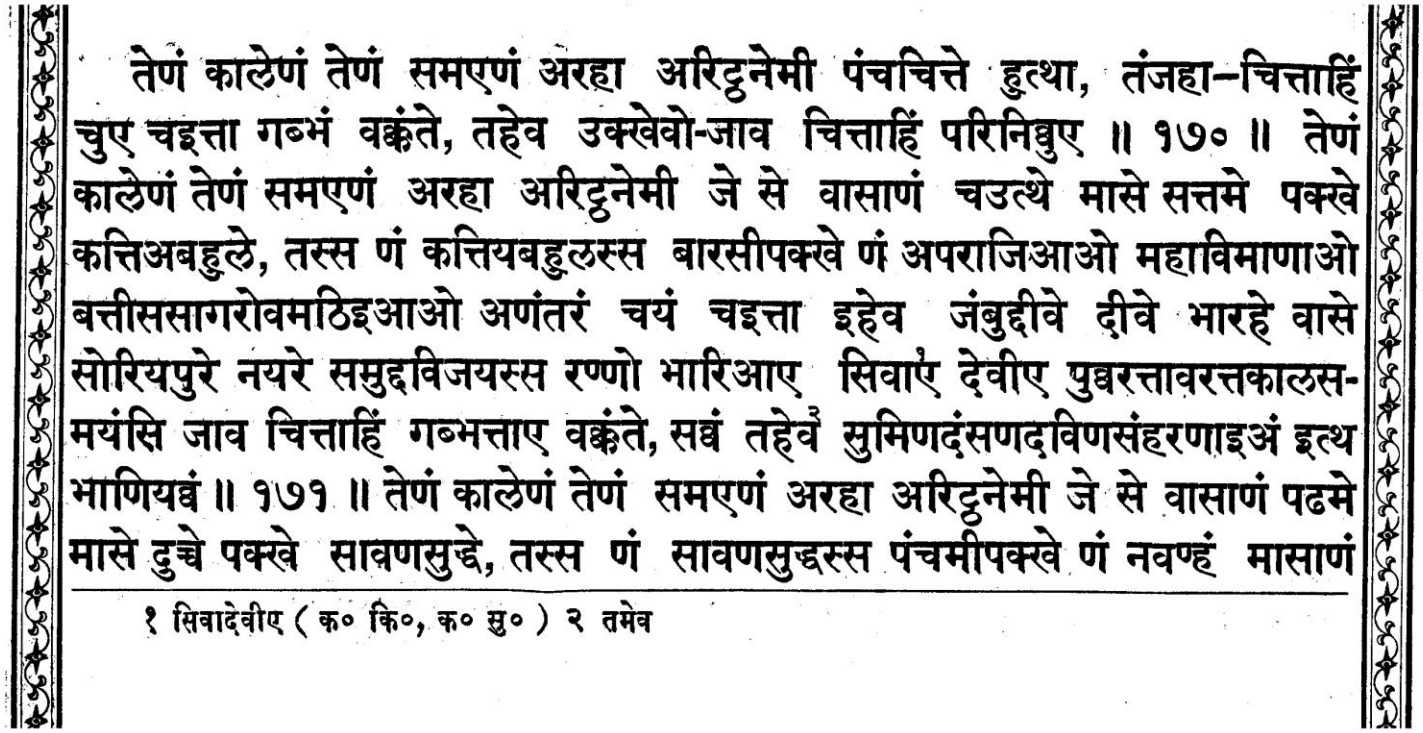
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[१७०] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१७०]

दीप अनुक्रम [१७०]



तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते हुत्था, तंजहा–चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, तहेव उक्खेवो-जाव चित्ताहिं परिनिव्वुए ॥ १७० ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तिअबहुले, तस्स णं कत्तियबहुलस्स बारसीपक्खे णं अपराजिआओ महाविमाणाओ बत्तीससागरोवमठिइआओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सोरियपुरे नयरे समुद्दविजयस्स रण्णो भारिआए सिवाए[1] देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव चित्ताहिं गब्भत्ताए वक्कंते, सव्वं तहेव[2] सुमिणदंसणदविणसंहरणाइअं इत्थ भाणियव्वं ॥ १७१ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे, तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमीपक्खे णं नवण्हं मासाणं

१ सिवादेवीए (क० कि०, क० सु०) २ तमेव

अथ भ० "अरिष्ठनेमि" चरित्रं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१७२]

दीप अनुक्रम [१७३]

जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं जाव आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया ॥ जम्मणं समुद्दविजयाभिलावेणं नेयव्वं, जाव तं होउ णं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं ॥ अरहा अरिट्ठनेमी दक्खे जाव तिण्णि वाससयाइं कुमारे अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोगंतिएहिं जिअकप्पिएहिं देवेहिं तं चेव सव्वं भाणियव्वं, जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता ॥ १७२ ॥ जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे, तस्स णं सावणसुद्धस्स छट्ठीपक्खे णं पुव्वण्हकालसमयंसि उत्तरकुराए सीयाए सदेवमणुआसुराए परिसाए अणुगम्ममाणमग्गे जाव बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्तानक्खत्तेणं जोगमुवागएणं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१७३]

दीप अनुक्रम [१७४]

एगं देवदूसमादाय एगेणं पुरिससहस्सेणं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ १७३ ॥ अरहा णं अरिट्ठनेमी चउपन्नं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्त-देहे, तं चेव सव्वं जाव पणपन्नगस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले, तस्स णं आसोयबहुलस्स पन्नरसीपक्खे णं दिवसस्स पच्छिमे भाए उज्जिंतसेलसिहरे वेडसपायवस्स अहे छट्ठेणं[1] भत्तेणं अपाणएणं चित्तानक्खत्तेणं[2] जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स जाव अणंते अणुत्तरे-जाव सव्वलोए सव्वजी-वाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥ १७४ ॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस गणा अट्ठारस गणहरा हुत्था ॥ १७५ ॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स वरदत्तपामुक्खाओ अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया हुत्था ॥ १७६ ॥ अरहओ णं अरि-

१ अट्ठमेणं (क० कि०, क० सु०) २ चित्ताहिं नक्खत्तेणं (क० कि०, क० सु०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१७७]

दीप अनुक्रम [१७७]

टुनेमिस्स अज्जजक्खिणिपामुक्खाओ चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जि-
यासंपया हुत्था ॥१७७॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स नंदपामुक्खाणं समणोवासगाणं एगा
सयसाहस्सीओ अउणत्तरिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था ॥१७८॥
अरहओ णं अरिट्ठ०महासुव्वयापामुक्खाणं समणोवासिगाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ छत्तीसं
च सहस्सा उक्कोसिआ समणोवासिआणं संपया हुत्था ॥१७९॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स
चत्तारि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर० जाव हुत्था ॥ १८० ॥
पन्नरससया ओहिनाणीणं, पन्नरससया केवलनाणीणं, पन्नरससया वेउव्विआणं, दससया
विउलमईणं, अट्ठसया वाईणं, सोलससया अणुत्तरोववाइआणं, पन्नरस समणसया
सिद्धा, तीसं अज्जियासयाइं सिद्धाइं ॥ १८१ ॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स दुविहा
अंतगडभूमी हुत्था, तंजहा–जुगंतगडभूमी परियायंतगडभूमी य–जाव अट्ठमाओ

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१८२]

दीप अनुक्रम [१७७]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी, दुवासपरिआए अंतमकासी ॥ १८२ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी तिण्णि वाससयाइं कुमारवासमज्झे वसित्ता चउपन्नं राइंदियाइं छउमत्थपरिआयं पाउणित्ता देसूणाइं सत्त वाससयाइं केवलिपरिआयं पाउणित्ता परिपुण्णाइं सत्तवाससयाइं सामण्णपरिआयं पाउणित्ता एगं वाससहस्सं सव्वाउअं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स अट्ठमीपक्खे णं उप्पिं उज्जिंतसेलसिहरंसि पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं चित्तानक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि नेसज्जिए कालगए (ग्रं. ८००) जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ १८३ ॥ अरहओ णं अरि-

१ दुवालस० (क० कि०, क० सु०) १–२ पडिपुण्णाइं ३ चित्ताहिं नक्खत्तेणं (क० सु०)

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ८०० श्लोकाणि समाप्तानि

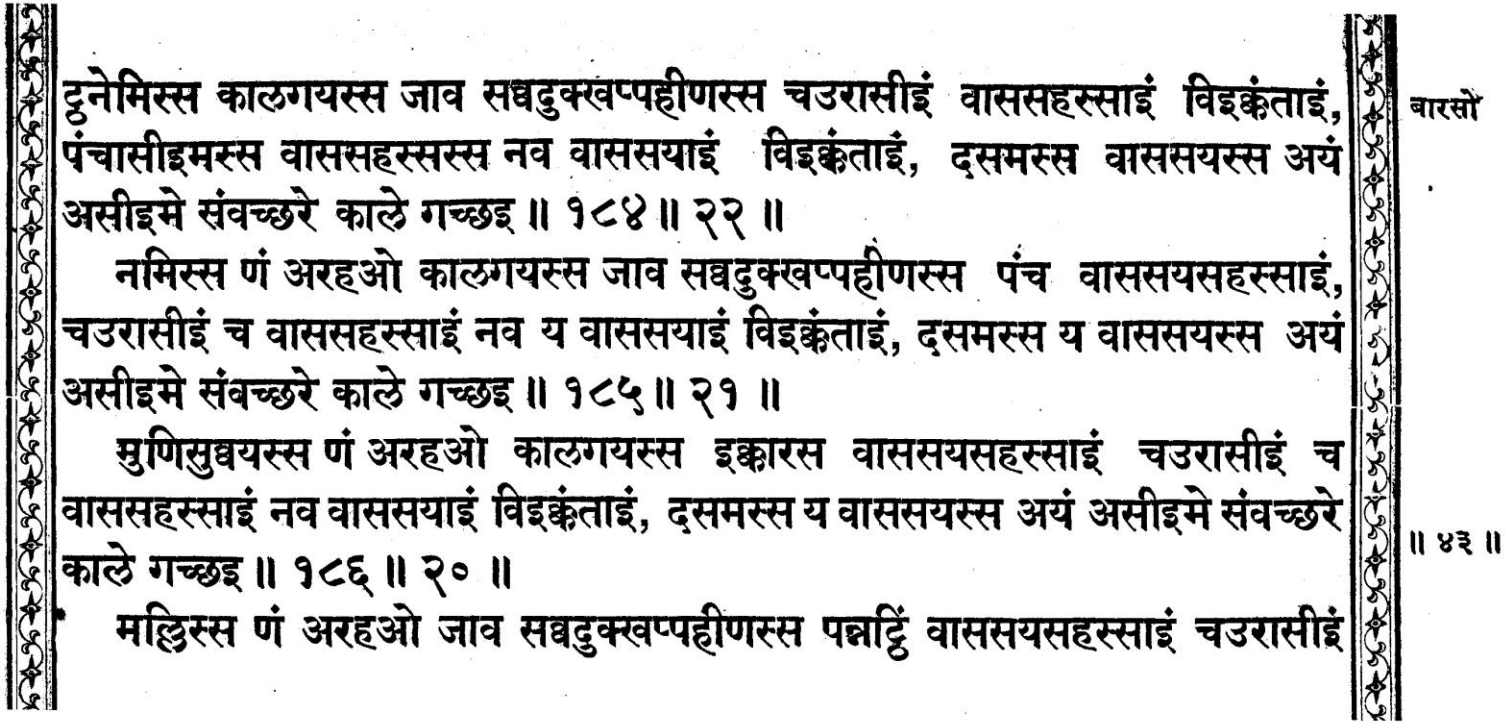
"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[१८४] / गाथा.||–|| .....

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१८४]

दीप अनुक्रम [१८०]



ट्ठनेमिस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स चउरासीइं वाससहस्साइं विइक्कंताइं, पंचासीइमस्स वाससहस्सस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १८४ ॥ २२ ॥

नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स पंच वाससयसहस्साइं, चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १८५ ॥ २१ ॥

मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ कालगयस्स इक्कारस वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १८६ ॥ २० ॥

मल्लिस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स पन्नट्ठिं वाससयसहस्साइं चउरासीइं

अत्र "भ० अरिष्ठनेमि" चरित्रं समाप्तं, अथ "नेमि भागवतात् आरभ्य भ० "अजित" पर्यन्त काल-अन्तर कथयते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१८७]

दीप अनुक्रम [१८३]

च वाससहस्साइं नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १८७ ॥ १९ ॥

अरस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स एगे वासकोडिसहस्से विइक्कंते, सेसं जहा मल्लिस्स–तं च एयं-पंचसट्ठिं लक्खा चउरासीइं सहस्सा विइक्कंता, तंमि समए महावीरो निवुओ, तओ परं नव वाससया विइक्कंता दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ।एवं अग्गओ जाव सेयंसो ताव दट्ठवं ॥ १८८॥ १८ ॥

कुंथुस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स एगे चउभागपलिओवमे विइक्कंते, पंचसट्ठिं वाससयसहस्सा, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १८९ ॥ १७ ॥

संतिस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स एगे चउभागूणे पलिओवमे विइक्कंते पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९० ॥ १६ ॥

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१९१]

दीप अनुक्रम [१८७]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

धम्मस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स तिण्णि सागरोवमाइं विइक्कंताइं, पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९१ ॥ १५ ॥

अणंतस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स सत्त सागरोवमाइं विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९२ ॥ १४ ॥

विमलस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स सोलस सागरोवमाइं विइक्कंताइं, पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९३ ॥ १३ ॥

वासुपुज्जस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स छायालीसं सागरोवमाइं विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९४ ॥ १२ ॥

सिज्जंसस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स एगे सागरोवमसए विइक्कंते पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९५ ॥ ११ ॥

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१९६]

दीप अनुक्रम [१९२]

सीअलस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स एगा सागरोवमकोडी तिवास-अद्धनवमासाहिअबायालीसवाससहस्सेहिं ऊणिआ विइक्कंता, एयंमि समए वीरे निवुओ, तओऽविय णं परं नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १९६ ॥ १० ॥

सुविहिस्स णं अरहओ पुप्फदंतस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स दस सागरोवमको-डीओ विइक्कंताओ, सेसं जहा सीअलस्स, तंच इमं–तिवासअद्धनवमासाहिअबायाली-सवाससहस्सेहिं ऊणिआ[1] विइक्कंता इच्चाइ ॥ १९७ ॥ ९ ॥

चंदप्पहस्स णं अरहओ जाव–प्पहीणस्स एगं सागरोवमकोडिसयं विइक्कंतं, सेसं

१ ऊणिआइं विइक्कंताइं इच्चाइअं (क० सु०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१९८]

दीप अनुक्रम [१९४]

जहा सीअलस्स, तंच इमं–तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ ॥ १९८ ॥ ८ ॥

सुपासस्स णं अरहओ जाव–प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडिसहस्से विइक्कंते, सेसं जहा सीअलस्स, तंच इमं-तिवासअद्धनवमासाहिंअबायालीससहस्सेहिं ऊणिआ इच्चाइ ॥ १९९ ॥ ७ ॥

पउमप्पहस्स णं अरहओ जावप्पहीणस्स दस सागरोवमकोडिसहस्सा विइक्कंता, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं इच्चाइयं, सेसं जहा सीअलस्स ॥ २०० ॥ ६ ॥

सुमइस्स णं अरहओ जाव०प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडिसयसहस्से विइक्कंते, सेसं जहा सीअलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं इच्चाइयं ॥ २०१ ॥ ५ ॥

अभिनंदणस्स णं अरहओ जाव०प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता,

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२०२]

दीप अनुक्रम [१९८]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

सेसं जहा सीअलस्स तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं॥२०२॥ ४

संभवस्स णं अरहओ जाव०प्पहीणस्स वीसं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीअलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिं इच्चाइयं ॥ २०३ ॥ ३ ॥

अजियस्स णं अरहओ जावप्पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीअलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवाससहस्सेहिंइच्चाइयं॥२०४॥२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए चउउत्तरासाढे अभीइपंचमे हुत्था, तंजहा–उत्तरासाढाहिं चुए-चइत्ता गब्भं वक्कंते जाव अभीइणा परिनिवुए ॥ २०५ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे

अथ "भ० ऋषभ" चरित्रं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२०६]

दीप अनुक्रम [२०२]

सत्तमे पक्खे आसाढबहुले तस्स णं आसाढबहुलस्स चउत्थीपक्खे णं सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ तित्तीसंसागरोवमट्ठिइआओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे इक्खागभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए[1] भारिआए पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि आहारवक्कंतीए जाव गब्भत्ताए वक्कंते ॥२०६॥ उसभे णं अरहा कोसलिए तिन्ना-णोवगए आविहुत्था, तंचहा-चइस्सामित्ति जाणइ-जाव-सुमिणे पासइ, तंजहा-गयगाहा। सव्वं तहेव-नवरं पढमं उसभं मुहेणं अइंतं पासइ-सेसाओ गयं। नाभिकुलगरस्स साहइ[2], सुविणपाढगा नत्थि, नाभिकुलगरो सयमेव वागरेइ ॥ २०७ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खे णं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइं-

१ मरुदेवाए (क० कि०, क० सु०) २ साहेइ (क० कि०, क० सु०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२०८]

दीप अनुक्रम [२०४]

दियाणं जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं जाव आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया ॥ २०८ ॥ तं चेव सव्वं-जाव देवा देवीओ य वसुहारवासं वासिंसु, सेसं तहेव चारगसोहणं माणुम्माणवड्ढणं-उस्सुक्कमाइयट्ठिइवडियजूयवज्जं सव्वं भाणिअव्वं ॥ २०९ ॥ उसभे णं अरहा कोसलिए कासवगुत्ते णं, तस्स णं पंच नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा-उसभे इ वा, पढमराया इ वा, पढमभिक्खायरे इ वा, पढमजिणे इ वा, पढमतित्थयरे इ वा ॥ २१० ॥ उसभे णं अरहा कोसलिए दक्खे दक्खपइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ, वसित्ता तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झे वसइ, तेवट्ठिं च पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झे वसमाणे लेहाइआओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ, चउसट्ठिं महिलागुणे, सिप्पसयं च कम्माणं, तिन्निवि पयाहिआए उवदिसइ, उवदिसित्ता

पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता पुणरवि लोअंतिएहिं जिअकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं, सेसं तं चेव सव्वं भाणिअव्वं, जाव दाणं दाइआणं परिभाइत्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खे णं दिवसस्स पच्छिमे भागे सुदंसणाए सीयाए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे जाव विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स जाव सयमेव चउमुट्ठिअं लोअं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं खत्तियाणं च चउहिं पुरिससहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ २११ ॥ उसभे णं अरहा कोसलिए एगं वाससहस्सं निच्चं वोसट्ठ-

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२१२]

दीप अनुक्रम [२०७]

काए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा जाव० अप्पाणं भावेमाणस्स इक्कं वाससहस्सं विइक्कंतं, तओ णं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणबहुले, तस्स णं फग्गुणबहुलस्स इक्कारसीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि पुरिमतालस्स नयरस्स बहिआ सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरिआए वट्टमाणस्स अणंते जाव० जाणमाणे पासेमाणे विहरइ ॥ २१२ ॥ उसभस्स णं अरहओ कोसलिअस्स चउरासीई गणा, चउरासीई गणहरा हुत्था ॥ २१३ ॥ उसभस्स णं० उसभसेणपामुक्खाणं चउरासीइओ समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया हुत्था ॥ २१४ ॥ उसभस्स णं० बंभिसुंदरिपामुक्खाणं अज्जियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था ॥ २१५ ॥ उसभस्स णं० सिज्जंसपामुक्खाणं समणोवासगाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ पंचसहस्सा उक्कोसिया

समणोवासगसंपया हुत्था ॥ २१६ ॥ उसभस्स णं० सुभद्दापामुक्खाणं समणोवासियाणं पंचसयसाहस्सीओ चउपण्णं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था ॥ २१७ ॥ उसभस्स णं० चत्तारि सहस्सा सत्तसया पण्णासा चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं जाव उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था ॥ २१८ ॥ उसभस्स णं नव सहस्सा ओहिनाणीणं उक्कोसिया० ॥ २१९ ॥ उसभस्स णं वीससहस्सा केवलनाणीणं उक्कोसिया० ॥ २२० ॥ उसभस्स णं० वीससहस्सा छच्च सया वेउव्वियाणं० उक्कोसिया० ॥ २२१ ॥ उसभस्स णं० बारस सहस्सा छच्च सया पण्णासा विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवेसमुद्देसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं पासमाणाणं उक्कोसिआ विउलमइसंपया हुत्था ॥ २२२ ॥ उसभस्स णं० बारस सहस्सा छच्च सया

१ दीवेसु दोसु अ समुद्देसु (क० कि०, क० सु०)

पण्णासा वाईणं० ॥ २२३ ॥ उसभस्स णं० वीसं अंतेवासिसहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ[1] सिद्धाओ ॥ २२४ ॥ उसभस्स णं० अरहओ बावीससहस्सा नवसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं जाव भद्दाणं उक्कोसिआ० ॥ २२५ ॥ उसभस्स णं० अरहओ दुविहा अंतगडभूमी हुत्था, तंजहा-जुगंतगडभूमी य परियायंतगडभूमी य, जाव असंखिज्जाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी, अंतोमुहुत्तपरिआए अंतमकासी ॥ २२६ ॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता णं तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं रज्जवासमज्झे वसित्ता णं तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता णं एगं वाससहस्सं छउमत्थपरिआयं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं वाससहस्सूणं केवलिपरिआयं पाउणित्ता पडि-

१ सहस्साओ (क० सु०, क० कि०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२२७]

दीप अनुक्रम [२१२]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

पुण्णं[1] पुव्वसयसहस्सं सामण्णपरियागं पाउणित्ता चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदुसमाए समाए बहु-विइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माहबहुलस्स (ग्रं० ९००) तेरसीपक्खे णं उप्पिं अट्ठाव-यसेलसिहरंसि दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं चोद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं अभीइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि संपलियंकनिसण्णे कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ २२७ ॥ उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स तिण्णि वासा अद्धनवमा य मासा विइक्कंता, तओवि परं एगा सागरोवमकोडाकोडी तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया विइ-

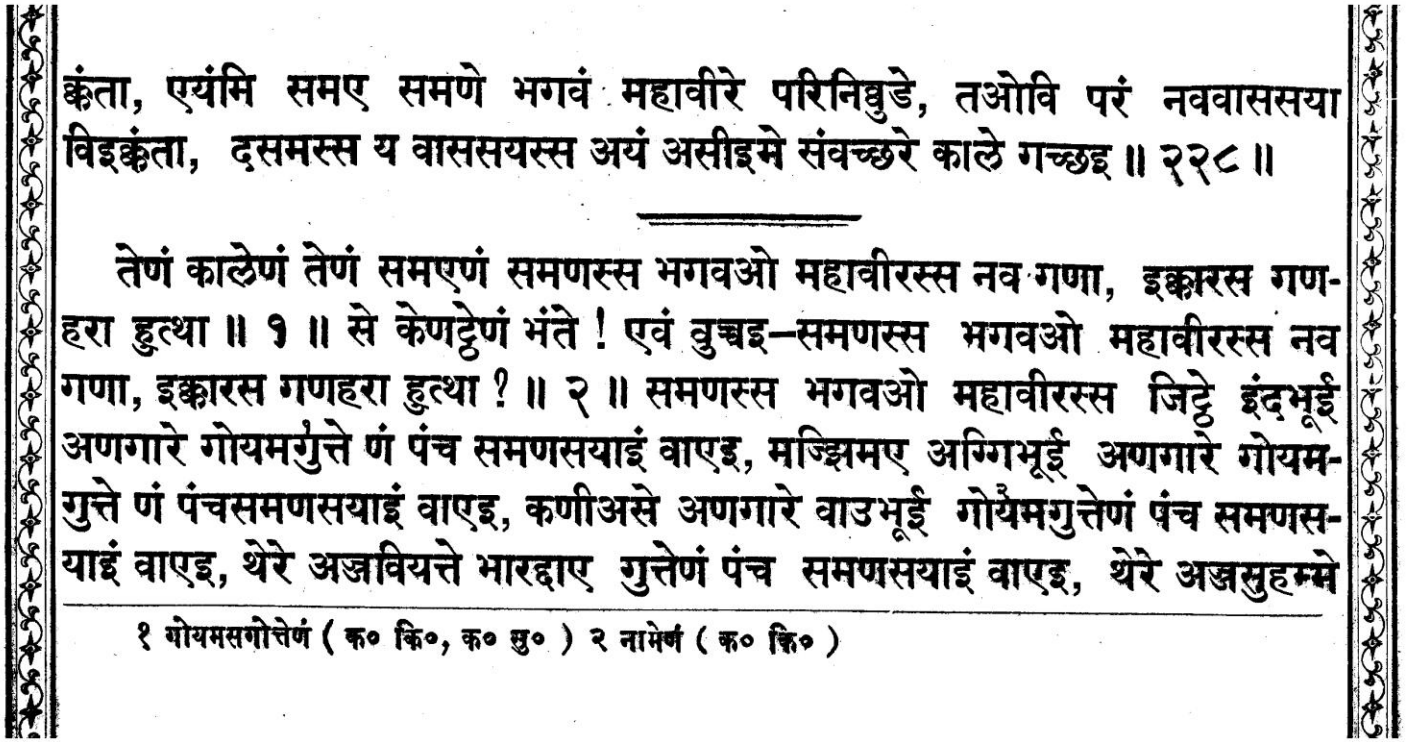
१ संपुण्णं (क० कि०)

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ९०० श्लोकाणि समाप्तानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२२८]

दीप अनुक्रम [२१३]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्



क्कंता, एयंमि समए समणे भगवं महावीरे परिनिव्वुडे, तओवि परं नववाससया विइक्कंता, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ २२८ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ॥ १ ॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ? ॥ २ ॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमगुत्ते णं पंच समणसयाइं वाएइ, मज्झिमए अग्गिभूई अणगारे गोयमगुत्ते णं पंचसमणसयाइं वाएइ, कणीअसे अणगारे वाउभूई गोयमगुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्जवियत्ते भारद्दाए गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्जसुहम्मे

१ गोयमसगोत्तेणं (क० कि०, क० मु०) २ नामेणं (क० कि०)

अत्र तीर्थकर-चरित्राणि परिसमाप्तानि

अथ द्वितिय् वाचना-रूप स्थवीरावली आरभ्यते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३]

दीप अनुक्रम [२१५]

अग्गिवेसायणे गुत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे मंडितपुत्ते वासिट्ठे गुत्तेणं अड्ढुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे मोरिअपुत्ते कासवे गुत्तेणं अड्ढुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे अकंपिए गोयमे[1] गुत्तेणं-थेरे अयलभाया हारिआयणे गुत्तेणं-पत्तेयं एते दुण्णिवि थेरा तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वाएंति, थेरे अज्जमेइज्जे-थेरे पभासे-एए दुण्णिवि थेरा कोडिन्ना गुत्तेणं तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वाएंति। से तेणट्ठेणं अज्जो! एवं वुच्चइ–समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ॥ ३ ॥ सव्वेवि णं एते समणस्स भगवओ महावीरस्स एक्कारसवि[2] गणहरा दुवालसंगिणो चउदसपुव्विणो समत्तगणिपिडगधारगा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं कालगया जाव सव्वदुक्खप्पहीणा ॥ थेरे इंदभूई, थेरे अज्जसुहम्मे य सिद्धिगए महावीरे पच्छा दुण्णिवि थेरा परिनिव्वुया ॥ जे

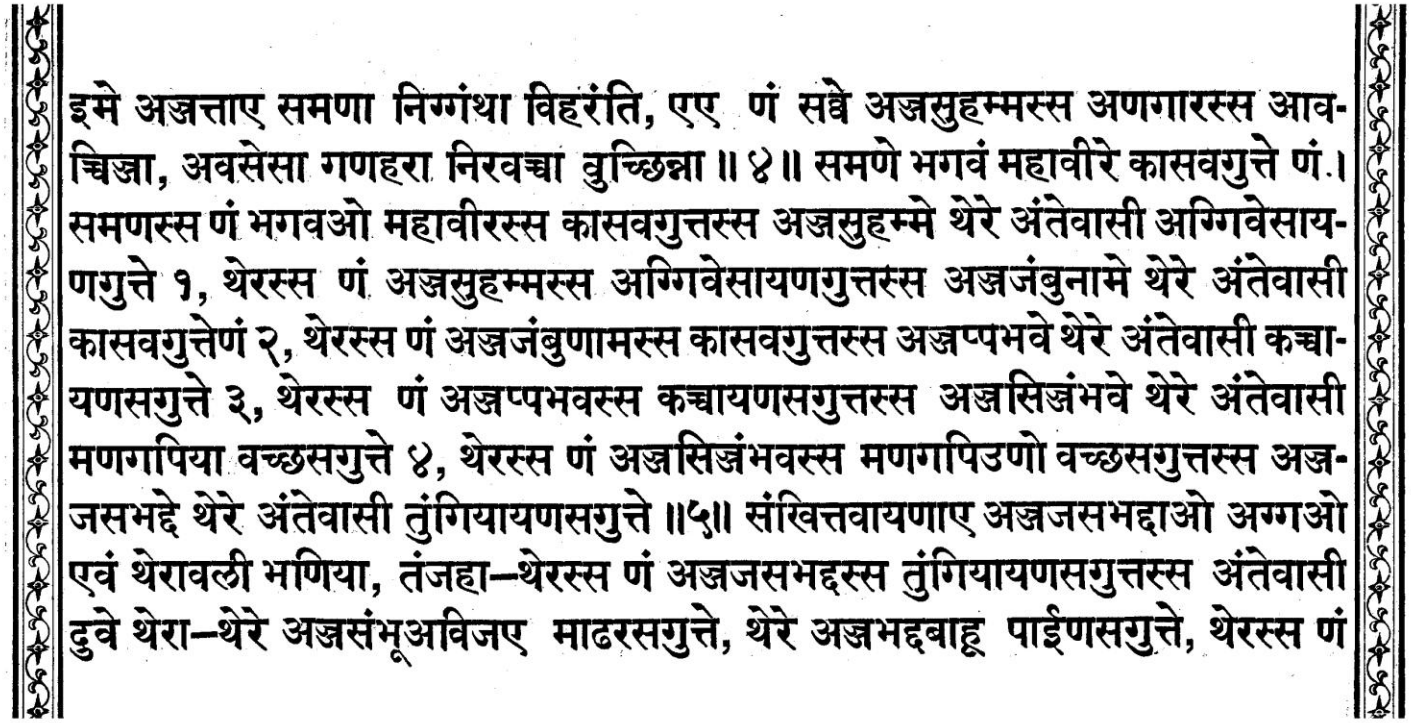
१ गोयमसगुत्तेणं (क० कि०, क० सु०) २ इक्कारस (क० कि०, क० सु०)

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[४] / गाथा.||–|| .....

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४]

दीप अनुक्रम [२१७]



इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, एए णं सव्वे अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स आव-
च्चिज्जा, अवसेसा गणहरा निरवच्चा वुच्छिन्ना ॥ ४ ॥ समणे भगवं महावीरे कासवगुत्ते णं।
समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगुत्तस्स अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसाय-
णगुत्ते १, थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणगुत्तस्स अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी
कासवगुत्तेणं २, थेरस्स णं अज्जजंबुणामस्स कासवगुत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चा-
यणसगुत्ते ३, थेरस्स णं अज्जप्पभवस्स कच्चायणसगुत्तस्स अज्जसिज्जंभवे थेरे अंतेवासी
मणगपिया वच्छसगुत्ते ४, थेरस्स णं अज्जसिज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छसगुत्तस्स अज्ज-
जसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगुत्ते ॥५॥ संखित्तवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ
एवं थेरावली भणिया, तंजहा–थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगुत्तस्स अंतेवासी
दुवे थेरा–थेरे अज्जसंभूअविजए माढरसगुत्ते, थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगुत्ते, थेरस्स णं

सुधर्मास्वामिनः आरभ्य स्थवीरावली प्रकाश्यते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६]

दीप अनुक्रम [२२२]

अज्जसंभूअविजयस्स माढरसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा–थेरे अज्जमहागिरी एलावच्चसगुत्ते, थेरे अज्जसुहत्थी वासिट्ठसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा सुट्ठियसुप्पडिबुद्धा कोडियकाकंदगा वग्घावच्चसगुत्ता, थेराणं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगुत्ते, थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगुत्ते, थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसियगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरे गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जवइरसेणे उक्कोसियगुत्ते, थेरस्स णं अज्जवइरसेणस्स उक्कोसिअगुत्तस्स अंतेवासी चत्तारि थेरा

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६]

दीप अनुक्रम [२२२]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

–थेरे अज्जनाइले १ थेरे अज्जपोमिले २ थेरे अज्जजयंते ३ थेरे अज्जतावसे ४, थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया, थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया, थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयंती साहा निग्गया, थेराओ अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया ४ इति ॥ ६ ॥ वित्थरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ पुरओ थेरावली एवं पलोइज्जइ, तंजहा–थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा–थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगुत्ते, थेरे अज्जसंभूअविजए माढरसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणसगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा–थेरे गोदासे १, थेरे अग्गिदत्ते २, थेरे जण्णदत्ते ३, थेरे सोमदत्ते ४ कासवगुत्तेणं, थेरेहिंतो गोदासेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो

१ विलोइज्जइ (क० कि०)

अथ स्थावीरावले: विस्तृत-वाचना कथयते

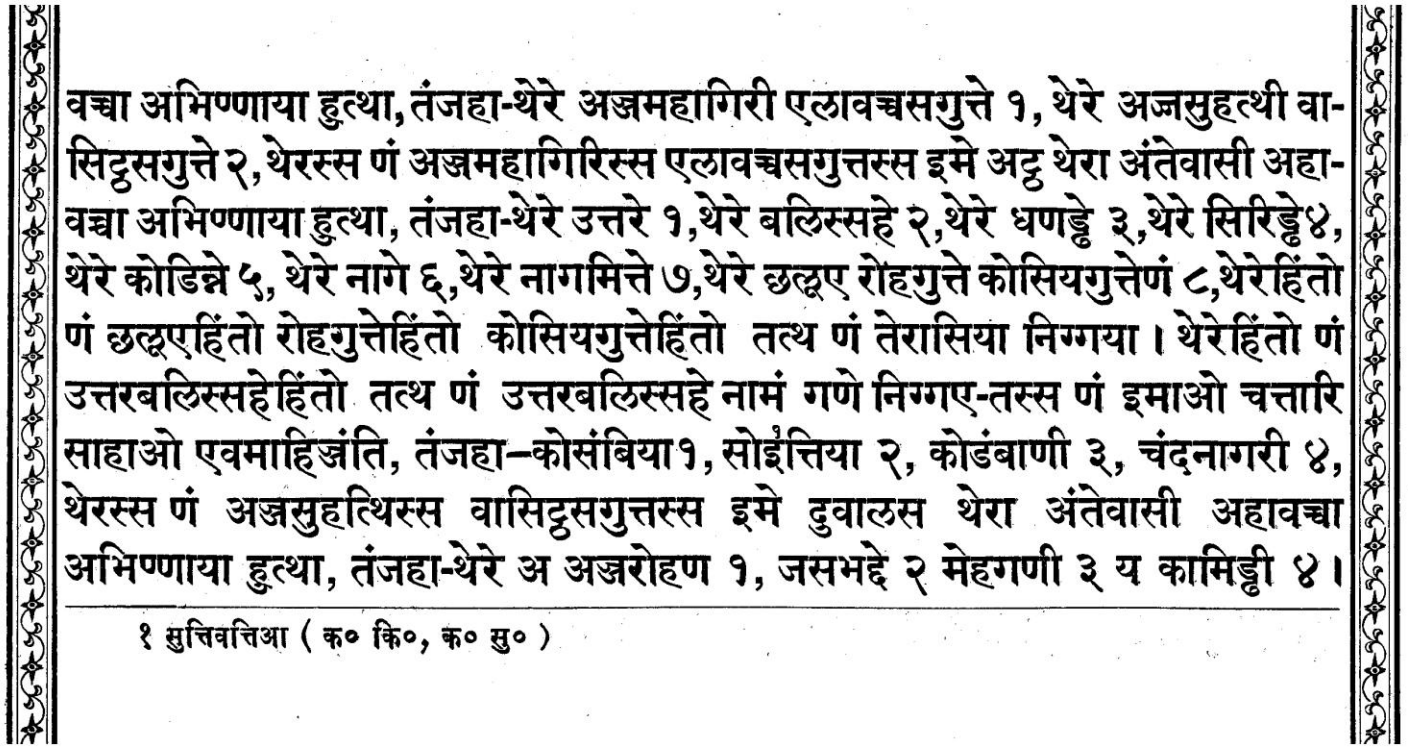
प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७]

दीप अनुक्रम [२२७]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

इत्थ णं गोदासगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–तामलित्तिया १, कोडीवरिसिया २, पंडुवद्धणिया[1] ३, दासीखब्बडिया ४, थेरस्स णं अज्जसंभूयविजयस्स माढरसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा–नंदणभद्दु१वनंदण-भद्दे२ तह तीसभद्द ३ जसभद्दे ४। थेरे य सुमणभद्दे[2] ५, मणिभद्दे[3] ६ पुण्णभद्दे ७ य ॥ १ ॥ थेरे अ थूलभद्दे ८, उज्जुमई ९ जंबुनामधिज्जे १० य। थेरे अ दीहभद्दे ११, थेरे तह पंडुभद्दे १२ य ॥ २ ॥ थेरस्स णं अज्जसंभूअविजयस्स माढर-सगुत्तस्स इमाओ सत्त अंतेवासिणीओ अहावच्चाओ अभिण्णायाओ हुत्था, तंजहा-जक्खा१ य जक्खदिण्णा २, भूया ३ तह चेव भूयदिण्णा य४। सेणा ५ वेणा ६ रेणा ७, भगिणीओ थूलभद्दस्स ॥१॥ थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहा-

१ पोंडवद्धणिआ (क० कि०) २ सुमिणभद्दे (क० कि०, क० सु०) ३ गणिभद्दे (क० कि० क० सु०)

दशाश्रुत० छेदसूत्र अन्तर्गत्	“कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्) ..... मूलं- सूत्र.[७] / गाथा.||१|| .....
प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७] दीप अनुक्रम [२२७]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम् 
	विविध गण एवं शाखाया: वर्णनं क्रियते

वच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा-थेरे अज्जमहागिरी एलावच्चसगुत्ते १, थेरे अज्जसुहत्थी वासिट्ठसगुत्ते २, थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा-थेरे उत्तरे १, थेरे बलिस्सहे २, थेरे धणड्ढे ३, थेरे सिरिड्ढे ४, थेरे कोडिन्ने ५, थेरे नागे ६, थेरे नागमित्ते ७, थेरे छलूए रोहगुत्ते कोसियगुत्तेणं ८, थेरेहिंतो णं छलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ णं तेरासिया निग्गया। थेरेहिंतो णं उत्तरबलिस्सहेहिंतो तत्थ णं उत्तरबलिस्सहे नामं गणे निग्गए-तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा—कोसंबिया १, सोइत्तिया २, कोडंबाणी ३, चंदनागरी ४, थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा-थेरे अ अज्जरोहण १, जसभद्दे २ मेहगणी ३ य कामिड्ढी ४।

१ सुत्तिवत्तिआ (क० कि०, क० सु०)

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक ||१||

दीप अनुक्रम [२३३]

सुट्ठिय ५ सुप्पडिबुद्धे ६, रक्खिय ७ तह रोहगुत्ते ८ अ ॥ १ ॥ इसिगुत्ते ९ सिरिगुत्ते १०, गणी अ बंभे ११ गणी य तह सोमे १२। दस दो अ गणहरा खलु, एए सीसा सुहत्थिस्स ॥ २ ॥ थेरेहिंतो णं अज्जरोहणेहिंतो णं कासवगुत्तेहिंतो णं तत्थ णं उद्देहगणे नामं गणे निग्गए, तस्सिमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ, छच्च कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–उदुंबरिज्जिया १, मासपूरिआ २, मइपत्तिया ३, पुण्णपत्तिया[1] ४, से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा–पढमं च नागभूयं, बिइयं पुण सोमभूइयं होइ। अह उल्लगच्छ तइअं ३, चउत्थयं हत्थलिज्जं तु ॥ १ ॥ पंचमगं नंदिज्जं ५, छट्ठं पुण पारिहासयं ६ होइ। उद्देहगणस्सेए, छच्च कुला हुंति नायव्वा ॥ २ ॥ थेरेहिंतो णं सिरिगुत्तेहिंतो हारियसगुत्ते-

१ पण्णपत्तिआ (क० कि०, क० सु०)

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७]

दीप अनुक्रम [२४१]

हिंतो इत्थ णं चारणगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, सत्त य कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–हारियमालागारी १, संकासीआ २, गवेधुया ३, वज्जनागरी ४। से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा,–पढमित्थ वत्थलिज्जं १, बीयं पुण पीइधम्मिअं २ होइ। तइअं पुण हालिज्जं ३, चउत्थयं पूसमित्तिज्जं ॥ १ ॥ पंचमगं मालिज्जं ५, छट्ठं पुण अज्जवेडयं ६ होइ। सत्तमयं कण्हसहं ७, सत्त कुला चारणगणस्स ॥ २ ॥ थेरेहिंतो भद्दजसेहिंतो भारद्दायसगुत्तेहिंतो इत्थ णं उड्डुवाडियगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ तिण्णि कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–चंपिज्जिया १ भद्दिज्जिया २ काकंदिया ३ मेहलिज्जिया ४। से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा,–भद्दजसियं १ तह भद्द-

गुत्तियं २ तइयं च होइ जसभद्दं ३। एयाइं उडुवाडिय–गणस्स तिण्णेव य कुलाइं ॥ १ ॥ थेरेहिंतो णं कामिड्ढीहिंतो कोडालसगुत्तेहिंतो इत्थ णं वेसवाडियगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ ? सा० तंजहा,–सावत्थिया १ रज्जपालिआ २, अंतरिज्जिया ३, खेमलिज्जिया ४। से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा,–गणियं १ मेहिय २ कामड्ढिअं ३ च तह होइ इंदपुरगं ४ च। एयाइं वेसवाडिय–गणस्स चत्तारि उ कुलाइं ॥ १ ॥ थेरेहिंतो णं इसिगुत्तेहिंतो काकंदएहिंतो वासिट्ठसगुत्तेहिंतो इत्थ णं माणवगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, तिण्णि य कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा,–कासवज्जिया १, गोयमज्जिया २, वासिट्ठिया ३, सोरट्ठिया ४। से तं साहाओ, से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा,–इसिगु-

प्रत सूत्रांक/ गाथांक ||१||

दीप अनुक्रम [२४५]

त्ति इत्थ पढमं १, बीयं इसिदत्तिअं मुणेयव्वं २। तइयं च अभिजयंतं ३, तिण्णि कुला माणवगणस्स ॥ १ ॥ थेरेहिंतो सुट्ठिय–सुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडिय–काकंदएहिंतो वग्घावच्चसगुत्तेहिंतो इत्थ णं कोडियगणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा–उच्चानागरि १ विज्जाहरी य २ वइरी य ३ मज्झिमिल्ला ४ य। कोडियगणस्स एया, हवंति चत्तारि साहाओ॥ १ ॥ से तं साहाओ॥ से किं तं कुलाइं? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा–पढमित्थ बंभलिज्जं १, बिइयं नामेण वत्थलिज्जं तु २। तइयं पुण वाणिज्जं ३, चउत्थयं पण्हवाहणयं ४॥ १ ॥ थेराणं सुट्ठियसुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदयाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा–थेरे अज्जइंददिन्ने १ थेरे

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७]

दीप अनुक्रम [२४७]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

पियगंथे २ थेरे विज्जाहरगोवाले कासवगुत्ते णं ३ थेरे इसिदिन्ने ४, थेरे अरिहदत्ते ५। थेरेहिंतो णं पियगंथेहिंतो एत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं विज्जाहरगोवालेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो एत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया ॥ थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कासवगुत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तं०—थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरसगुत्ते १, थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगुत्ते २। थेरेहिंतो णं अज्जसंतिसेणिएहिंतो माढरसगुत्तेहिंतो एत्थ णं उच्चानागरी साहा निग्गया। थेरस्स णं अज्जसंतिसेणियस्स माढरसगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—(ग्रं० १०००) थेरे अज्जसेणिए, थेरे अज्जतावसे, थेरे अज्जकुबेरे, थेरे अज्जइसिपा-

१ इसिदत्ते (क० सु०, क० कि०)

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य १००० श्लोकाणि समाप्तानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७]

दीप अनुक्रम [२५०]

लिए । थेरेहिंतो णं अज्जसेणिएहिंतो एत्थ णं अज्जसेणिया साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जतावसेहिंतो एत्थ णं अज्जतावसी साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जकुबेरेहिंतो एत्थ णं अज्जकुबेरा[1] साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जइसिपालिएहिंतो एत्थ णं अज्जइसिपालिया साहा निग्गया । थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसियगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा–थेरे धणगिरी, थेरे अज्जवइरे, थेरे अज्जसमिए, थेरे अरिहदिन्ने । थेरेहिंतो णं अज्जसमिएहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ णं बंभदीविया साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जवइरेहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ णं अज्जवइरी साहा निग्गया । थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगुत्तस्स इमे तिण्णि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा–थेरे अज्जवइरसेणे, थेरे अज्जपउमे, थेरे अज्जरहे । थेरेहिंतो

१ अज्जकुबेरि (क० कि०)

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[७] / गाथा.||–|| .....

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७]

दीप अनुक्रम [२५३]

णं अज्जवइरसेणेहिंतो इत्थ णं अज्जनाइली साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जपउमेहिंतो इत्थ णं अज्जपउमा साहा निग्गया, थेरेहिंतो णं अज्जरहेहिंतो इत्थ णं अज्जजयंतीसाहा निग्गया। थेरस्स णं अज्जरहस्स वच्छसगुत्तस्स अज्जपूसगिरी थेरे अंतेवासी कोसियगुत्ते। थेरस्स णं अज्जपूसगिरिस्स कोसियगुत्तस्स अज्जफग्गुमित्ते थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जफग्गुमित्तस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जधणगिरी थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जधणगिरिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अज्जसिवभूई थेरे अंतेवासी कुच्छसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जसिवभूइस्स कुच्छसगुत्तस्स अज्जभद्दे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते। थेरस्स णं अज्जभद्दस्स कासवगुत्तस्स अज्जनक्खत्ते थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते। थेरस्स णं अज्जनक्खत्तस्स कासवगुत्तस्स अज्जरक्खे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते। थेरस्स णं अज्जरक्खस्स कासवगुत्तस्स अज्जनागे थेरे अंतेवासी गोअमसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जनागस्स गोअमसगुत्तस्स अज्जजेहिले थेरे अंतेवासी

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [७]

दीप अनुक्रम [२५८]

वासिट्ठसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जजेहिलस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अज्जविण्हू थेरे अंतेवासी माढर-सगुत्ते। थेरस्स णं अज्जविण्हुस्स माढरसगुत्तस्स अज्जकालए थेरे अंतेवासी गोयमस-गुत्ते। थेरस्स णं अज्जकालयस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो[1] थेरा अंतेवासी गोयमस-गुत्ता–थेरे अज्जसंपलिए १, थेरे अज्जभद्दे २। एएसि णं दुण्हवि थेराणं गोयमसगुत्ताणं अज्जवुड्ढे थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जवुड्ढस्स गोयमसगुत्तस्स अज्ज-संघपालिए थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते। थेरस्स णं अज्जसंघपालिअस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जहत्थी थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते। थेरस्स णं अज्जहत्थिस्स कासवगुत्तस्स अज्ज-धम्मे थेरे अंतेवासी सावयगुत्ते। थेरस्स णं अज्जधम्मस्स सावयगुत्तस्स अज्जसिंहे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते। थेरस्स णं अज्जसिंहस्स कासवगुत्तस्स अज्जधम्मे थेरे अंतेवासी

१ दुवे (क० किं०, क० सु०)

"कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) (मूलम्)

..... मूलं- सूत्र.[७] / गाथा.||१|| .....

प्रत सूत्रांक/ गाथांक ||१||

दीप अनुक्रम [२५५]

कासवगुत्ते । थेरस्स णं अज्जधम्मस्स कासवगुत्तस्स अज्जसंडिल्ले थेरे अंतेवासी ॥ वंदामि फग्गुमित्तं, च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं । कुच्छं सिवभूइंपिय, कोसिय दुज्ज-तकण्हे अ ॥ १ ॥ ते वंदिऊण सिरसा, भद्दं वंदामि कासवसगुत्तं । नक्खं कासवगुत्तं, रक्खंपिय कासवं वंदे ॥ २ ॥ वंदामि अज्जनागं, च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं । विण्हुं माढरगुत्तं, कालगमवि गोयमं वंदे ॥ ३ ॥ गोयमगुत्तकुमारं, संपलियं तहय भद्दयं वंदे । थेरं च अज्जवुड्ढं, गोयमगुत्तं नमंसामि ॥ ४ ॥ तं वंदिऊण सिरसा, थिरसत्तचरित्तनाण-संपन्नं । थेरं च संघवालिय, गोयमगुत्तं पणिवयामि ॥ ५ ॥ वंदामि अज्जहत्थिं, च कासवं खंतिसागरं धीरं । गिम्हाण पढममासे, कालगयं चेव सुद्धस्स ॥ ६ ॥ वंदामि अज्जधम्मं, च सुव्वयं सीललद्धिसंपन्नं । जस्स निक्खमणे देवो, छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥ ७ ॥ हत्थिं

१ कासवं गोत्तं २ कासव० (क० कि०)

अथ विविध आर्याणां (साधुनाम्) वंदना क्रियते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक ||८||

दीप अनुक्रम [२६२]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

कासवगुत्तं, धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि। सीहं कासवगुत्तं, धम्मंपिय कासवं वंदे ॥ ८ ॥ तं वंदिऊण सिरसा, थिरसत्तचरित्तनाणसंपन्नं। थेरं च अज्जजंबुं, गोयमगुत्तं नमंसामि ॥ ९ ॥ मिउमद्दवसंपन्नं, उवउत्तं नाणदंसणचरित्ते। थेरं च नंदियंपिय, कासवगुत्तं पणिवयामि ॥१०॥ तत्तो य थिरचरित्तं, उत्तमसम्मत्तसत्तसंजुत्तं। देसिगणिखमासमणं, माढरगुत्तं नमंसामि ॥११॥ तत्तो अणुओगधरं, धीरं मइसागरं महासत्तं। थिरगुत्तखमासमणं, वच्छसगुत्तं पणिवयामि ॥ १२ ॥ तत्तो य नाणदंसण–चरित्ततवसुट्ठियं गुणमहंतं। थेरं कुमारधम्मं, वंदामि गणिं गुणोवेयं ॥ १३ ॥ सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने। देविड्ढिखमासमणे, कासवगुत्ते पणिवयामि ॥ १४ ॥

(स्थविरावली संपूर्णा)

॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे

अत्र स्थवीरावली-वाचना परिसमाप्ता: अथ "सामाचारी" नामक तृतीय वाचना आरभ्यते

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१]

दीप अनुक्रम [२६४]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥ १ ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ 'समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ? जओ णं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छन्नाइं लित्ताइं गुत्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमियाइं खाओदगाइं खायनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कडाइं परिभुत्ताइं परिणामियाइं भवंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ 'समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥ २ ॥ जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ, तहा णं गणहरावि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति ॥ ३ ॥ जहा णं गणहरा वासाणं सवीसइराए जाव पज्जोसविंति, तहा णं गणहरसीसावि वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥ ४ ॥ जहा णं गणहरसीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं थेरावि वासावासं पज्जोसविंति ॥ ५ ॥ जहा णं थेरा वासाणं जाव पज्जो-

सामाचारी- वर्षावास (चातुर्मास)-दिवसानाम् मर्यादा-कथनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६] दीप अनुक्रम [२६९]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....”कल्प(बारसा)सूत्रम्” मूलम् ज्जोसविंति, तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, तेविअ णं वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥ ६ ॥ जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा वासाणं सवीस-इराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति, तहा णं अम्हंपि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥ ७ ॥ जहा णं अम्हंपि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं अम्हेवि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो, अंतरावि य से कप्पइ, नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए ॥ ८ ॥ वासावासं पज्जोस-वियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ता णं चिट्ठिउं अहालंदमवि उग्गहे ॥ ९ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनि-यत्तए ॥ १० ॥ जत्थ नई निच्चोयगा निच्चसंदणा, नो से कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं
	साधु-साध्वीनाम् कल्प्याकल्प्य-वर्णनं

जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए ॥ ११ ॥ एरावई कुणालाए, जत्थ चक्किया सिया, एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा, एवं चक्किया एवं णं कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं गंतुं पडिनियत्तए ॥ १२ ॥ एवं च नो चक्किया, एवं से नो कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं गंतुं पडिनियत्तए ॥ १३ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ–दावे भंते ! एवं से कप्पइ दावित्तए, नो से कप्पइ पडिगाहित्तए ॥ १४ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ–पडिगाहेहि भंते ! एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ दावित्तए ॥ १५ ॥ वासावासं० दावे भंते ! पडिगाहे भंते ! एवं से कप्पइ दावित्तएवि पडिगाहित्तएवि ॥ १६ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हट्ठाणं तुट्ठाणं आरोगाणं बलियसरीराणं इमाओ नव रसविगइओ अभिक्खणं २ आहारित्तए, तंजहा–खीरं

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [१७]

दीप अनुक्रम [२७७]

१, दहिं २, नवणीयं ३, सप्पिं ४, तिल्लं ५, गुडं ६, महुं ७, मज्जं ८, मंसं ९॥ १७ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइआणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ, अट्ठो भंते ! गिलाणस्स, से य पुच्छियव्वे–केवइएणं अट्ठो ? से वएज्जा–एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स, जं से पमाणं वयइ से य पमाणओ घित्तव्वे, से य विन्नविज्जा, से य विन्नवेमाणे लभिज्जा, से य पमाणपत्ते होउ अलाहि–इय वत्तव्वं सिआ ? से किमाहु भंते!?, एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स, सिया णं एवं वयंतं परो वइज्जा–पडिगाहेह अज्जो ! पच्छा तुमं भोक्खसि वा पाहिसि वा, एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिगाहित्तए ॥ १८ ॥ वासावासं पज्जो० अत्थि णं थेराणं तहप्पगाराइं कुलाइं कडाइं पत्तिआइं थिज्जाइं वेसासियाइं संमयाइं बहुमयाइं अणुमयाइं भवंति, जत्थ से नो कप्पइ अदक्खु वइत्तए " अत्थि ते आउसो! इमं वा २" से किमाहु भंते !?, सड्ढी गिही गिण्हइ वा, तेणियंपि कुज्जा ॥१९॥

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२०]

दीप अनुक्रम [२८०]

वासावासं पज्जोसवियस्स निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगं गोअरकालं गाहावइ-कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नन्नत्थायरियवेयावच्चेण वा एवं उवज्झायवे० तवस्सिवे० गिलाणवे० खुड्डएण वा खुड्डियाए वा अवंजणजायएण वा ॥ २० ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स अयं एवइए विसेसे–जं से पाओ निक्खम्म पुव्वामेव वियडगं भुच्चा पिच्चा पडिग्गहगं संलिहिय संपमज्जिय से य संथरिज्जा, कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए–से य नो संथरिज्जा, एवं से कप्पइ दुच्चंपि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२१॥ वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति दो गोअरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्ख० पविसि० ॥२२॥ वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ गोअरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमि० पविस०

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२३]

दीप अनुक्रम [२८३]

॥२३॥ वासावासं पज्जोसवियस्स विगिट्ठभत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वेवि गोअरकाला गाहा० भं० पा० निक्खमि० पविसि० ॥ २४ ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वाइं पाणगाइं पडिगाहित्तए। वासावासं पज्जोसवियस्स चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा–ओसेइमं, संसेइमं, चाउलोदगं। वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा–तिलोदगं वा, तुसोदगं वा, जवोदगं वा। वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा–आयामे वा, सोवीरे वा, सुद्धवियडे वा। वासावासं पज्जोयवियस्स विगिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिणवियडे पडिगाहित्तए, सेविय णं असित्थे नोविय णं ससित्थे। वासावासं पज्जोसवियस्स भत्तपडियाइक्खियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिणवियडे पडिगाहित्तए, सेविय णं

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२५]

दीप अनुक्रम [२९०]

असित्थे नो चेव णं ससित्थे, सेविय णं परिपूए नो चेव णं अपरिपूए, सेविय णं परिमिए नो चेव णं अपरिमिए, सेविअ णं बहुसंपन्ने नो चेव णं अबहुसंपन्ने ॥ २५ ॥ वासावासं पज्जोसविअस्स संखादत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोअणस्स पडिगाहित्तए पंच पाणगस्स, अहवा चत्तारि भोअणस्स पंच पाणगस्स, अहवा पंच भोअणस्स चत्तारि पाणगस्स। तत्थ णं एगा दत्ती लोणासायणमित्तमवि पडिगाहिआ सिया, कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ दुच्चंपि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२६॥ वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा जाव उवस्सयाओ सत्तघरंतरं संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए, एगे एवमाहंसु–नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परेण सत्तघरंतरं संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए, एगे पुण एवमाहंसु–नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परंपरेणं संखडिं संनियट्ट-

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [२७]

दीप अनुक्रम [२९५]

चारिस्स इत्तए ॥२७॥ वासावासं पज्जोसवियस्स नो कप्पइ पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स कणगफुसियमित्तमवि वुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि जाव गाहावइकुलं भ० पा० निक्ख० पविसित्तए वा ॥ २८ ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ अगिहंसि पिंडवायं पडिगाहित्ता पज्जोसवित्तए, पज्जोसवेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवइज्जा देसं भुच्चा देसमादाय से पाणिणा पाणिं परिपिहित्ता उरंसि वा णं निलिज्जिज्जा, कक्खंसि वा णं समाहडिज्जा, अहाछन्नाणि वा लेणाणि वा उवागच्छिज्जा, रुक्खमूलाणि वा उवागच्छिज्जा, जहा से पाणिंसि दए वा दगरए वा दगफुसिआ वा नो परिआवज्जइ ॥ २९ ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स जं किंचि कणगफुसियमित्तंपि निवडति, नो से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥ ३० ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३१]

दीप अनुक्रम [२९८]

वग्घारियवुट्ठिकायंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥३१॥ (ग्रं० ११००) वासावासं पज्जोसविअस्स निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा, अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहंसि वा अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए ॥ ३२ ॥ तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे, कप्पइ से चाउलोदणे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए ॥ ३३ ॥ तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंगसूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे, कप्पइ से भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिगाहित्तए ॥३४॥ तत्थ से पुव्वागमणेणं दोवि पुव्वाउत्ताइं कप्पंति से दोवि पडिगाहित्तए । तत्थ से पुव्वागमणेणं

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य ११०० श्लोकाणि समाप्तानि

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३५]

दीप अनुक्रम [३००]

दोवि पच्छाउत्ताइं,एवं नो से कप्पंति दोवि पडिगाहित्तए,जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते, से कप्पइ पडिगाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते, नो से कप्पइ पडिगाहित्तए ॥३५॥ वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहंसि वा अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ पुव्वगहिएणं भत्तपाणेणं वेलं उवायणावित्तए, कप्पइ से पुव्वामेव वियडगं भुच्चा पडिग्गहगं संलिहिय २ संपमज्जिय २ एगाययं भंडगं कट्टु सावसेसे सूरे जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥३६॥ वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा उवागच्छित्तए

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३७]

दीप अनुक्रम [३००]

॥ ३७ ॥ तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए य निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए १, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स दुण्हं निग्गंथीणं एगयओ चिट्ठित्तए २, तत्थ नो कप्पइ दुण्हं निग्गंथाणं एगाए य निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए ३, तत्थ नो कप्पइ दुण्हं निग्गंथाणं दुण्हं निग्गंथीण य एगयओ चिट्ठित्तए ४। अत्थि य इत्थ केइ पंचमे खुड्डुए वा खुड्डिया इ वा अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे एव ण्हं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए ॥ ३८ ॥ वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा उवागच्छित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए य अगारीए एगयओ चिट्ठित्तए, एवं चउभंगी। अत्थि णं इत्थ केइ पंचमए थेरे वा थेरिया वा अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे, एवं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए। एवं चेव निग्गंथीए

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [३९]

दीप अनुक्रम [३०२]

अगारस्स य भाणियव्वं ॥ ३९ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अपरिण्णएणं अपरिण्णयस्स अट्ठाए असणं वा १ पाणं वा २ खाइमं वा ३ साइमंवा ४ जाव पडिगाहित्तए ॥४०॥ से किमाहु भंते ? इच्छा परो अपरिण्णए भुंजिज्जा, इच्छा परो न भुंजिज्जा ॥४१॥ वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा उद्उल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काएणं असणं वा १ पा० २ खा० ३ सा० ४ आहारित्तए ॥४२॥ से किमाहु भंते ? सत्त सिणेहायणा पण्णत्ता, तंजहा–पाणी १, पाणिलेहा २, नहा ३, नहसिहा ४, भमुहा ५, अहरोट्ठा ६, उत्तरोट्ठा ७। अह पुण एवं जाणिज्जा–विगओदगे मे काए छिन्नसिणेहे, एवं से कप्पइ असणं वा १ पा० २ खा०३ सा०४ आहारित्तए ॥४३॥ वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं अट्ठ सुहुमाइं, जाइं छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वाइं पासि-

प्राण, पनग आदि अष्ट सूक्ष्माणां वर्णनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४४]

दीप अनुक्रम [३०५]

अव्वाइं पडिलेहियव्वाइं भवंति, तंजहा–पाणसुहुमं १, पणगसुहुमं २, बीअसुहुमं ३, हरियसुहुमं ४, पुप्फसुहुमं ५, अंडसुहुमं ६, लेणसुहुमं ७, सिणेहसुहुमं ८ ॥ ४४ ॥ से किं तं पाणसुहुमे ? पाणसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा–किण्हे १, नीले २, लोहिए ३, हालिद्दे ४, सुक्किल्ले ५ । अत्थि कुंथु अणुद्धरी नामं, जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा नो चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जा अट्ठिया चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जा छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वा पासियव्वा पडिलेहियव्वा हवइ, से तं पाणसुहुमे १ ॥ से किं तं पणगसुहुमे ? पणगसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा,–किण्हे, नीले, लोहिए, हालिद्दे, सुक्किल्ले । अत्थि पणगसुहुमे तद्दव्वसमाणवण्णे नामं पण्णत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहिअव्वे भवइ । से तं पणगसुहुमे २ ॥

से किं तं बीअसुहुमे ? बीयसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–किण्हे जाव सुक्किल्ले । अत्थि बीअसुहुमे कण्णियासमाणवण्णए नामं पन्नत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवइ । से तं बीअसुहुमे ३॥ से किं तं हरियसुहुमे ? हरियसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–किण्हे जाव सुक्किल्ले । अत्थि हरिअसुहुमे पुढवीसमाणवण्णए नामं पण्णत्ते, जे निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ । से तं हरियसुहुमे ४ ॥ से किं तं पुप्फसुहुमे ? पुप्फसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–किण्हे जाव सुक्किल्ले । अत्थि पुप्फसुहुमे रुक्खसमाणवण्णे नामं पण्णत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाणियव्वे जाव पडिलेहियव्वे भवइ । से तं पुप्फसुहुमे ५॥ से किं तं अंडसुहुमे ? अंडसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–उद्दंसंडे, उक्कलियंडे, पिपीलिअंडे, हलिअंडे, हल्लोहलिअंडे, जे निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवइ । से तं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४५]

दीप अनुक्रम [३११]

अंडसुहुमे ६ ॥ से किं तं लेणसुहुमे ? लेणसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–उत्तिंगलेणे, भिंगुलेणे,उज्जुए, तालमूलए, संबुक्कावट्टे नामं पंचमे, जे निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाणियव्वे जाव पडिलेहियव्वे भवइ। से तं लेणसुहुमे ७ ॥ से किं तं सिणेहसुहुमे ? सिणेहसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–उस्सा, हिमए, महिया, करए, हरतणुए। जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाव पडिलेहियव्वे भवइ। से तं सिणेहसुहुमे ८ ॥ ४५ ॥ वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा उवज्झायं वा थेरं पवित्तिं गणिं गणहरं गणावच्छेअयं जं वा पुरओ काउं विहरइ, कप्पइ से आपुच्छिउं आयरियं वा जाव जं वा पुरओ काउं विहरइ–'इच्छामि णं भंते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमि० पविसि०

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४६]

दीप अनुक्रम [३१४]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

ते य से वियरिज्जा, एवं से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा जाव पविसित्तए, ते य से नो वियरिज्जा, एवं से नो कप्पइ भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमि० पविसि० । से किमाहु भंते!? आयरिया पच्चवायं जाणंति ॥४६॥ एवं विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा अन्नं वा जंकिंचि पओअणं, एवं गामाणुगामं दूइज्जित्तए ॥ ४७ ॥ वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, नो से कप्पइ से अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेययं वा जं वा पुरओ कट्टु विहरइ, कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं जाव आहारित्तए–'इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अन्नयरिं विगइं आहारित्तए एवइयं वा एवइखुत्तो वा, ते य से वियरिज्जा, एवं से कप्पइ अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, ते य से नो वियरिज्जा, एवं से नो कप्पइ अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, से किमाहु भंते!? आयरिया पच्चवायं जाणंति ॥४८॥ वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा

'विगई'ग्रहण संबंधी मर्यादाया; वर्णनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [४९]

दीप अनुक्रम [३१७]

अण्णयरिं तेइच्छियं आउट्टित्तए, तं चेव सव्वं भाणियव्वं ॥४९॥ वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं सस्सिरीयं महाणुभावं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, तं चेव सव्वं भाणियव्वं ॥ ५० ॥ वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अपच्छिममारणंतियसंलेहणाजूसणाजुसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरित्तए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, असणं वा १ पा० २ खा० ३ सा० वा ४ आहारित्तए वा, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठावित्तए, सज्झायं वा करित्तए, धम्मजागरियं वा जागरित्तए। नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता, तं चेव सव्वं ॥५१॥ वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा अण्णयरिं वा उवहिं आयावित्तए वा पयावित्तए वा। नो से कप्पइ एगं वा अणेगं वा अपडिण्णवित्ता गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमि० पविसि० असणं १ पा० २ खा० ३ सा०

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [५२]

दीप अनुक्रम [३२०]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

४ आहारित्तए, बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा सज्झायं वा करित्तए, काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए। अत्थि य इत्थ केइ अभिसमण्णागए अहासण्णिहिए एगे वा अणेगे वा, कप्पइ से एवं वइत्तए–'इमं ता अज्जो! तुमं मुहुत्तगं जाणेहि जाव ताव अहं गाहावइकुलं जाव काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए' से य से पडिसुणिज्जा, एवं से कप्पइ गाहावइ० तं चेव। से य से नो पडिसुणिज्जा, एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं जाव काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए ॥५२॥ वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अणभिग्गहियसिज्जासणियाणं हुत्तए, आयाणमेयं, अणभिग्गहियसिज्जासणियस्स अणुच्चाकूइयस्स अणट्ठाबंधियस्स अमियासणियस्स अणातावियस्स असमियस्स अभिक्खणं २ अपडिलेहणासीलस्स अपमज्जणासीलस्स तहा तहा संजमे दुराराहए भवइ ॥५३॥ अणादाणमेयं, अभिग्गहियसिज्जासणियस्स उच्चाकूइयस्स अट्ठाबंधिस्स मियासणियस्स

१२

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [५५]

दीप अनुक्रम [३२१]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

आयावियस्स समियस्स अभिक्खणं २ पडिलेहणासीलस्स पमज्जणासीलस्स तहा २ संजमे सुआराहए भवइ ॥५४॥ वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उच्चारपासवणभूमीओ पडिलेहित्तए, न तहा हेमंतगिम्हासु जहा णं वासासु, से किमाहु भंते ! ?वासासु णं उस्सण्णं पाणा य तणा य बीया य पणगा य हरियाणि य भवंति ॥५५॥ वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिण्हित्तए, तंजहा–उच्चारमत्तए, पासवणमत्तए, खेलमत्तए ॥ ५६ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्तेवि केसे तं रयणिं उवायणावित्तए । अज्जेणं खुरमुंडेण वा लुक्कसिरएण वा होइयव्वं सिया । पक्खिया आरोवणा, मासिए खुरमुंडे, अद्धमासिए कत्तरिमुंडे, छम्मासिए लोए, संवच्छरिए वा थेरकप्पे ॥ ५७ ॥ वासावासं पज्जोसविआणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं

केश-लुञ्चन संबंधी मर्यादाया: वर्णनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [५८]

दीप अनुक्रम [३२५]

पज्जोसवणाओ अहिगरणं वइत्तए, जे णं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ, से णं 'अकप्पेणं अज्जो ! वयसीति' वत्तव्वे सिया, जेणं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ, से णं निज्जूहियव्वे सिया ॥ ५८ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अज्जेव कक्खडे कडुए वुग्गहे समुप्पज्जिज्जा, सेहे राइणियं खामिज्जा, राइणिएवि सेहं खामिज्जा, (ग्रं० १२००) खमियव्वं खमावियव्वं उवसमियव्वं उवसमावियव्वं संमुइसंपुच्छणाबहुलेणं होयव्वं। जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा, तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं, से किमाहु भंते!? उवसमसारं खु सामण्णं ॥ ५९ ॥ वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उवस्सया गिण्हित्तए, तं०–वेउविया पडिलेहा साइज्जिया पमज्जणा ॥६०॥ वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा कप्पइ अण्णयरिं दिसिं वा

*** अत्र बारसा-सूत्रस्य १२०० श्लोकाणि समाप्तानि

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६१]

दीप अनुक्रम [३२८]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

अणुदिसिं वा अवगिज्झिय भत्तपाणं गवेसित्तए। से किमाहु भंते!? उस्सण्णं समणा भगवंतो वासासु तवसंपउत्ता भवंति,तवस्सी दुब्बले किलंते मुच्छिज्ज वा पवडिज्ज वा, तमेव दिसं वा अणुदिसं वा समणा भगवंतो पडिजागरंति॥६१॥वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा गिलाणहेउं जाव चत्तारि पंच जोयणाइं गंतुं पडिनियत्तए, अंतरावि से कप्पइ वत्थए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥६२॥ इच्चेयं संवच्छरिअं थेरकप्पं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोभित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आराहित्ता आणाए अणुपालित्ता अत्थेगइआ तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वाइंति सव्वदुक्खाणमंतं करिंति, अत्थेगइआ दुच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिंति, अत्थेगइया तच्चेणं भवग्गहणेणं जाव अंतं करिंति, सत्तट्ठभवग्गहणाइं नाइक्कमंति ॥६३॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं

संवत्सरिकं स्थवीरकल्पस्य महत्तायाः वर्णनं

प्रत सूत्रांक/ गाथांक [६४]

दीप अनुक्रम [३११]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित....."कल्प(बारसा)सूत्रम्" मूलम्

समणे भगवं महावीरे रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साावियाणं बहूणं देवाणं बहूणं देवीणं मज्झगए चेव एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ, पज्जोसवणाकप्पो नामं अज्झयणं सअट्ठं सहेउअं सकारणं ससुत्तं सअट्ठं सउभयं सवागरणं भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ त्ति बेमि ॥६४॥

॥ पज्जोसवणाकप्पो नाम दसासुअक्खंधस्स अट्ठममज्झयणं संमत्तं ॥ (ग्रं० १२१५)

इति श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई–जैनपुस्तकोद्धारे–ग्रन्थाङ्कः १८

अत्र मूल कल्पसूत्रं (बारसासूत्रं) परिसमाप्तं

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"चतु:शरण" मूलं एवं अवचूर्णि:

[मूलं एवं विजयविमल गणि विवृत्ता अवचूर्णि:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-40

गम (२४-वृ)	“चतु:शरण” – प्रकीर्णकसूत्र-१ (मूलं+अवचूर्णि:) ---------- मूलं ॥१॥ ----------
प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२४/वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[१] “चतु:शरण” मूलं एवं विजयविमलगणि कृता अवचूर्णि:
	षड् आवश्यकस्य नामानि एवं व्याख्या:

॥ अर्हं नमः ॥

अथ सावचूर्णिकं श्रीमहावीरहस्तदीक्षितवीरभद्रमुनिवर्यप्रणीतं चतुःशरणप्रकीर्णकम् ।

इदमध्ययनं परमपदप्राप्तिबीजभूतत्वात् श्रेयोभूतं अतस्तदारम्भे ग्रन्थकृत् मङ्गलरूपसामायिकाद्यावश्यकार्थकथनभाव-मङ्गलकारणद्रव्यमङ्गलभूतगजादि १४ स्वप्नोच्चारव्याजसर्वतीर्थकृद्गुणस्मरणवर्तमानतीर्थाधिपतिश्रीवीरनमस्करणरूपं मङ्गल-त्रयमाह–‘सावज्जे’ति, अथवा षडावश्यकयुतस्यैव प्रायश्चतुःशरणप्रतिपत्त्यादियोग्यता स्यादतः प्रथमं षडावश्यकमाह–

सावज्जजोगविरई १ उक्कित्तण २ गुणवओ अ पडिवत्ती ३ ।
खलिअस्स निंदणा ४ वणतिगिच्छ ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १ ॥

‘सावज्जे’त्यादि, सहावद्येन–पापेन वर्तन्ते इति सावद्याः योगा–मनोवाक्कायरूपा व्यापारास्तेषां विरतिः–निवृत्तिः सावद्ययोगविरतिः सा सामायिकेन क्रियते इत्यध्याहारः १, उत्कीर्त्तनं–जिनगुणानामुत्कीर्त्तना, सा चतुर्विंशतिस्तवेन क्रियते २, गुणा–ज्ञानदर्शनचारित्राद्याः ते विद्यन्ते येषां ते गुणवन्तो–गुरवस्तेषां प्रतिपत्तिः–भक्तिर्गुणवत्प्रतिपत्तिः सा

॥ ५७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दनेन क्रियते ३, स्खलनं स्खलितं–आत्मनोऽतिचारापादनं तस्य निन्दनं–निन्दना न पुनः करिष्ये इत्यभ्युपगमनं सा प्रतिक्रमणेन क्रियते ४, व्रणस्य–अतिचाररूपभावव्रणस्य चिकित्सा–प्रतीकाररूपा सा कायोत्सर्गेण क्रियते ५, गुणा–विरत्यादयो मूलगुणोत्तरगुणरूपास्तेषां धारणं धारणा सा प्रत्याख्यानेन क्रियते ६, 'चैवे'ति षण्णामपि समुच्चये ॥ १ ॥ अथ किञ्चिद्विशेषत एतेषां सामायिकादीनां षण्णामपि स्वरूपं चारित्रविशुद्ध्यादिरूपं फलं चाह—

चारित्तस्स विसोही कीरइ सामाइएण किल इहयं ।
सावज्जेअरजोगाण वज्जणाऽऽसेवणत्तणओ ॥ २ ॥

'चारित्ते'त्यादि, चारित्रस्य–चारित्राचारस्य पञ्चसमितित्रिगुप्तिरूपस्य विशोधनं विशोधिः–निर्मलता क्रियते, केन ?–सामायिकेन–समभावलक्षणेन 'किले'ति सत्ये' 'इहयं'ति इहैव जिनशासने नान्यत्र शाक्यादिदर्शने, तेषु सामायिकपरिभाषाया अप्यभावात्, कथं सामायिकेन विशोधिः क्रियते ? इत्याह–'सावज्जे'त्ति सावद्याः–सपापा इतरे च–निरवद्या ये योगाः–कायादिव्यापारास्तेषां यथासङ्ख्ये ये वर्जनासेवने ताभ्यां वर्जनासेवनातः सावद्यानां वर्जनतः इतराणां त्वासेवनतश्च तेन विशोधिः क्रियते इति तात्पर्यार्थः ॥ २ ॥ उक्ता चारित्राचारविशुद्धिः, अथ दर्शनाचारविशुद्धिमाह—

दंसणयारविसोही चउवीसायत्थएण किज्जइ अ ।
अच्चब्भुअगुणकित्तणरूवेण जिणवरिंदाणं ॥ ३ ॥

'दंसणे'त्यादि, दर्शनं–सम्यक्त्वं तस्याचारो–निश्शङ्कितेत्याद्यष्टविधः तस्य विशोधिः–निर्मलता चतुर्विंशतेरात्मनां–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

***'सामायिक'स्य चारित्राचार-विशुद्धयादि फ़लरुप-परिभाषा

***चतुर्विंशति(लोगस्स०),'दर्शनाचार'-विशुद्धयादि फ़लरुप-परिभाषा

जीवानां तीर्थङ्करसम्बन्धिनां स्तवः क्रियते यत्र स चतुर्विंशत्यात्मस्तवो–लोगस्सेत्यादिरूपस्तेन क्रियते, 'चउवीसाइत्थएणे'ति पाठे जिनानां चतुर्विंशत्याः स्तवेनेत्यर्थः, चकारो द्वितीयावश्यकसमुच्चयार्थः, चतुर्विंशतिस्तवेन क्रियते, किंभूतेनेत्याह– 'अच्चब्भुअ'इत्यादि, अत्यद्भुताः–सर्वातिशायिनो लोकोद्योतकरादयो ये गुणास्तेषां यदुत्कीर्त्तनं–वर्णनं तद्रूपेण, केषां तदित्याह–'जिवणरिंदाणं'ति जिना–रागादिजयादुपशान्तमोहादयस्तेषां मध्ये वराः–केवलिनस्तेषां इन्द्रा इव इन्द्रास्तीर्थङ्करा जिनवरेन्द्रास्तेषामित्यर्थः ॥ ३ ॥ उक्ता दर्शनाचारविशुद्धिः, इदानीं ज्ञानाचारस्य चारित्राचारदर्शनाचार योश्च विशेषेण विशुद्धिमाह—

नाणाईआ उ गुणा तस्संपन्नपडिवत्तिकरणाओ ।
वन्दणएणं विहिणा कीरइ सोही उ तेसिं तु ॥ ४ ॥

'नाणाईआ' इति 'नाण'त्ति ज्ञानाचारः–कालविनयाद्यष्टविधः आदिशब्दाद्दर्शनचारित्राचारग्रहो, ज्ञानदर्शनचारित्रयुक्त एव वन्दनकार्हो नान्यो ज्ञानवानपि पार्श्वस्थादिर्व्यवहारतः चारित्रवानपि निह्नवादिरिति ज्ञापनार्थः, ज्ञानमादौ येषां ते ज्ञानादिकाः, 'तुः' अवधारणे, एतेन ज्ञानादिका एव गुणा इत्यर्थः, तैर्ज्ञानादिगुणैस्सम्पन्ना–युक्तास्तत्सम्पन्ना गुरवस्तेषां प्रतिपत्तिः–भक्तिस्तस्याः करणं तस्मात् तत्सम्पन्नप्रतिपत्तिकरणाद्विनयकरणादित्यर्थः, केन?–वन्दनकेन, कथं?–विधिना–द्वात्रिंशद्दोषरहिततया पञ्चविंशत्यावश्यकविशुद्धतया च, 'तेसिं तु'त्ति तेषां–ज्ञानाचारादीनां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानदर्शनचारित्राचारयो: विशेष विशुद्धिरुप 'वन्दन'स्य परिभाषा

तुः पुनरर्थे चारित्राचारदर्शनाचारयोः प्राक्शोधितयोरपि पुनर्विशेषेण शोधिः क्रियते इत्यर्थः ॥ ४ ॥ उक्ता वन्दनकेन ज्ञानाद्याचारत्रयशुद्धिः, सम्प्रति प्रतिक्रमणकायोत्सर्गाभ्यां गाथाद्वयेन तामाह—

खलियस्स य तेसिं पुणो विहिणा जं निंदणाइ पडिकमणं ।
तेणं पडिकमणेणं तेसिंपि य कीरए सोही ॥ ५ ॥
चरणाइयाइयाणं जहक्कमं वणतिगिच्छरूवेणं ।
पडिकमणासुद्धाणं सोही तह काउसग्गेणं ॥ ६ ॥

स्खलितस्य–व्रतविषयस्यातिक्रमव्यतिक्रमादिप्रकारसंजातापराधस्य तथा 'तेसि'न्ति तेषां–ज्ञानाचारादीनां पुनः प्रतिषिद्धकरणकृत्याकरणाश्रद्धानविपरीतप्ररूपणादिप्रकारसंजातातिचारस्य च विधिना–सूत्रोक्तप्रकारेण 'जं निंदणाइ'इति यन्निन्दनं निन्दना–दुष्टं मयैतत् कृतमिति, आदिशब्दाद्गर्हादिग्रहः, गुरुसाक्षिकमात्मदोषाविष्करणं गर्हा, एवंप्रकार-स्खलितस्य यन्निन्दनादिकरणं–तस्माद्दोषजातान्निवर्त्तनं तत्प्रतिक्रमणमुच्यते इति शेषः, प्रतीपं क्रमणं प्रतिक्रमणं इति व्युत्पत्तिः, अतः कारणात्तेन प्रतिक्रमणेन 'तेसिं पिय'त्ति न केवलं सामान्यतो व्रतादिविषयापराधानां, किन्तु तेषामपि ज्ञानाचारादीनां क्रियते विशोधिः–निर्मलतेति, 'चरणाइय'त्ति चरणं–चारित्रं अतिगच्छन्ति–अतिक्रामन्तीति चरणा-तिगाः, अतिचारा इति दृश्यं, ते आदौ येषां ते चरणातिगादिकाः–सर्वेऽप्यतिचारास्तेषां चरणातिगादिकानां, कथं-भूतानां ?–प्रतिक्रमणेन–प्रागुक्तेनाशुद्धानामर्द्धशुद्धानां वा शुद्धिस्तथैव–प्रागुक्तप्रकारेण क्रियते, केन ?–कायोत्सर्गेण, किं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानदर्शनचारित्राचारयो: विशेष विशुद्धिरुप 'प्रतिक्रमण-कायोत्सर्गाभ्याम् परिभाषा

भूतेन ?–'जहक्कमं वणतिगिच्छ'त्ति यथाक्रमं–क्रमप्राप्तेन 'आलोअणपडिकमणे' इतिगाथोक्तदशविधप्रायश्चित्तमध्ये पञ्चमप्रायश्चित्तेन 'वण'त्ति द्रव्यभावभेदेन द्विधा व्रणं, तत्र द्रव्यव्रणः–कण्टकभङ्गादिजनितो भावव्रणस्तु अतिचार-शल्यरूपस्तस्य भावव्रणस्य चिकित्सा–प्रतीकारः सैव रूपं यस्य कायोत्सर्गस्य स व्रणचिकित्सारूपस्तेन, कायोत्सर्गेणाति-चाराः शोध्यन्ते इति भावो, महन्निर्जराकारणत्वात् तस्य, प्राक् 'नाणाइआ'इत्यत्र ज्ञाननयप्राधान्याश्रयणात् ज्ञानादय इत्युक्तं, 'चरणाइआ' इत्यत्र तु क्रियानयप्राधान्याश्रयाणाच्च विवक्षया चरणादय इति ॥ ५ ॥ ६ ॥ एवं गाथापञ्चके-ना[ति]चारत्रयस्य शुद्धिरुक्ता, अथ तपोवीर्याचारयोस्तामाह–

गुणधारणरूवेणं पच्चक्खाणेण तवऽइयारस्स । विरियायारस्स पुणो सव्वेहिवि कीरए सोही ॥ ७ ॥

'गुणधारणे'त्यादि, गुणा–विरत्यादय उत्तरोत्तरा यथा विरतेराश्रवद्वारस्थगनं तत्स्थगनात् तृष्णाव्यवच्छेदस्तस्माद-तुलोपशमस्तस्मात्प्रत्याख्यानशुद्धिस्तच्छुद्धेश्चारित्रनैर्मल्यं तस्मात्कर्मविवेकस्तस्मादपूर्वकरणमपूर्वकरणात्केवलज्ञानं ततश्च मोक्षो भवतीति, तेषां गुणानां धारणं तदेव रूपं यस्य तेन प्रत्याख्यानेन–'अणागयमइक्कंतं' इत्यादिदशविधेन अथवा पञ्चमहाव्रतद्वादशश्राद्धव्रतनमस्कारसहितादिदशप्रत्याख्यानरूपसप्तविंशतिविधेन वा तपआचारातिचारस्य–'बारस-विहंमिवि तवे' इति गाथोक्तस्य शुद्धिः क्रियते इति संटंकः, 'विरियायारस्स'त्ति विशेषेण ईरयति–प्रेरयति आत्मानं तासु तासु क्रियास्विति वीर्यं–तपोवीर्यं–गुणवीर्यं–चारित्रवीर्यं–समाधिवीर्यं–आत्मवीर्यभेदभिन्नं पञ्चविधं तस्या-चारो वीर्याचारः 'अणिगूहिअबलविरिए' इत्यादिकस्तस्य सर्वैरपि पूर्वोक्तैः षड्भिरप्यावश्यकैः शुद्धिः क्रियते, अन्यूनाधिका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'प्रत्याख्यान'स्य परिभाषया तपोवीर्याचारयो: कथनं

वश्यककरणप्रयत्नेन वीर्याचारशुद्धिर्भवत्येव, महाकर्मनिर्जराहेतुत्वात् ॥ ७ ॥ उक्ता आचारपञ्चकशुद्धिः, अथ सर्वजिनगुणोत्कीर्तनगर्भं मङ्गलभूतं गजादिस्वप्नसंदर्भमाह–

गय १ वसह २ सीह ३ अभिसेय ४ दाम ५ ससि ६ दिणयरं ७ झयं ८ कुम्भं ९ ।
पउमसर १० सागर ११ विमाण–भवण १२ रयणुच्चय १३ सिहिं १४ च ॥ ८ ॥

गाथा सुगमा, नवरं ‘अभिसेअ’त्ति चतुर्थस्वप्ने पार्श्वद्वयवर्तिकरिकलभशुण्डादण्डविधृतकलशयुगलाभिषिच्यमानां लक्ष्मीं जिनमाता पश्यति, ‘विमाणभवण’त्ति द्वादशस्वप्ने देवलोकागततीर्थकृज्जननी विमानं पश्यति नरकागतजिनजननी तु भवनं, विमानभवनयोराकारमात्रकृत एव विशेषः, गजदर्शनात्स्वाम्यपि तद्वदतुलपराक्रमनिधिर्भावी, वृषभदर्शनात् महामोहपङ्कमग्नधर्मरथधुरोद्धरणक्षमो भरते धर्मबीजवापनिमित्तं च भावीति स्वप्नैरपि जिनगुणाः सूच्यन्ते, चतुर्दशस्वप्नसंख्यया तु चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्यापि लोकस्योपरिवर्त्ती पुत्रो भविष्यतीति निवेद्यते इति सर्वतीर्थकृद्गुणवर्णनरूपं स्वप्नमङ्गलमुक्तम् । अथ श्रीवीरनमस्काररूपं तृतीयं मङ्गलं प्रस्तुताध्ययनप्रस्तावनां चाह–

अमरिंदनरिंदमुणिंदवंदिअं वंदिउं महावीरं ।
कुसलाणुबंधिबन्धुरमज्झयणं कित्तइस्सामि ॥ ९ ॥

‘अमरिंदनरिंद’त्ति उपक्रमकृतेनापमृत्युना न म्रियन्ते इत्यमरास्तेषां इन्द्रा अमरेन्द्राः नराणामिन्द्रा नरेन्द्रा मुनीनामिन्द्रा मुनीन्द्राः द्वन्द्वः तैर्वन्दितं ‘वन्दिउं’ति वन्दित्वा, कं ?–‘महावीरं’ महद्वीर्यं यस्यानन्तबलत्वाद्देवकृतपरीक्षा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

‘गज’ आदि १४ स्वप्नरूप मङ्गलस्य कथनं

यामपि मनागप्यक्षुभितत्वाच्च महावीरस्तं 'कुसलाणुबंधि'त्ति कुशलो–मोक्षस्तं अनुबन्धीति–परम्परया ददातीत्येवंशीलं कुशलानुबन्धि, तथा बन्धुरं–मनोज्ञं, जीवानां ऐहिकामुष्मिकसमाधिहेतुत्वात्, किं ?–अधीयते–ज्ञायते परिच्छिद्यतेऽर्थ-समुदायोऽस्मादित्यध्ययनं–शास्त्रं, कीर्त्तयिष्यामि–कथयिष्यामीति सम्बन्धः ॥ ४ ॥ अथ प्रस्तुताध्ययनार्थाधिकारानाह–

चउसरणगमण १ दुक्कडगरिहा २ सुकडाणुमोअणा ३ चेव ।
एस गणो अणवरयं कायव्वो कुसलहेउत्ति ॥ १० ॥

'चउसरण'त्ति चतुर्णामर्हत्सिद्धसाधुधर्माणां शरणगमनं प्रथमोऽधिकारः, दुष्टं कृतं दुष्कृतं तस्य गर्हा–गुरुसाक्षिकमा-त्मदोषकथनं द्वितीयोऽधिकारः, शोभनं कृतं सुकृतं तस्यानुमोदना–भव्यं मयैतत्कृतमिति तृतीयोऽधिकारः, 'चैवे'ति समुच्चये, एषः–अयं गणः–त्रयाणां समुदायोऽनवरतं–सततं कर्त्तव्यः–अनुसरणीयः कुशलो–मोक्षस्तस्य कारणमयमिति-कृत्वा ॥ १० ॥ अथ चतुःशरणरूपं प्रथमाधिकारमाह–

अरिहंत १ सिद्ध २ साहू ३ केवलिकहिओ सुहावहो धम्मो ४ ।
एए चउरो चउगइहरणा सरणं लहइ धन्नो ॥ ११ ॥

'अरहंते'त्यादि, देवेन्द्रकृतां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः १ तथा सिध्यन्ति–निष्ठितार्था भवन्तीति सिद्धाः २ तथा निर्वाण-साधकान् योगान् धर्मव्यापारान् साधयन्ति–कुर्वन्तीति साधवः ३ तथा दुर्गतौ पतन्तं प्राणिनं धरतीति धर्मः, किंभूतः ?–केवलिभिः–ज्ञानिभिः कथितः–प्रतिपादितः केवलिकथित इति, अनेन स्वमतिकल्पितान्यतीर्थिकधर्मनिरास-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'अरिहंत' आदि चत्वार: शरणं प्रकाश्यते

प्रत सूत्रांक ॥११॥

दीप अनुक्रम [११]

माह, पुनः कथम्भूतो धर्मः ?–सुखमावहति–परम्परया चटत्प्रकर्षं प्रापयतीति सुखावहः, अनेन इहलोकेऽपि मिथ्यादृष्टिधर्मस्य भैरवपतनशिरःक्रकचदापनादिदुःखाकीर्णत्वात् परलोके भवभ्रमणकारणत्वात्तन्निषेधमाह, एतेऽर्हत्सिद्धसाधुधर्माश्चत्वारश्चतसृणां गतीनां समाहारश्चतुर्गति– नरकतिर्यग्नरामरलक्षणं हरन्ति सिद्धिलक्षणपञ्चमगतिप्रापणेनेति चतुर्गतिहरणाः, यस्मादिति गम्यं, अत एव भवाटव्यामटन् शरणरहितः कश्चिद्धन्यः–सुकृतकर्मा एव शरणं लभते, शरणत्वेन प्रतिपद्यते इत्यर्थः ॥ ११ ॥ अथ यथा विधिना एतान् शरणं प्रपद्यते तथाऽऽह—

अह सो जिणभत्तिभरुत्थरंतरोमंचकंचुअकरालो ।
पहरिसपणउम्मीसं सीसंमि कयंजली भणइ ॥ १२ ॥

‘अह सो’त्ति, अथ सः–शरणप्रतिपत्ता चतुर्विधसङ्घस्यान्यतमो जीवः, कथंभूतो ?–जिनेषु भक्तिस्तस्या भरः–प्राबल्यं तस्माज्जिनभक्तिभरात् ‘उत्थरंत’त्ति अवस्तृणन्–उदयं गच्छन् योऽसौ रोमाञ्चः स एव शरीरावारकत्वात्कञ्चुको रोमाञ्चकंचुकस्तेन करालः–अन्तरङ्गशत्रूणां भीषणः, तथा प्रकृष्टो हर्षः प्रहर्षः तस्माद्यत्प्रणतं–प्रणामस्तेन उन्मिश्रं-व्याकुलं यथा भवति एवं, यद्वा प्रहर्षवशाद्योऽसौ प्रणयः–आनन्दाश्रुगद्गदस्वरस्तेनोन्मिश्रं, क्रियाविशेषणमेतत्, तथा शिरसि–मस्तके कृताञ्जलिः–कृतकरकुड्मलः सन् भणति ॥ १२ ॥ अर्हच्छरणमङ्गीकुर्वन् यदसौ भणति तद्गाथादशकेनाह—

रागद्दोसारीणं हंता कम्मट्ठगाइ अरिहंता ।
विसयकसायारीणं अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥ १३ ॥

तं.वै.प्र.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	‘अरिहंत’+’अरहंत’शब्दस्य विविध-व्याख्या: एवं तस्य शरणस्य कथनं

रायसिरिमवकसित्ता तवचरणं दुचरं अणुचरंता ।
केवलसिरिमरिहंता अरहंता हुंतु मे सरणं ॥ १४ ॥
थुइवंदणमरिहंता अमरिंदनरिंदपूअमरहंता ।
सासयसुहमरहंता अरहंता हुंतु मे सरणं ॥ १५ ॥
परमणगयं मुणंता जोइंदमहिंदझाणमरिहंता ।
धम्मकहं अरहंता अरहंता हुंतु मे सरणं ॥ १६ ॥
सव्वजिआणमहिसं अरहंता सच्चवयणमरहंता ।
बंभव्वयमरहंता अरहंता हुंतु मे सरणं ॥ १७ ॥
ओसरणमवसरंता चउतीसं अइसए निसेवित्ता ।
धम्मकहं च कहंता अरहंता हुंतु मे सरणं ॥ १८ ॥
एगाइ गिराऽणेगे संदेहे देहिणं समं छित्ता ।
तिहुअणमणुसासंता अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥ १९ ॥
वयणामएण भवणं निव्वावंता गुणेसु ठावंता ।
जिअलोअमुद्धरंता अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचब्भुअगुणवंते निअजससंसहरपसाहियदिअंते ।
निअयमणाइमणन्ते पडिवन्नो सरणमरिहंते ॥ २१ ॥
उज्झिअजरमरणाणं समत्तदुक्खत्तसत्तसरणाणं ।
तिहुअणजणसुहयाणं अरिहंताणं नमो ताणं ॥ २२ ॥

'रागद्दोसा०' इति, रागस्त्रिधा दृष्टिरागकामरागस्नेहरागभेदात्, द्वेषः–परद्रोहाध्यवसायः, अथवाऽभिष्वङ्गमात्रं रागः अप्रीतिमात्रं द्वेषः, एतयोरुपलक्षणत्वात् मदमत्सराहंकाराणां ग्रहः त एवारयो रागद्वेषारयस्तेषां हंतारो रागद्वेषारिहंतारः, तथा कर्मणां–ज्ञानावरणादीनां अष्टकं कर्माष्टकं तदादौ येषां ते कर्माष्टकादयस्ते च ते अरयश्च कर्माष्टकाद्यरयः, आदिशब्दात्परीषहवेदनोपसर्गादिग्रहः, तेषां हन्तारः, षष्ठीलोपोऽत्र द्रष्टव्यः, तथा विषयाः–शब्दरूपगन्धरसस्पर्शाः कषायाः–क्रोधमानमायालोभाः अनन्तानुबन्ध्यादिभेदास्त एव जीवानामनर्थकारित्वात् अरयस्तेषां हन्तारः, पाश्चात्यं हन्ता इति पदमत्रापि सम्बध्यते, अथवा विषयकषायाणां विनाशकत्वेनारयस्तीर्थङ्करा विषयकषायारयः, णमिति वाक्यालङ्कारे, एवंविधा अर्हन्तो–जिना मे–मम शरणं–परित्राणं भवन्त्वित्यर्थः ॥ १३ ॥ 'रायसिरि०'त्ति, राज्यश्रियं–राज्यलक्ष्मीं अपकृष्य–अवधूय त्यक्त्वेत्यर्थः, तथा तप्यते कर्ममलापनयनेनात्मा सुवर्णमिवाग्निनाऽनेनेति तपस्तस्य चरणं–आसेवनं, कथंभूतं ?–दुश्चरं–सामान्यसाधुभिः कर्तुमशक्यं वार्षिकषण्मासादिरूपं अप्रमत्ततामौनकायोत्सर्गादिक्रियाविशेषितमजलं च तत्तपोऽनुचर्य–आसेव्य ये केवलश्रियं-केवलज्ञानविभूतिमर्हन्तः तस्या योग्या भवन्तीत्यर्थः तेऽर्हन्तः–तीर्थकृतो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मे शरणं भवन्त्विति सर्वत्र योज्यं, अथवा प्रथमांतान्येव पदानि योज्यानि, राज्यश्रियमपकर्षयन्तः–त्यजन्तस्तथा तपश्चरणं दुश्चरमनुचरन्तः केवलश्रियं चार्हन्तः–प्राप्नुवन्तो ये ते शरणं, एतेन पूर्वोक्तेन राज्यश्रीत्यागतपश्चरणकरणकेवलश्रीप्रापणरूपावस्थात्रयशरणगमनप्रतिपादनेन यद्यपि शक्रादीनां सर्वास्वप्यवस्थासु जिना नमस्कारार्हास्तथापि ते गृहवासस्थाः साधूनां न नमस्कारार्हाः अविरतत्वादिति दर्शितं, यच्चानागतजिनाः साधुभिर्नमस्क्रियन्ते तेऽपि भाविभावचारित्रावस्था एवेति भावः ॥ १४ ॥ 'थुइवंद०'त्ति, स्तवः 'थुइ' पाठे स्तुतिर्वा–सद्भूतगुणोत्कीर्त्तनं वन्दनं–कायिकः प्रणामः तौ अर्हन्तः–तयोर्योग्या जगतोऽपीति शेषः, अमरेन्द्रनरेन्द्राणां पूजां–समवसरणादिकां समृद्धिं अर्हन्तः–तस्या अपि योग्या भवन्तः, तथा शश्वत् भवं शाश्वतं तच्च तत्सुखं च शाश्वतसुखं-निर्वाणादनन्तरं तदप्यर्हन्ति-तस्या अपि योग्या भवन्तीत्यर्हन्तः, शेषं पूर्ववत् ॥ १५ ॥ 'परमण०'त्ति, परेषां-आत्मव्यतिरिक्तानां मनांसि परमनांसि तेषु गतं-स्थितं चिन्तितं इत्यर्थः तत् मुणन्तो-जानन्तः 'मुणत् प्रतिज्ञाने' इति धातुः 'ज्ञो जाणमुणा (श्री०सि०अ०८पा०३सू.७)' 'वित्यादेशो वा, एतेन अनुत्तरसुराणां मनःसंशयपरिज्ञानतदुच्छेदसमर्था जिना इत्युक्तं, तथा योगिनो-मुनयस्तेषामिन्द्राः–गौतमादयः महान्तश्च ते इन्द्राश्च महेन्द्राः-शक्रादयस्तेषां ध्यानं-स्थिराध्यवसायरूपं तदर्हन्तीति योगीन्द्रमहेन्द्रध्यानार्हाः, तथा धर्मकथादानशीलतपोभावनादिकां कथयितुमर्हन्तः–तस्याः कथनयोग्याः सर्वज्ञत्वेन सर्वभाषानुयायियोजनगामिवागतिशयत्वेन, छद्मस्थावस्थायां तु मौनावलम्बित्वेन धर्मकथानर्हत्वाज्जिनानां, शेषं प्राग्वत् ॥ १६ ॥ 'सव्व०'त्ति सर्वे सूक्ष्मबादरत्रसस्थावरा ये जीवास्तेषां न हिंसा अहिंसा–रक्षा तामर्हन्तः तथा सतां हितं सत्यं–तथ्यं तच्च तद्वदनं च तदेवार्हन्तोऽसत्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषणहेतुरागद्वेषमोहरहितत्वात्तेषां, तथा ब्रह्मव्रतं अष्टादशभेदं 'दिव्यौदारिककामानां' (कृतानुमतिकारितैः । मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ १ ॥) इति श्लोकोक्तमासेवितुं प्ररूपयितुमनुमोदयितुं चार्हन्तः, शेषं तथैव ॥ १७ ॥ तथा 'ओस'त्ति अवस्रियते–गम्यते संसारभयोद्विग्नैः जीवैरित्यवसरणं समवसरणमित्यर्थः तदवसृत्य–अलंकृत्य, तथा चतुस्त्रिंशतो–जन्मजकर्मक्षयजसुरकृतान् यथाक्रमं चतुरेकादशैकोनविंशतिसङ्ख्याप्रसिद्धानतिशयान्निषेव्य, उपलक्षणत्वात्पञ्चत्रिंशद्वचनातिशयांश्च, तथा धर्मकथां कथयित्वा ये मुक्तिं यान्ति यास्यन्ति याता इत्यध्याहार्यं 'कहंता' इति पाठे धर्मकथां कथयन्तो ये वर्त्तन्ते ते शरणं, पूर्वं धर्मकथाकथनयोग्या इत्युक्तं अत्र तु धर्मकथां कथयन्त एवेति न पौनरुक्त्यं, अत्र चाध्ययनेऽन्यत्रापि यत्र कुत्रचित् पौनरुक्त्यसम्भवः तत्र स्तुत्युपदेशरूपत्वेन न दोष इति ज्ञेयं, यदुक्तं–'सज्झायज्झाणतवोसहेसु उवएसथुइपयाणेसु । संतगुणकित्तणेसु अ न हुंति पुणरुत्तदोसा उ ॥१॥ [स्वाध्यायध्यानतपऔषधेषु उपदेशस्तुतिप्रदानेषु । सतां गुणकीर्त्तनेषु च न भवन्ति पुनरुक्तदोषास्तु ॥ १ ॥] शेषं तथैव ॥ १८ ॥ 'एगाइ गिर' त्ति एकयाऽपि गिरा–एकेनापि वचनेन अनेकप्रकारान् संदेहान्–संशयान्, केषां ?–देहिनां–सुरासुरनरतिर्यग्रूपाणां समं–समकालमेव छित्त्वा संशयत्रुटिं कृत्वेत्यर्थः 'समुच्छित्ते'ति पाठे समुच्छिद्येति ज्ञेयं, त्रिभुवनमनुशास्य–शिक्षयित्वा अनुशासयन्तो वा सम्यक्त्वदेशविरतिसर्वविरतिलक्षणशिक्षाप्रदानेन, मोक्षं यान्तीति योगः, शेषं तथैव ॥ १९ ॥ 'वयणा' इति वचनमेवामृतं वचनामृतं क्षुत्पिपासादिदोषापहारकत्वात् तेन वचनामृतेन भुवनं–लोकं निर्वाप्य–तस्य तृप्तिमुत्पाद्य निर्वापयन्तो वा प्रीणयन्तः आप्याययन्त इत्यर्थः, तथा गुणेषु–उत्तरोत्तरगुणस्थानकेषु सम्यक्त्वदेशविरतिप्रमत्ताप्रमत्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिकेषु प्रागुक्तं भुवनमेव स्थापयित्वा स्थापयन्तो वा सदुपदेशवशात्तानि प्रापयन्त इत्यर्थः, तथा जीवलोकं–भव्यजीवलोकं, अभव्यास्तु तीर्थकरोपदेशेनापि नावबुध्यन्ते, तमुद्धृत्य उध्धरन्तो वा भवान्धकूपात् स्ववचनरज्जुनाऽऽकर्षयन्त इत्यर्थः, शेषं पूर्ववत् ॥ २० ॥ 'अचब्भुअ' त्ति अत्यद्भुता–अन्येष्वसंभविनो ये गुणाः–प्रातीहार्यादिलक्षणाः अन्ये वा रूपादयस्ते विद्यन्ते येषां ते अत्यद्भुतगुणवन्तस्तान्, तथा निजयश एव शशधरः–चन्द्रस्तेन प्रसाधिता–विभूषिता दिगन्ता–दिक्पर्यन्ता यैः 'पयासिअ' त्ति पाठे प्रकाशिता वा यैस्तान् नियतं शाश्वतं यथा भवत्येवं सदैवेत्यर्थः, न आदि न चान्तो येषां ते अनाद्यनन्तास्तान् शरणं प्रपन्नः तानाश्रित इत्यर्थः, एतेन कालत्रयभाविनोऽनंता अपि जिना गृहीताः ॥ २१ ॥ अथ कृतार्हच्छरणो विशेषेण तेषां नमस्कारमाह–'उज्झि'त्ति, उज्झितानि–त्यक्तानि जरामरणानि यैस्तत्कारणकर्मरहितत्वात्ते उज्झितजरामरणास्तेभ्यः, समस्तानि–सम्पूर्णानि यानि दुःखानि तैरार्ता ऋता वा–पीडिता ये सत्त्वाः–प्राणिनस्तेषां शरण्याः–शरणे साधवस्तेभ्यः, यद्वा समाप्तं–निष्ठां गतं दुःखं येषां ते समाप्तदुःखाः, तथा आर्ता–जन्मजरामरणादिदुःखैः पीडिता ये सत्त्वास्तेषां शरण्याः, समाप्तदुःखाश्च ते आर्तसत्त्वशरण्याश्चेति विशेषणकर्मधारयः तेभ्यः, तथा त्रिभुवनजनानां सुखं ददति निजावतारेणेति त्रिभुवनजनसुखदास्तेभ्यः, सर्वत्र चतुर्थ्यर्थे षष्ठी 'छट्ठीविभत्तीइ भण्णइ चउत्थी' इति प्राकृतसूत्रबलात्, तेभ्यः–पूर्वोक्तगुणेभ्योऽर्हद्भ्यो नमो–नमस्कारोऽस्तु ॥ २२ ॥ अथ द्वितीयं शरणं यथा प्रतिपद्यते तथाऽऽह–

अरिहंतसरणमलसुद्धिलद्धसुविसुद्धसिद्धबहुमाणो ।
पणयसिररइअकरकमलसेहरो सहरिसं भणइ ॥ २३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥२३--२९॥

दीप अनुक्रम [२३-२९]

कम्मट्ठक्खयसिद्धा साहाविअनाणदंसणसमिद्धा ।
सव्वट्ठलद्धिसिद्धा ते सिद्धा हुंतु मे सरणं ॥ २४ ॥
तिअलोयमत्थयत्था परमपयत्था अचिंतसामत्था ।
मंगलसिद्धपयत्था सिद्धा सरणं सुहपसत्था ॥ २५ ॥
मूलुक्खयपडिवक्खा अमूढलक्खा सजोगिपच्चक्खा ।
साहाविअत्तसुक्खा सिद्धा सरणं परममुक्खा ॥ २६ ॥
पडिपिल्लिअपडिणीआ समग्गझाणग्गिदड्ढभवबीआ ।
जोईसरसरणीया सिद्धा सरणं समरणीआ ॥ २७ ॥
पाविअपरमाणंदा गुणनिस्संदा विदिन्नभवकंदा ।
लहुईकयरविचंदा सिद्धा सरणं खविअदंदा ॥ २८ ॥
उवलद्धपरभवंभा दुल्लहलंभा विमुक्कसंरंभा ।
भुवणघरधरणखंभा सिद्धा सरणं निरारंभा ॥ २९ ॥

‘अरिहंत’त्ति अर्हन्तां शरणमर्हच्छरणं तेन पूर्वोक्तेन या मलस्य–कर्मरजसः शुद्धिस्तया लब्धः शुद्धो–निर्मलः सिद्धान् प्रति बहुमानो–भक्तिर्येन स तथा, ‘सुविसुद्ध’त्ति पाठे तु सुष्ठु–अतिशयेन विशुद्धो–निर्मल इत्यर्थः, पुनः किं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

‘सिद्ध’ शब्दस्य विविध-व्याख्या: एवं तस्य शरणं

भूतः ?–प्रणतं–भक्तिवशेन नम्रीभूतं यच्छिरस्तत्र रचितः करकमलाभ्यां शेखरो येन स तथा, एवंभूतः सन् सहर्षं भणति ॥ २३ ॥ यच्चायं भणति तद्गाथाषट्केनाह–'कम्मट्ठ'त्ति, कर्माष्टकक्षयेण सिद्धाः–प्रसिद्धाः ते तीर्थसिद्धादिभेदेन पञ्चदशधा, तानाह–तीर्थसिद्धाः प्रसन्नचन्द्रसनत्कुमारादयः १ अतीर्थसिद्धा मरुदेव्यादिकाः २ गृहलिङ्गसिद्धाः पुण्याढ्यादिकाः ३ अन्यलिङ्गसिद्धा वल्कलचीर्यादिकाः ४ स्वलिङ्गसिद्धा जम्बूस्वाम्यादिकाः ५ स्त्रीलिङ्गसिद्धा राजीमत्यादिकाः ६ नरसिद्धा भरतादिकाः ७ कृत्रिमनपुंसकसिद्धाः गुणसेनादिकाः ८ प्रत्येकबुद्धसिद्धा नमिराजादिकाः ९ स्वयंबुद्धसिद्धाः समुद्रपालादिकाः १० बुद्धबोधितसिद्धाः त्रिकाधिकपञ्चदशशततापसादिकाः ११ एकसिद्धाः गजसुकुमालादिकाः १२ अनेकसिद्धा भरतपुत्रादिकाः १३ अजिनसिद्धाः पुण्डरीकगौतमादिकाः १४ जिनसिद्धा आदिनाथादिकाः १५ पुनः कथंभूताः ?–स्वाभाविके–निरावरणे ये अनवच्छिन्ने ज्ञानदर्शने ताभ्यां समृद्धाः–स्फीताः स्फातिमन्तः, तथाऽर्थ्यन्ते–अभिलष्यन्ते इत्यर्थाः सर्वे च तेऽर्थाश्च तेषां लब्धयः–प्राप्तयः सर्वार्थलब्धयः सिद्धा–निष्पन्नाः सर्वार्थलब्धयो येषां ते तथा, सिद्धसर्वकार्याः–प्राप्तसर्वसुखज्ञानादिभावाः कृतकृत्या इत्यर्थः, आर्षत्वात् सिद्धशब्दस्याग्रे निपातः, सर्वार्थलब्धिभिः सिद्धा-निष्ठिता इत्येवं वा समासः, ते सिद्धा मम शरणं भवन्तु ॥ २४ ॥ 'तिअलोय'त्ति, त्रैलोक्यस्य–चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य यन्मस्तकं–सर्वोपरिवर्तिस्थानं पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनविस्तीर्णेषत्प्राग्भाराख्यसिद्धिशिलाया उपरितनयोजनसत्कोपरितन-चतुर्विंशतितमभागरूप आकाशदेशस्तत्र तिष्ठन्तीति त्रैलोक्यमस्तकस्थाः, तथा परमपदं–मोक्षपदं सर्वकर्मरहितत्वरूपं तद्धेतुत्वाच्चारित्रादिक्रियाकलापस्य तत्र तिष्ठन्तीति ते तथा, अचिन्त्यमनन्तत्वात् सामर्थ्यं–जीवशक्तिविशेषो बलं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

येषां ते तथा, मङ्गलरूपाः सिद्धाः–सम्पन्नाः पदार्था येषां ते तथा, यद्वा सांसारिकदुःखरहितं मङ्गलभूतं यत् सिद्धिपदं तत्र तिष्ठन्ति इति ते तथा, ते सिद्धाः शरणं भवन्तु, पुनः कथंभूताः ?–सुखेन जन्मजरामरणक्षुत्तृषाद्याबाधारहितेन मुक्तिप्रभवेन प्रशस्ताः अव्याकुला अनन्तसुखा इत्यर्थः ॥ २५ ॥ 'मूलुक्खय'त्ति, मूलादुत्खाताः–उन्मूलिताः प्रतिपक्षाः–कर्मरूपा यैस्ते तथा, समूलनिर्मूलितकर्माण इत्यर्थः, 'मूलक्खए'त्ति पाठेऽयमर्थो–मूलस्य-संसारहेतुकर्मबन्धमूलस्य मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगरूपस्य शत्रुसङ्घातस्य क्षये कर्तव्ये प्रतिपक्षा इव–वैरिण इव तज्जयं कृतवन्त इत्यर्थः, तथा लक्ष्ये–द्रष्टव्यपदार्थे न मूढा अमूढलक्षाः सदोपयुक्तत्वात्तेषां, तथा सयोगिनां–सयोगिकेवलिनामेव प्रत्यक्षा–दृश्याः, शेषज्ञानिनां अविषयत्वात् सिद्धानां, तथा स्वाभाविकं–अकृत्रिममात्तं–गृहीतमाप्तं–प्राप्तं वा सुखं यैस्ते तथा, पुनः किंविशिष्टाः ?—परमः–प्रकृष्टोऽत्यन्तं विगमात्कर्मभिः सह मोक्षो–वियोगः पृथग्भावो येषां ते तथा, ते सिद्धाः शरणं भवन्तु ॥ २६ ॥ 'पडिपिल्लिअ'त्ति, प्रतिप्रेरिताः–क्षिप्ता अनादृता इत्यर्थः प्रत्यनीकाः–शत्रवो यैः समशत्रुमित्रत्वात्, यद्वा प्रतिप्रेरिता–निराकृताः प्रत्यनीका–रागाद्यान्तरशत्रवो यैस्ते तथा, समग्रं–सम्पूर्णं यद्ध्यानं परमलयः शुक्लध्यानमित्यर्थः तदेवाग्निः–वह्निस्तेन दग्धं–भस्मसात्कृतं भवस्य–संसारस्य बीजं–ज्ञानावरणीयादि कर्म यैस्ते तथा, योगीश्वरा–गणधराश्छद्मस्थतीर्थकरा वा तै शरणीयाः–आश्रयणीया नमस्करणध्यानादिना, तथा स्मरणीया–ध्येया मोक्षसुखाभिलाषुकाणां भव्यानामिति शेषः, एवंविधाः सिद्धाः शरणं भवन्तु ॥ २७ ॥ 'पाविअ'त्ति, प्रापितः–आत्मजीवं प्रति ढौकितः प्राकृतत्वाद्वा प्राप्तः परमानन्दो यैः सदामुदितत्वात्ते तथा, तथा गुणानां–ज्ञानदर्शना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीनां परिपाकप्राप्तत्वान्निस्स्यन्दः–सारो येषु ते तथा, सर्वसारज्ञानादिगुणा इत्यर्थः, विदीर्णो–विदारितः स्फाटितो भवस्य–संसारस्य मोहनीयादिकर्मरूपः कन्दो यैस्ते तथा, लोकालोकप्रकाशकेवलोद्योतेन लघुकीकृतौ–अल्पप्रभावीकृतौ रविचन्द्रौ यैः तदुद्योतस्य परिमितयोजनप्रकाशकत्वात्ते तथा, तथा क्षपितं–क्षयं नीतं द्वन्द्वं–संग्रामादिरूपं यैस्ते तथा, सर्वथा निष्काय्त्वात्, ते एवंविधाः सिद्धाः शरणं भवन्तु ॥२८॥ 'उवलद्ध'त्ति, उपलब्धं–प्राप्तं परमब्रह्म–प्रकृष्टं ज्ञानं यैस्ते उपलब्धपरमब्रह्माणः, समवाप्तकेवलज्ञाना इत्यर्थः, तथा दुर्लभो लम्भः–लाभो मुक्तिपदप्राप्तिलक्षणो येषां, सर्वलाभाग्रेसरत्वात्तल्लाभस्य सर्वचारित्रादिक्रियाणां तल्लाभे एव साफल्याच्च, तथा विमुक्तः–परित्यक्तः करणीयपदार्थेषु संरंभः–आटोपो यैस्ते तथा, निष्पन्नसर्वप्रयोजनत्वात्तेषां, तथा भुवनं–जीवलोकस्तदेव यद्गृहमिव गृहं तस्य संसारगर्तायां पततो धरणे–रक्षणे स्तम्भा इव स्तम्भाः, तथा 'निरारम्भा' निर्गता–बहिर्भूता आरम्भेभ्यः, सर्वथा कृत्यकृतत्वात्तेषां, ते एवंभूताः सिद्धा मम शरणं–आलम्बनं भवन्तु ॥ एतेन सिद्धाख्यं द्वितीयं शरणमभिहितं ॥ २९ ॥ अथ साधुशरणं प्रतिपित्सुर्यदभिधत्ते तदाह—

सिद्धसरणेण नयबंभहेऊ साहुगुणजणिअअणुराओ।
मेइणिमिलन्तसुपसत्थमत्थओ तत्थिमं भणइ ॥ ३० ॥
जिअलोअबंधुणो कुगइसिंधुणो पारगा महाभागा।

१ भुवनं-त्रिभुवनं तदेव गृहं तस्य धरणं-अवष्टम्भनं तत्र स्तम्भा इव स्तम्भाः, भुवनलोकस्य दुर्गतौ पततः स्वशरणप्रतिपत्तुः स्थिराधारभूतत्वात्तेषां (इति प्रत्यन्तरे)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'साधु' शब्दस्य विविध-व्याख्या: एवं तस्य शरणं

नाणाइएहिं सिवसुक्खसाहगा साहुणो सरणं ॥ ३१ ॥
केवलिणो परमोहिविउलमइसुअहरा जिणमयंमि ।
आयरियउवज्झाया ते सव्वे साहुणो सरणं ॥ ३२ ॥
चउद्स दसनवपुव्वी दुवालसिक्कारसंगिणो जे अ ।
जिणकप्पअहालंदिअ परिहारविसुद्धिसाहू अ ॥ ३३ ॥
खीरासवमहुआसव संभिन्नस्सोअकुट्ठबुद्धी अ ।
चारणवेउव्विपयाणुसारिणो साहुणो सरणं ॥ ३४ ॥
उज्झिअवयरविरोहा निच्चमदोहा पसंतमुहसोहा ।
अभिमयगुणसंदोहा हयमोहा साहुणो सरणं ॥ ३५ ॥
खंडिअसिणेहदामा अकामधामा निकामसुहकामा ।
सुपुरिसमणाभिरामा आयारामा मुणी सरणं ॥ ३६ ॥
मिल्हिअविसयकसाया उज्झिअघरघरणिसंगसुहसाया ।
अकलिअहरिसविसाया साहू सरणं गयपमाया ॥ ३७ ॥
हिंसाइदोससुन्ना कयकारूण्णा सयंभुरुप्पण्णा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजरामरपहखुण्णा साहू सरणं सुकयपुण्णा ॥ ३८ ॥
कामविडंबणचुक्का कलिमलमुक्का विमुक्कचोरिक्का ।
पावरयसुरयरिक्का साहू गुणरयणचच्चिक्का ॥ ३९ ॥
साहुत्ति सुट्ठिआ जं आयरिआई तओ अ ते साहू ।
साहुगहणेण गहिआ तम्हा ते साहुणो सरणं ॥ ४० ॥

'सिद्ध'त्ति, नया–नैगमादयस्तैरुपलक्षितं यद्ब्रह्म–श्रुतज्ञानं द्वादशाङ्गरूपं 'नयभङ्गप्रमाणगमगहन'मिति वचनात्तस्य नयब्रह्मणो ये हेतवः–कारणभूताः साधुगुणा–विनयादयो, विनयादिगुणसम्पन्नस्यैव श्रुतावाप्तेः, तेषु नयब्रह्महेतुषु साधुगुणेषु जनितः–उत्पादितोऽनुरागो–बहुमानो यस्य स नयब्रह्महेतुसाधुगुणजनितानुरागः शरणप्रतिपत्ता साध्वादिः–केनास्यानुरागः कृत इत्याह–सिद्धशरणेन–पूर्वोक्तेन, पुनः कथंभूतः सः ?–मेदिन्याः–पृथ्व्या मिलत्–लुठत् सुप्रशस्तं भक्तिभरनम्रत्वान्मस्तकं–उत्तमाङ्गं यस्य स मेदिनीमिलत्सुप्रशस्तमस्तकः, एवंविधः स साधुगुणरागी भूतलन्यस्तमौलिः सन् तत्रेतिशरणप्रस्तावे इदं–वक्ष्यमाणं भणति–वक्ति ॥ ३० ॥ यदयं भणति तन्नवभिर्गाथाभिराह–'जिअलोअ'त्ति, जीवलोकस्य–प्राणिवर्गस्य षड्जीवनिकायात्मकस्य त्रिविधं त्रिविधेन रक्षाकारित्वात् बन्धव इव बन्धवः, कुत्सिता गतिः कुगतिः, नरकतिर्यगादिरूपा सैव सिन्धुः–महानदी समुद्रो वा तस्यास्तस्य वा पारं–तीरं गच्छन्तीति पारगाः–तीरवर्तिनः सुगतिगामित्वादेव साधूनां, तथा महान् भागः–अतिशयविशेषो येषां ते तथाऽनेकलब्धिसम्पन्नत्वात्तेषां, तथा ज्ञानादिकैः–ज्ञानदर्श-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नचारित्रैरेव शिवसौख्यं–मोक्षशर्म साधयन्ति ये ते शिवसौख्यसाधकाः, एतेन तीर्थान्तरीयैर्यत्स्नानादिक्रियाभिर्मोक्षसाधनमुक्तं तन्निरासः कृतो द्रष्टव्यः, त एवंविधाः साधवो मम शरणं भवन्तु ॥ ३१ ॥ साधुभेदानाह–‘केवलं’असहायं-मत्यादिज्ञानानपेक्षं सर्वद्रव्यपर्यायादिविषयं ज्ञानं विद्यते येषां ते केवलिनः, ‘परमोहि’त्ति अवधिः–मर्यादा रूपिद्रव्येषु प्रवृत्तिरूपा तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः परमश्चासावविधिश्च परमावधिः यदुत्पत्तेरनन्तरमवश्यमन्तर्मुहूर्त्तेन केवली भवति उत्कृष्टमवधिज्ञानमित्यर्थस्तद्योगात्साधवोऽपि परमावधयः, उत्कृष्टावधिसाधुभणनेन जघन्यमध्यमावधयोऽपि साधवोऽन्तर्भाविता ज्ञेयाः, ‘विउलमइ’त्ति मनःपर्यायज्ञानं द्विधा–ऋजुमतिविपुलमतिभेदात्, तत्र विपुला मतिर्ऋजुमत्यपेक्षया विशिष्टज्ञानवत्त्वेन येषां ते विपुलमतयः, इह विपुलमतिग्रहणेन ऋजुमतयोऽपि गृहीता ज्ञातव्याः, द्वयेषामप्येषां मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोद्रव्यपरिच्छेदकत्वात्, बह्वल्पपर्यायग्रहणादिनैव विशेषाच्च, तथा श्रुतं–कालिकोत्कालिकाङ्गप्रविष्टानङ्गप्रविष्टादिलक्षणं सूत्रार्थोभयरूपं धरन्ति–योग्यशिष्यप्रशिष्यादिप्रदानेनाव्यवच्छिन्नं कुर्वन्तीति श्रुतधराः सामान्यतः सर्वेऽपि विशेषेण तु आचर्यन्ते–आसेव्यन्ते मोक्षार्थिभिरित्याचार्याः–पञ्चविधाचारधारिणः सूत्रार्थोभयवेदिनो गच्छालम्बनभूताः षट्त्रिंशद्गुणवन्तोऽर्थव्याख्यानकारिणः, उपेत्य–आगत्य अधीयते येभ्य इत्युपाध्यायाः–सूत्रार्थोभयवेदिनो द्वादशाङ्गसूत्राध्यापका उपाध्यायाः, एते च आचार्योपाध्यायाः सामान्यतो लौकिकाः कलाचार्यादयोऽपि लभ्यन्ते इति तव्यवच्छेदायाह—‘जिणमयंमि’त्ति जिनमते–जिनशासने ये आचार्योपाध्यायाः, एतद्ग्रहणं चोपलक्षणम्, तेन प्रवर्तकस्थविरगणावच्छेदका अप्यत्र गृहीता ज्ञातव्याः, सर्वशिष्यान् तपःसंयमव्यापारेषु प्रवर्तयन्तो गणतत्पिकराः प्रवर्तका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्यन्ते, प्रवर्तकव्यापारितार्थेषु सीदमानान् साधून् स्थिरीकुर्वन्तः स्थविराः, गच्छयोग्यक्षेत्रोपध्यादिसंपादनार्थं नवनवक्षेत्रविहारकारिणो गणावच्छेदकाश्च, ते च सर्वे केवलिप्रभृतिसाधवः शरणं भवन्तु ॥ ३२ ॥ तथा चतुर्दश पूर्वाणि विद्यन्ते येषां ते चतुर्दशपूर्विणः श्रीप्रभवादयः दशाद्यान्येव पूर्वाणि येषां ते दशपूर्विणः श्रीआर्यमहागिर्यादयः, अन्त्यानि चत्वारि पूर्वाणि प्रायः समुदितान्येव व्युच्छिद्यन्ते इति चतुर्दशपूर्व्यनन्तरं दशपूर्विणोऽभिहिताः, तथा नवपूर्विण श्रीआर्यरक्षितादयः, पूर्वीशब्दः स्थानत्रयेऽपि संबध्यते, तथा 'दुवालस'त्ति अग्रेतनाङ्गीशब्दसंबन्धात् द्वादशाङ्गिनः, ननु चतुर्दशपूर्विणां द्वादशाङ्गिनां च को भेद इति चेद्, उच्यते, द्वादशमङ्गं दृष्टिवादः, स च परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वानुयोग-३ पूर्वगत ४ चूलिका ५ भेदात्पञ्चविधः, पूर्वाणि च चतुर्दशापि पूर्वगतमध्ये सन्ति द्वादशाङ्गस्यैकदेशभूतान्येवेति पूर्वधरद्वादशाङ्गधरभेदसिद्धिः, तथा एकादशाङ्गिनश्च ये च, चकारो भिन्नक्रमसूचकः, संप्रति विशेषानुष्ठानिन आह–'जिणकप्प'त्ति एकाकित्वेन निष्प्रतिकर्मशरीरतया च जिनस्येव कल्पः–आचारो येषां ते जिनकल्पिका–दुष्करक्रियाकारिणः 'अहालंदिअ'त्ति उदकार्द्रः करो यावता कालेन शुष्यति तत् जघन्यं लन्दं तत आरभ्योत्कृष्टं पञ्चरात्रिन्दिवलक्षणं तदत्र गृह्यते, उत्कृष्टलन्दस्यानतिक्रमेण चरन्तीति यथालन्दिकाः, पञ्चको गणोऽमुं कल्पं प्रतिपद्यते, मासकल्पक्षेत्रं च गृहपङ्क्तिरूपाभिः षड्भिः वीथिभिर्जिनकल्पिकवत् परिकल्पयन्ति, एकैकस्यां च वीथ्यां पञ्च पञ्च दिनानि पर्यटन्ति, जिनकल्पिकास्त्वेकमेव दिनं सप्तम एव दिने पुनस्तस्यां वीथ्यां समागच्छन्ति इत्येतेषां भेदः, तथा परिहारविशुद्धिकाश्च साधवः, ते चैवं–नव साधवोऽमुं कल्पं प्रतिपद्यन्ते, तेषां मध्ये षण्मासान् यावत् चत्वारस्तपः कुर्वन्ति, चत्वारोऽनुपारिहारिकत्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेकश्च कल्पस्थितत्वं–गुरुत्वमित्यर्थः, एते पञ्चापि निर्लेपाचाम्लभोजिनः, पारिहारिकाणां ग्रीष्मे चतुर्थषष्ठाष्टमरूपं शिशिरे षष्ठाष्टमदशमरूपं वर्षास्वष्टमदशमद्वादशमरूपं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदं तपः, पारणके च तेषां नित्यमाचाम्लं, द्वितीय-षण्मासाननुपारिहारिकाः पारिहारिकत्वं पारिहारिकाश्चानुपारिहारिकत्वं प्रतिपद्यन्ते, तृतीयषण्मासान् कल्पस्थितः पूर्वोक्तं पारिहारिकतपः अपरेऽष्टापि निर्लेपाचाम्लतपः कुर्वन्ति, एवमष्टादशभिर्मासैरयं कल्पः परिपूर्णो भवति, तत्समाप्तौ च तमेव कल्पं जिनकल्पं वा प्रतिपद्यन्ते गच्छं वा समायान्ति, चः सर्वेषां समुच्चये, विशेषलब्धिसंपन्नान् साधूनाह– **'खीरासव'**त्ति चक्रवर्तिसम्बन्धिनो गोलक्षस्य भक्षितेक्षुक्षेत्रादिविशेषाहारस्यार्द्धार्द्धक्रमेण पीतगोक्षीरस्य पर्यन्ते यावदे-कस्या गोः सबन्धि यत्क्षीरं तदिव येषां वचनं माधुर्यरसमाश्रवति–मुञ्चतीति क्षीराश्रवाः, मधु–शर्करादि मधुरद्रव्यं तद्रस-तुल्यं वचनं येषां ते मध्वाश्रवाः, उपलक्षणत्वात्सर्पिराश्रवा अपि गृह्यन्ते, ते च सुगन्धघृतरसतुल्यवचनाः, तथा **'संभि-न्नसोअ'**त्ति ये सर्वैः शरीरावयवैः शृण्वन्ति जानन्ति च चक्रवर्तिस्कन्धावारसत्कमनुष्यतिरश्चां कोलाहलशब्दसंदोहान् अयमेतस्यायमेतस्येत्यादिव्यक्त्या पृथक् पृथक् भिन्नान् व्यवस्थापयन्ति इति वा संभिन्नश्रोतसः, **'कुट्ठबुद्धिय'**त्ति नीरन्ध्रको-ष्ठकक्षिप्तधान्यवद् ये सुनिश्चितस्थिरसंस्कारसूत्रार्थास्ते कोष्ठबुद्धयः, **'चारण'**त्ति अतिशयचरणाच्चारणाः, ते द्विधा– जङ्घाचारणा विद्याचारणाश्च, तत्राद्या एकोत्पातेन रुचकवरद्वीपं यान्ति ततः प्रतिनिवृत्ता द्वितीयोत्पातेन नन्दीश्वरे तृतीयोत्पातेन यतो गतास्तत्रायान्ति, ऊर्ध्वदिशं त्वाश्रित्य ते प्रथमोत्पातेन पाण्डुकवनं द्वितीयोत्पातेन नन्दनवनं तृती-योत्पातेन यतो गतास्तत्रायान्ति, तपोलब्धेः प्रयुज्यमानाया ह्रासभवनात्, विद्याचारणास्तु प्रथमोत्पातेन मानुषोत्तरनगं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयोत्पातेन नन्दीश्वरं तृतीयोत्पातेन यतो गतास्तत्रायान्ति, ऊर्द्धं तु प्रथमोत्पातेन नन्दनवनं द्वितीयोत्पातेन पाण्डुकवनं तृतीयोत्पातेन यतो गतास्तत्रायान्ति, विद्यायाः प्रयुज्यमानाया वृद्धिभवनात्, तथाऽन्येऽपि बहुप्रकाराश्चारणा भवन्ति साधवः, तद्यथा–आकाशगामिनः पर्यङ्कावस्थानिषण्णाः कायोत्सर्गस्थशरीरा वा पादोत्क्षेपक्रमं विनापि व्योमचारिणः, केचित्तु फलपुष्पपत्रहिमवदादिगिरिश्रेणिअग्निशिखानीहारावश्यायमेघवारिधारामर्कटतन्तुज्योतीरश्मिपवनाद्यालम्बनमतिपरिणामकुशलाः तथा वापीनद्यादिजले तज्जीवानविराधयन्तो भूमाविव पादोत्क्षेपनिक्षेपकुशला जलचारणाः, तथा भुव उपरि चतुरङ्गुलप्रमिते व्योम्नि पादोत्क्षेपनिक्षेपकुशला जंघाचारणा इति, 'विउव्वि'त्ति वैक्रियलब्धिमन्तः साधवः, ते च वैक्रियशक्त्या नानारूपैरसङ्ख्येयानपि द्वीपान् समुद्रांश्च पूरयन्ति, जम्बूद्वीपं तु मनुष्याद्यन्यतररूपैर्बिभ्रति, 'पयाणुसारि'त्ति ये पूर्वापरपदानुसारतः स्वयं त्रुटितं पदमनुसरन्ति–पूरयन्ति ते पदानुसारिणः, इह चोपलक्षणत्वादामर्षौषध्यादिलब्धिसंपन्नाः साधवोऽत्र ज्ञेयाः, एते एवंविधभेदभिन्नाः साधवो मे शरणं भवन्तु ॥ ३४ ॥ अथ सर्वसाधुसाधारणगुणा ये साधवस्तान् गाथापञ्चकेनाह–वैरं–प्रभूतकालजं श्रीवीरजिनं प्रति त्रिपृष्ठभवनिहतसिंहजीवहालिकब्राह्मणस्य कपिलस्येव विरोधः–कुतश्चित्कारणात्तत्कालसम्भवोऽप्रीतिविशेषः, प्रतिमार्थे उदायनचण्डप्रद्योतयोरिव, अथवा वैरहेतवो विरोधाः वैरविरोधा उज्झिताः–त्यक्ता वैराणि विरोधाश्च यैस्ते तथा, यत एवोज्झितवैरविरोधा अत एव नित्यं–सततमद्रोहाः-परद्रोहवर्जिताः,वैरवत एव परद्रोहाभिप्रायसद्भावात्, यत एवाद्रोहा अत एव प्रशान्ता-प्रसन्ना मुखशोभा-वदनच्छाया येषां ते तथा, परद्रोहिणां हि मुखं विकरालं स्यादिति, यत एवंरूपा अत एवाभिमतः–प्रशस्यः, पाठान्तरेऽभिगतस्सह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारी वा गुणसंदोहो–गुणनिकरो येषां ते तथा, एवंविधानां च ज्ञानातिशयः स्यादिति हतो मोहः–अज्ञानं यैस्ते तथा ज्ञानिन इत्यर्थः, ते साधवः शरणं भवन्तु ॥ ३५ ॥ खण्डितानि–त्रोटितानि स्नेहरूपाणि दामानि–रज्जवः आर्द्रकुमारेणेव आत्मनो हस्तिनो वा यैस्ते खण्डितस्नेहदामानः छिन्नस्नेहनिगडा इत्यर्थः, यत एवंरूपा अत एव न विद्यते कामो–विषयाभिलाषो धामानि च–गृहाणि येषां, छिन्नस्नेहत्वे एव विषयगृहाणां त्यागः स्यादिति, अथवा न विद्यन्ते कामधामानि–विषयगृहाणि येषां ते तथा, विषयासक्तिहेतुरम्यमन्दिररहिता इत्यर्थः, अथवा न कामस्य धाम–स्थानं अकामधामाः, प्राकृतत्वात्पुंस्त्वं, यत एवंविधा अत एव निष्कामं–निर्विषयं यत्सुखं–मोक्षसंबन्धि तद्विषयोऽभिलाषो येषां ते तथा, निर्विषयस्यैव शिवशर्माभिलाषुकत्वात् मोक्षसुखाभिलाषिण इत्यर्थः, तथा सत्पुरुषाणां–आचार्यादीनां इङ्गिताकारसम्पन्नत्वादिना स्वविनयेन वन्दारूणां स्वशान्तत्वादिना दमदन्तेनेव युधिष्ठिरादीनां मनः–चित्तमभिरमयन्ति—आनन्दयन्तीति सत्पुरुषमनोऽभिरामाः, तथा त्यक्तान्यकृत्यत्वादात्मानं तासु तासु प्रवचनोक्तक्रियासु रमयन्ति–क्रीडयन्तीत्यात्मारामाः, यद्वा आराममिव–भव्यजीवानां क्रीडास्थानमिव आत्मा येषां हर्षहेतुत्वात्ते तथा, अथवा आचारं—पञ्चप्रकारममन्ति—गच्छन्तीत्याचारामाः मन्यन्ते—बुध्यन्ते जगतः कालत्रयावस्थामिति मुनयः–साधवस्ते शरणं भवन्तु ॥ ३६ ॥ 'मिल्हिअ'त्ति मिल्हिताः–अपास्ता विषयाः–शब्दाद्याः कषायाश्च–क्रोधाद्या यैस्ते तथा, विषयकषायरहिता इत्यर्थः, तथा गृहं—अगारं गृहिणी–कलत्रं तयोः सङ्गः–संबन्धस्तस्माद्यः सुखास्वादः–सुखानुभवः स उज्झितः–परिहृतो यैस्ते तथा निष्परिग्रहा निस्सङ्गाश्चेत्यर्थः, तथा न कलितौ–नाश्रितौ हर्षविषादौ–प्रमोदवैमनस्ये यैस्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा, समभावव्यवस्थिता इत्यर्थः, तथा गतः प्रमादो येभ्यस्ते तथाऽप्रमत्ता इत्यर्थः, **'विहुअसोआ'**इति तु पाठे विधूतानि श्रोतांसि–आश्रवद्वारलक्षणानि यैः यद्वा विधुतः–क्षिप्तः शोकः–चित्तखेदो यैस्ते तथा, विधूतासंयमस्थाना गतशोका वेत्यर्थः, ते साधवः शरणं भवन्तु ॥ ३७ ॥ हिंसा आदिर्येषां ते हिंसादयः ते च ते दोषाश्च, आदिशब्दादलीकभाषणपरस्वापहारस्त्रीसेवापरिग्रहादीनां ग्रहः, हिंसादिदोषैः शून्याः–तैर्विरहिता इत्यर्थः, तथा कृतं–विरचितं कारुण्यं–जीवलोकोपरि दुःखप्रहाणेच्छा यैस्ते तथा सर्वजीवेषु कृपार्द्रचेतस इत्यर्थः, तथा जीवाजीवादिपदार्थानां जिनोक्तानां यथास्थितत्वेन रोचनं–मननं श्रद्धानं रुक् सम्यक्त्वमित्यर्थः प्रज्ञानं प्रज्ञा—बुद्धिः सम्यग्ज्ञानमित्यर्थः, स्वयं भवति इति स्वयम्भूः स्वयम्भुवौ रुक्प्रज्ञे—सम्यक्त्वज्ञाने येषां ते स्वयम्भूरुक्प्रज्ञा यद्वा स्वयंभुवा–स्वयम्भूतेन सम्यक्त्वेन क्षायिकादिना पूर्णाः, दूरीकृतमिथ्यात्वा इत्यर्थः, 'पुन्न'इति पाठे इयं व्याख्या, यद्वा स्वयंभूशब्देन स्वयम्भूरमणः समुद्र उच्यते 'भीमो भीमसेन' इति वत्, ततस्तत्तुल्ये विस्तीर्णे ऋक्प्रज्ञे तेषां ते तथा, अथवा 'स्वयम्भरुप्पन्ना' इति पाठे स्वयंभराः—आत्मनिर्वाहकाः कस्याप्यनाश्रितत्वेनोत्पन्ना–व्यवस्थिताः स्वयंभरोत्पन्नाः, तथा न विद्यते जरामरौ यत्र तदजरामरं–निर्वाणं तस्य पथो–मार्गस्तदुपदर्शकत्वात्प्रवचनशास्त्राणीत्यर्थः तेषु क्षुण्णाः–निपुणाः, सम्यक्तत्त्वस्य वेदिन इत्यर्थः, क्षुण्णः–पुनः पुनः परिशीलनेनासेवितोऽजरामरपथो–मोक्षमार्गो ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणो यैस्ते तथा, प्राकृतत्वात् क्षुण्णशब्दस्य परिनिपातः, 'अजरामरबहुखुन्ना'इति पाठे तु अजरामरे–निर्वाणे वर्णयितव्ये बहु प्रभूतं यथा भवत्येवं क्षुण्णाः-सम्यग्मोक्षस्वरूपप्रकाशका इत्यर्थः, ते साधवः शरणं भवन्तु, पुनः किंभूतः–सुष्ठु–अतिशयेन कृतं पुण्यं–चारित्रप्राप्तिलक्षणं एष्यद्भवयोग्यं

॥ ६९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गादिलाभलक्षणं वा यैस्ते सुकृतपुण्याः, यद्वा सुकृतैः–तपःप्रभृतिभिः पूर्णा–भृताः संचितप्रभूततपस इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ काम्यते–अभिलष्यते विषयार्थिभिरिति कामस्तस्य कामस्य—स्मरजनितविकारस्य या विडम्बना—नाना विक्रियास्ताभिः परिवेष्टनं तस्याः ‘चुक्क’त्ति प्राकृतत्वाच्च्युतास्तया रहिता ज्ञातपरमार्थत्वात् तां त्यक्तवन्त इत्यर्थः, तथा कलिमलं—पापं तेन मुक्ताः पवित्रचारित्रनीरेण तं प्रक्षालितवन्त इत्यर्थः, तथा ‘विविक्क’त्ति विविक्तं–अदत्तादाननियमेन आत्मनः पृथक्कृतं चौरिक्यं–चौर्यं यैस्ते तथा स्वामिजीवतीर्थकृद्गुर्वनुज्ञातवस्त्रभक्तपानादिग्रहणेन सर्वथापि तं परिहृतवन्त इत्यर्थः, तथा पातयति दुर्गतौ जीवानिति पापं तदेव रजः पापरजः तत्कारणत्वात् पापरजश्च तत्सुरतं–मैथुनं च पापरजःसुरतं तेन रिक्थाः–तत्त्यागिनो, नवगुप्तिसनाथब्रह्मव्रतधरणाद्, एवंविधाः साधवः शरणं, किंभूताः साधवः ?–गुणा–व्रतषट्कादयः त एव रत्नानि तैः चच्चिक्कत्ति–दीप्तिमन्तस्तैर्मण्डिता इत्यर्थः, यद्वा साधूनां गुणाः साधुगुणा इत्येवं कार्यं, प्राकृतत्वादीर्घत्वं, साधव इति विशेष्यं तु प्रस्तावादेव लभ्यते ॥ ३७ ॥ नन्वत्र साधुशरणाधिकारे ज्येष्ठपदवर्तित्वेनाचार्यादयः कथं गृह्यन्ते इति संशयापनोदायाह–साधुत्वे–साधुस्वरूपे समभावपरसाहाय्यदानमुक्तिसाधकयोगसाधनादिलक्षणे सुष्ठु–अतिशयेन स्थितास्तत्सेविन इत्यर्थः यद्वा साधुत्वेन सुस्थिताः–समाहिताः साधुत्वसुस्थिताः यद्–यस्मात्कारणादाचार्यादयः पञ्चापि ततश्च ते पञ्चापि साधव उच्यन्ते, तत्कार्यकरणात्, तस्मात्साधुभणितेन–साधुसत्कोच्चारेण गृहीतास्ते सर्वेऽप्यतीतानागतवर्तमानकालभाविनोऽत्राधिकारे मम शरणं भवेयुरिति ॥ ४० ॥ उक्तं तृतीयं शरणं, अथ चतुर्थं शरणमाह—

पडिवन्नसाहुसरणो सरणं काउं पुणोऽवि जिणधम्मं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

‘केवलिप्रज्ञप्तधर्म’ शब्दस्य विविध-व्याख्या: एवं तस्य शरणं

पहरिसरोमंचपवंचकंचुअंचियतणू भणति ॥ ४१ ॥
पवरसुकएहि पत्तं पत्तेहिवि नवरि केहिवि न पत्तं ।
तं केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवन्नोऽहं ॥ ४२ ॥
पत्तेण अपत्तेण य पत्ताणि अ जेण नरसुरसुहाणि ।
मुक्खसुहं पुण पत्तेण नवरि धम्मो स मे सरणं ॥ ४३ ॥
निद्दलिअकलुसकम्मो कयसुहजम्मो खलीकयअहम्मो ।
पमुहपरिणामरम्मो सरणं मे होउ जिणधम्मो ॥ ४४ ॥
कालत्तएवि न मयं जम्मणजरमरणवाहिसयसमयं ।
अमयं व बहुमयं जिणमयं च धम्मं पवन्नोऽहं ॥ ४५ ॥
पसमिअकामपमोहं दिट्ठादिट्ठेसु न कलिअविरोहं ।
सिवसुखफलयममोहं धम्मं सरणं पवन्नोऽहं ॥ ४६ ॥
नरयगइगमणरोहं गुणसंदोहं पवाइनिक्खोऽहं ।
निहणियवम्महजोहं धम्मं सरणं पवन्नोऽहं ॥ ४७ ॥
भासुरसुवन्नसुंदररयणालंकारगारवमहग्घं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निहिमिव दोगच्चहरं धम्मं जिणदेसिअं वंदे ॥ ४८ ॥

साधुश्रावकाद्यन्यतमो जीवः प्रतिपन्नसाधुशरणः सन् पुनरपि जिनधर्मं शरणं कर्तु–प्रतिपत्तुमिच्छन्नित्यध्याहार्यं, इदं-वक्ष्यमाणं भणति, किंविशिष्टोऽसौ ?–प्रकृष्टो हर्षः प्रहर्षः–वदनविकासादिचिह्नगम्यो मानसः प्रीतिविशेषस्तद्वशेन यो रोमाञ्चप्रपञ्चः स एव कञ्चुकस्तेनाञ्चिता–विभूषिता तनुः–शरीरं यस्य स प्रहर्षरोमाञ्चप्रपञ्चकञ्चुकिततनुः, प्रमोदपूरिताङ्गः सन्नित्यर्थः, यद्भणति तदाह–प्रवरसुकृतैः–विशिष्टपुण्यैः प्राप्तं–लब्धं सम्यक्त्वदेशविरतिरूपं, धर्ममिति संबन्धः, अर्धपुद्गल-परावर्त्ताभ्यन्तरीभूतभवैरेव भव्यजीवैरासन्नसिद्धिकैः प्राप्यमानत्वात्, तथा पात्रैरपि–भाग्यवद्भिरपि ब्रह्मदत्तचक्रयादि-भिरिव कैश्चित् नवरीति–पुनरर्थे न प्राप्तं–नासादितं, पात्रत्वं च ब्रह्मदत्तस्य चक्रित्वलाभात्, देवेन्द्रचक्रवर्त्त्यादिपदानि हि भव्यानामेव भवन्तीति, तमेवंभूतं केवलिभिः–केवलज्ञानोपलब्धसमस्ततत्त्वैः प्रकाशितं धर्मं–श्रुतधर्मचारित्रधर्मरूपं शरणं प्रपन्नोऽहमिति ॥ ४२ ॥ अथ धर्मस्यैव माहात्म्यमुपदर्शयन्नाह–प्राप्तेनाप्राप्तेनापि–लब्धेनालब्धेनापि, केनेत्याह–येन जैनधर्मेण नरसुरसुखानि प्राप्तानि,तत्र प्राप्तेन यथा लब्धसम्यक्त्वेन धनसार्थवाहेन नरसुखं-युगलिकसुखं प्राप्तं, अप्राप्तेना-पि च यथा तेनैव तस्मिन्नेव भवे सम्यक्त्वलाभात् पूर्वं, प्राप्तेन धर्मेण सुरसुखं बहुभिरपि श्रीवीरजीवनयसारादिभिः अप्रा-प्तेन धर्मेण सुरसुखं 'तावस जा जोइसिआ चरगपरिव्वाय बंभलोगो जा' इत्याद्यैर्बहुभिः कपिलादिभिरिव लब्धं, यद्वा अनेकैः भव्यैः प्राप्तेन धर्मेण नरसुरसुखानि लब्धानि, अभव्यैश्च अप्राप्तेनापि तेन, तेषामप्यागमे केवलक्रियादिबलेन नव-मग्रैवेयकं यावद्गमनश्रवणात्, मोक्षसुखं पुनर्येन धर्मेण प्राप्तेनैव प्राप्यते, नान्यथा, मरुदेवाप्रभृतयोऽपि भावतश्चारित्रप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२४/वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[१] "चतु:शरण" मूलं एवं विजयविमलगणि कृता अवचूर्णि:

रिणामं प्राप्यैव मोक्षं जग्मुरिति, नवरि–पुनः स धर्मो मम शरणं भवतु, अथ व्याख्यान्तरं–पात्रेण–ज्ञातिकुलसौभाग्यादिगुणयुक्तेन तथा अपात्रेणापि–गुणवियुक्तेन द्रारिद्र्याद्युपहतेनापि प्राप्तानि–लब्धानि येन कारणेन नरसुरसुखानि-मनुजदेवसमृद्धयः, तत्र पात्रेण ऋजुत्वादिगुणवता वरुणसारथिमित्रेणैव नरसुखं–विदेहेषु सुकुलोत्पत्त्यादिकं यथा प्राप्तं, अपात्रेण–दौःस्थ्याक्रांतेन कौशाम्ब्यामार्यसुहस्तिप्रवजितसम्प्रतिराजजीवद्रमकेणेव, पात्रेण सुरसुखं वसुदेवपूर्वभवनं-दिषेणेनेव प्राप्तं, च एवकारार्थो भिन्नक्रमश्च पात्रेणेत्यत्र योज्यते, ततश्चायमर्थः नवरं–केवलं मोक्षसुखं–शिवशर्म पुनः पात्रेणैव चारित्रधर्माधारभूततथाभव्यत्वगुणलक्षणेनैव प्राप्यते, यस्य धर्मस्य प्राप्तेनैवेति शेषः, नान्यथेति, स धर्मो मम शरणं भवतु ॥ ४३ ॥ निर्दलितानि–विदारितानि तत्कर्तृजनेभ्यः कलुषाणि–मलिनानि कर्माणि येन धर्मेण स तथा, निर्धूतसर्वपाप इत्यर्थः, यत एवंविधोऽत एव कृतं शुभं जन्म कर्म वा सेवकजनेभ्यो गणधरतीर्थकरत्वादिप्राप्तिलक्षणं येन स कृतशुभजन्मा कृतशुभकर्मा वा, यत एवंविधोऽत एव खलीकृतो–वैरिवन्निर्द्धाटितो निःसारितो वा अधर्मः कुधर्म्मो वा सम्यक्त्ववासितान्तःकरणेभ्यो येन स तथा, तथाऽयं जिनधर्मः प्रमुखे–आदौ इहलोकेऽपि रम्यो धम्मिलादीनामिव परिणामे–परिपाकप्राप्तौ भवान्तरेऽपि दामन्नकादीनामिव रम्यो–मनोज्ञः, मिथ्यादृष्टिधर्मस्तु नैवंविधः, तस्यारम्भेऽपि पञ्चाग्नितपःप्रभृत्यादेर्महाकष्टहेतुत्वेन परिणामे परलोके च मिथ्यात्वरूपत्त्वाद्दुर्गतिमूलत्त्वेन चासुन्दरत्वात्, विषयसुखस्य तु आदौ सुन्दरत्वेऽपि परिणामे शनै शनैः इहलोके परलोके च कटुविपाकत्वाच्च, जिनधर्मस्त्वादौ परिणामेऽपि च रम्य एव, स एवंविधो धर्मो मे शरणं भवतु ॥ ४४ ॥ कालत्रयेऽपि–अतीतानागतवर्तमानरूपे न मृतो–न विनष्टस्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमृतं भरतैरवतेषु व्यवच्छेदसद्भावेऽपि महाविदेहेषु कालत्रयेऽपि धर्मस्य नैरन्तर्येण सद्भावात्, तथा जन्म च जरा च मरणं च व्याधयश्च जन्मजरामरणव्याधयस्तेषां शतानि तानि शमयतीति जन्मजरामरणव्याधिशतशमकः, सिद्धिपद-प्रदानेन तन्निवारक इत्यर्थः, तं, 'सुमय'मिति पाठे तु जन्मजरामरणव्याधिशतानि सुष्ठु–अतिशयेन मृतानि–विनष्टानि यस्मात्स तथा, सद्वर्णगन्धरसोपेतं बलवर्णसौभाग्यपुष्टिजननं सर्वरोगनाशनं वस्तु अमृतमुच्यते तदिव सकललोकस्यानन्द-तुष्टिपुष्टिजनकत्वाद् बहुमतः सर्वस्याप्यतिशयेनाभीष्ट इत्यर्थः, तं प्रक्रमायातं जिनधर्मं, न केवलं जिनधर्मं, किन्तु जिन-प्रवचनमपि–द्वादशाङ्गरूपं पूर्वोक्तगुणसुन्दरं शरणत्वेनाहं प्रपन्नः–आश्रित इत्यर्थः ॥ ४५ ॥ प्रकर्षेण कटुविपाकतादर्शनेनो-पशमं नीतः कामस्य प्रकृष्टो मोहः–उन्मादो मीहो वा येन स तथा, निवारितकामोद्रेक इत्यर्थः, जिनधर्मभावितमतेः कामनिवृत्तिसद्भावात्, तथा दृष्टादृष्टे-दृष्टा-दृष्टविषया ये बादरैकेन्द्रियादयो जीवाः पुद्गलस्कन्धादयोऽजीवाश्च, तथाऽदृष्टाः सर्वलोकवृत्तिसूक्ष्मैकेन्द्रियादिजीवा धर्माधर्मास्तिकायादयोऽजीवाश्च, स्वर्गनरकादयो वा येऽतिशयज्ञानज्ञानिगोचरास्तेषु दृष्टादृष्टेषु पदार्थेषु न कलितो–न प्राप्तो विरोधो–विपरीतप्ररूपणारूपो येन स तथा तं, केवलिप्रज्ञप्तत्वात् यथावस्थित-स्वरूपावेदकमित्यर्थः, तथा शिवसुखमेव फलं तद्ददातीति शिवसुखफलदस्तं, अत एव न मोघोऽमोघः–अवन्ध्यः सफल इत्यर्थः तमेवंप्रकारं धर्मं शरणं प्रपन्नोऽहमिति ॥ ४६ ॥ पापकारिणो नरान् कायन्ति—आह्वयन्तीति नरका–रत्नप्रभा-दिषु सीमन्तकाद्यास्त एव गम्यन्ते इति गतिस्तत्र यद्गमनं तद् रुणद्धि–निवारयतीति नरकगतिगमनरोधस्तं, तथा गुणानां–क्षान्त्यादीनां संदोहः–समुदायो यत्र स तथा तं, तथा प्रकृष्टा वादिनः प्रवादिनः, निर्शब्दो निषेधार्थः, तैः प्रवादिभिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न क्षोभ्यते इति प्रवादिनिक्षोभ्यस्तं, अथवा प्रवादिभ्यो निर्गतः क्षोभः–कल्पनं यस्य स तथा, यद्वा प्रवादिनां निः–नितरां क्षोभो यस्मात्स तथा तं, सुयुक्तियुक्तत्वेन श्रीसर्वज्ञोक्तत्वेन च वादिभिः क्षोभयितुमशक्य इत्यर्थः, **'निहणिय'**त्ति निहतो–नाशं नीतो मन्मथयोधः–कामसुभटो येन स तथा, नवगुप्तिरचनारुचिरब्राह्मकवचाञ्चितत्वात् धर्मस्य, तं धर्मं शरणं प्रपन्नोऽहमिति ॥ ४७ ॥ अथ निधानोपमया धर्मस्य नमस्कारमाह–देवादिभासुरगतिहेतुत्वाद्भासुरः–शोभनो वर्णः–श्लाघागुणोत्कीर्त्तनरूपो यस्मात्स सुवर्णः, चारित्रवतामिन्द्रादिभिरपि श्लाघनीयत्वात्, तथा सुन्दरा-मनोज्ञा या क्रियाकलापविषया इच्छामिच्छेत्यादिदशविधसामाचार्यादिरूपा या रचना–विविधकल्पना सैव तया वाऽलङ्कारः–शोभाविशेषो यस्य स सुन्दररचनालङ्कारः, तथा गौरवं–महत्त्वं तद्धेतुत्वाद्धर्मोऽपि गौरवं तथा महानर्थो–माहात्म्यविशेषो यस्य स महार्थः, चारित्रवतामामर्षौषध्यादिमाहात्म्यविशेषसंभवात्, ततः पञ्चानामपि विशेषणानां कर्मधारयः, अथवा शोभनो वर्णः–श्लाघा तेन सुन्दरा या सामाचार्यादिरचना सैवालङ्कारो यस्येति एकमेव कार्यं, चारित्रपक्षेऽयं पूर्वोक्तोऽर्थः, श्रुतधर्मपक्षे तु रचना पदपङ्क्त्या भास्वरो ज्ञानादिभिः केवलिभिरुक्तत्वात् भास्वरः शोभना वर्णाः-अक्षराणि तेषां तथा सुन्दरा या विरचना तस्या योऽलङ्कारो–द्वात्रिंशत्सूत्रदोषपरिहारेणाष्टगुणधारणेन च शोभाविशेषः तस्माद् यद्गौरवं–गुरुत्वं अनन्तार्थवादिरूपं तेन महानर्थः–आधिक्यं पूजातिशयो वा यस्य स तथा, ततो विशेषणद्वयकर्मधारयः, अथवा भासुरेति वर्णविशेषणं कार्यं, यद्वा भासुरसुवर्णसुन्दररचनालंकारेण गौरवं–गुरुत्वं यस्य स तथा, महार्थमिति पृथक्कृत्वा समस्यते, निधिपक्षे पुनर्भासुरं–दीप्तिमत् सुवर्णं–कनकं सुन्दराणि यानि रत्नानि अलङ्कारा–हाराद्याभरणविशेषास्तै गौरवं–सम्पूर्णता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥४१--४८॥ दीप अनुक्रम [४१-४८]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२४/वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[१] “चतु:शरण” मूलं एवं विजयविमलगणि कृता अवचूर्णि:

तेन महार्घो–बहुमूल्यः, ‘दोगच्चि’ति चारित्रधर्मपक्षे दुष्टा गतिर्दुर्गतिः–कुदेवत्वकुमानुषत्वतिर्यग्नरकलक्षणा तस्या दुर्गतेर्भावो दौर्गत्यं, श्रुतधर्मपक्षे तु गत्यर्था ज्ञानार्था धातवः अतो गतिः–ज्ञानं दुष्टा गतिः दुर्गतिः अज्ञानमित्यर्थः तद्धरतीति दौर्गत्यहरं, निधानपक्षे तु दुर्गतस्य–दरिद्रस्य भावो दौर्गत्यं तद्धरतीति दौर्गत्यहरं दारिद्र्यापहारकृदित्यर्थः, एवंविधनिधानोपमितं धर्मं श्रीजिनैः–श्रीसर्वज्ञैः देशितं–उपदिष्टं वन्दे–नमस्कुर्वेऽहमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

उक्तश्चतुःशरणरूपः प्रथमोऽधिकारः, अथ दुष्कृतगर्हारूपं द्वितीयमधिकारमाह—

चउसरणगमणसंचिअसुचरिअरोमंचअंचिअसरीरो ।
कयदुक्कडगरिहाअसुहकम्मक्खयकंखिरो भणइ ॥ ४९ ॥
इहभविअमन्नभविअं मिच्छत्तपवत्तणं जमहिगरणं ।
जिणपवयणपडिकुट्ठं दुट्ठं गरिहामि तं पावं ॥ ५० ॥
मिच्छत्ततमंधेणं अरिहंताइसु अवन्नवयणं जं ।
अन्नाणेण विरइअं इण्हिं गरिहामि तं पावं ॥ ५१ ॥
सुअधम्मसंघसाहुसु पावं पडिणीअयाइ जं रइअं ।
अन्नेसु अ पावेसु इण्हिं गरिहामि तं पावं ॥ ५२ ॥
अन्नेसु अ जीवेसु अ मित्तीकरणाइगोअरेसु कयं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ ‘दुष्कृतगर्हा’रूप अधिकारस्य वर्णनं क्रियते

परिआवणाइ दुक्खं इण्हिं गरिहामि तं पावं ॥ ५३ ॥
जं मणवयकाएहिं कयकारिअअणुमईहिं आयरिअं ।
धम्मविरुद्धमसुद्धं सव्वं गरिहामि तं पावं ॥ ५४ ॥

चतुःशरणगमनेन–चतुःशरणाङ्गीकारेण संचितं–राशीकृतं यत्सुचरितं–पुण्यं तेन योऽसौ रोमाञ्चो–रोमोल्लासस्तेनाञ्चितं–भूषितं शरीरं यस्य स तथा, चतुःशरणगमनार्जितसुकृतवशात् कंटकितगात्र इत्यर्थः, तथा कृतानि–इहभवे–ऽन्यभवे च विहितानि यानि दुष्कृतानि–पापकृत्यानि तेषां गर्हा–गुरुसमक्षं ‘हा दुट्ठु कय’मित्यादिनिन्दा तया योऽसौ अशुभकर्मक्षयः–पापकर्मापगमः तत्र कांक्षिरः–आकांक्षावान् भणति, दुष्कृतगर्हातो यः पापापगमो भवति तमात्मनः समभिलषन् एवं वक्ष्यमाणं वदतीत्यर्थः ॥ ४९ ॥ यच्च भणति तदाह–इह–अस्मिन् भवे यत्कृतं तदिहभविकं, अन्यस्मिन् भवे भवमन्यभविकं अतीतभविष्यद्भवसंभवमित्यर्थो, मिथ्यात्वप्रवर्त्तनं–कुतीर्थिकदानसन्मानतद्देवार्चनतच्चैत्यकारापणाद्यधिकरणं, अन्यदपि चाधिकरणं भवनारामतटाकादिकारणसधनुःखड्गादिशस्त्रयन्त्रगन्त्रीहलोदूखलशृङ्खलादिविधापनदानादिरूपं यत्कृतमिति शेषः, तथाऽन्यच्च जिनप्रवचने यत्प्रतिकुष्टं–प्रतिषिद्धं दुष्टं तत्पापं गर्हामि–जुगुप्सामीत्यर्थः ॥ ५० ॥ उक्ता सामान्येन दुष्कृतगर्हा, सम्प्रति विशेषेण तामाह–मिथ्यात्वमेव तमः–अन्धकारः तेनान्धस्तेन मिथ्यात्वतमोऽन्धेन, मिथ्यात्वशास्त्रोपहतभावचक्षुषा जीवेनेति शेषः, ‘अर्हदादिषु’ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायादिषु पूजाबहुमानाहेंषु ‘अवण्णवयणं जं’ति अवर्णवादवचनं–असद्दोषकथनं अवज्ञावचनं वा हीलारूपं यदज्ञानेन–विवेकशून्येन उक्तमिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषः, तथा विरचितं–कृतं कारितमनुमतं चातीतानागतवर्तमानकाले, यच्चान्यदपि जिनधर्मप्रत्यनीकत्ववितथप्ररूपणापरदेवधर्मस्थानादिरूपं, इदानीमवगतपरमार्थस्तत्पापं गर्हामि–निन्दामि गुरुसमक्षमालोचयामीत्यर्थः ॥ ५१ ॥ श्रुतं च धर्मश्च संघश्च साधवश्च श्रुतधर्मसंघसाधवः तेषु पापं–आशातनारूपं प्रत्यनीकतया–विद्विष्टभावेन यद्रचितं, तत्र श्रुतस्य–द्वादशांगरूपस्य तदध्येत्रध्यापकानामुपरि यदरुच्यबहुमानादि चिन्तनं 'अज्ञानमेव शोभन'मिति भणता पूर्वभवे **माषतुषस्येव** धर्मप्रत्यनीकता 'कविला इत्थंपि इहयंपी'ति भणतो मरीचेरिव संघप्रत्यनीकतां संमेतशैलयात्रागच्छत्श्रीसंघविलुण्टकानां **सगरसुतजीवपूर्वभवचौराणामिव** साधुप्रत्यनीकता **गजसुकुमालं** प्रति **सोमिलद्विजस्येव**, तथा सर्वेषां–श्रुतधर्मार्हदाचार्योपाध्यायसाधूनामुपरि प्रत्यनीकता **नमुचिदत्तगोशालकादीनामिव** ज्ञेया, तथाऽन्येष्वपि पापेषु–अष्टादशसु प्राणातिपातादिषु यत् किमपि पापं–जीवव्यपरोपणादिकं कृतं तदप्यधुना गर्हामीत्यर्थः ॥ ५२ ॥ यच्चोक्तं–'**अन्नेसु अ पावेसु**'त्ति तदेव व्यक्तीकर्तुमाह—अन्येष्वपि जीवेषु–तीर्थकरादिव्यतिरिक्तेषु एकेन्द्रियादिसर्वभेदभिन्नेषु मैत्रीकारुण्यमाध्यस्थ्यानि विधेयतया गोचरो–विषयो येषां ते तथा तेषु कृतं–निष्पादितं '**परिआवणाइ**'त्ति परितापनारूपमध्यपदग्रहणात्तुलादण्डन्यायेनाभिहतादिभिर्दशभिः पदैस्तेषु जीवेषु यत्किमपि दुःखं–कष्टं कृतमिदानीं तदपि पापं गर्हामि–जुगुप्साम्यालोचयामीतियावत् ॥ ५३ ॥ अथोपसंहारमाह—यत्किञ्चित् पापं कृत्यं मनोवाक्कायै रागद्वेषमोहाज्ञानवशात् कृतकारितानुमतिभिराचरितं–विहितं धर्मस्य–जिनधर्मस्य विरुद्धं–प्रतिकूलं अतएवाशुद्धं–सदोषं सर्व–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्तमपि तत्पापं गर्हामि–अपुनःकरणेनाङ्गीकरोमि–गुरुसन्निधावालोचयामि ॥ ५४ ॥ उक्तो दुष्कृतगर्हारूपो द्वितीयोऽधिकारः, अधुना सुकृतानुमोदनारूपं तृतीयाधिकारमाह—

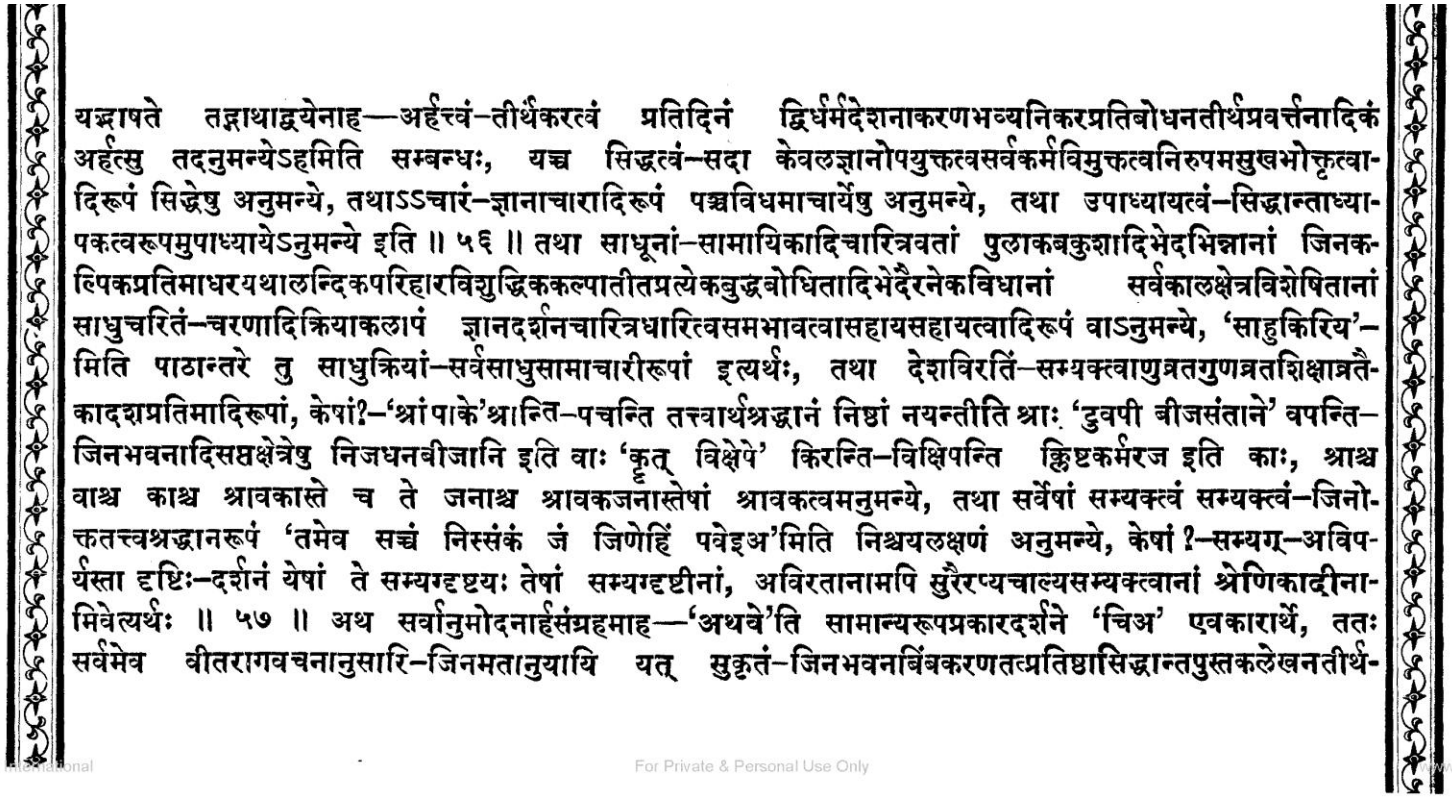
अह सो दुक्कडगरिहादलिउक्कडदुक्कडो फुडं भणई ।
सुकडाणुरायसमुइण्णपुण्णपुलयंकुरकरालो ॥ ५५ ॥
अरिहंतं अरिहंतेसु जं च सिद्धत्तणं च सिद्धेसु ।
आयारं आयरिए उवज्झायत्तं उवज्झाए ॥ ५६ ॥
साहूण साहुचरिअं देसविरइं च सावयजणाणं ।
अणुमन्ने सव्वेसिं सम्मत्तं सम्मदिट्ठीणं ॥ ५७ ॥
अहवा सव्वं चिय वीअरायवयणाणुसारि जं सुकडं ।
कालत्तएवि तिविहं अणुमोएमो तयं सव्वं ॥ ५८ ॥

'अथे'ति दुष्कृतगर्हानन्तरं सः–साध्वादिको जीवः, कथम्भूतः?–दुष्कृतगर्हया–दुश्चरित्रनिन्दनेन दलितानि–चूर्णीकृतानि उत्कटानि–प्रबलानि दुष्कृतानि–पापानि येन स तथा, दुष्कृतगर्हया प्रतिहतमहापातकनिकर इत्यर्थः, एवंविधः सन् स्फुटं यथा स्यादेवं भणति, पुनः स किंभूतः?–सुकृतानुरागेण–सुचरितबहुमानेन समुदीर्णाः–संजाताः पुण्यबन्धहेतुत्वात् पुण्याः–पवित्रा ये पुलकाङ्कुरा–रोमोद्गमविशेषाः तैः करालो–व्याप्तः कर्मवैरिणं प्रति भीषणो वा ॥ ५५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ 'सुकृत-अनुमोदना' रूप तृतीय-अधिकारस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक ॥५५--५८॥ दीप अनुक्रम [५५-५८]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२४/वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[१] "चतु:शरण" मूलं एवं विजयविमलगणि कृता अवचूर्णि:



यद्भाषते तद्गाथाद्वयेनाह—अर्हत्त्वं–तीर्थंकरत्वं प्रतिदिनं द्विर्धर्मदेशनाकरणभव्यनिकरप्रतिबोधनतीर्थप्रवर्त्तनादिकं अर्हत्सु तदनुमन्येऽहमिति सम्बन्धः, यच्च सिद्धत्वं–सदा केवलज्ञानोपयुक्तत्वसर्वकर्मविमुक्तत्वनिरुपमसुखभोक्तृत्वादिरूपं सिद्धेषु अनुमन्ये, तथाऽऽचारं–ज्ञानाचारादिरूपं पञ्चविधमाचार्येषु अनुमन्ये, तथा उपाध्यायत्वं–सिद्धान्ताध्यापकत्वरूपमुपाध्यायेऽनुमन्ये इति ॥ ५६ ॥ तथा साधूनां–सामायिकादिचारित्रवतां पुलाकबकुशादिभेदभिन्नानां जिनकल्पिकप्रतिमाधरयथालन्दिकपरिहारविशुद्धिककल्पातीतप्रत्येकबुद्धबोधितादिभेदैरनेकविधानां सर्वकालक्षेत्रविशेषितानां साधुचरितं–चरणादिक्रियाकलापं ज्ञानदर्शनचारित्रधारित्वसमभावत्वासहायसहायत्वादिरूपं वाऽनुमन्ये, 'साहुकिरिय'–मिति पाठान्तरे तु साधुक्रियां–सर्वसाधुसामाचारीरूपां इत्यर्थः, तथा देशविरतिं–सम्यक्त्वाणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रतैकादशप्रतिमादिरूपां, केषां?–'श्रांपाके'श्रान्ति–पचन्ति तत्त्वार्थश्रद्धानं निष्ठां नयन्तीति श्राः 'ढुवपी बीजसंताने' वपन्ति–जिनभवनादिसप्तक्षेत्रेषु निजधनबीजानि इति वाः 'कृत् विक्षेपे' किरन्ति–विक्षिपन्ति क्लिष्टकर्मरज इति काः, श्राश्च वाश्च काश्च श्रावकास्ते च ते जनाश्च श्रावकजनास्तेषां श्रावकत्वमनुमन्ये, तथा सर्वेषां सम्यक्त्वं सम्यक्त्वं–जिनोक्ततत्त्वश्रद्धानरूपं 'तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइअ'मिति निश्चयलक्षणं अनुमन्ये, केषां?–सम्यग्–अविपर्यस्ता दृष्टिः–दर्शनं येषां ते सम्यग्दृष्टयः तेषां सम्यग्दृष्टीनां, अविरतानामपि सुरैरप्यचाल्यसम्यक्त्वानां श्रेणिकादीनामिवेत्यर्थः ॥ ५७ ॥ अथ सर्वानुमोदनार्हसंग्रहमाह—'अथवे'ति सामान्यरूपप्रकारदर्शने 'चिअ' एवकारार्थे, ततः सर्वमेव वीतरागवचनानुसारि–जिनमतानुयायि यत् सुकृतं–जिनभवनबिंबकरणतत्प्रतिष्ठासिद्धान्तपुस्तकलेखनतीर्थ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यात्राश्रीसंघवात्सल्यजिनशासनप्रभावनाज्ञानाद्युपष्टंभधर्मसान्निध्यक्षमामार्दवसंवेगादिरूपं मिथ्यादृक्संबन्ध्यपि मार्गानुयायि कृत्यं कालत्रयेऽपि त्रिविधं मनोवाक्कायैः कृतं कारितमनुमतं च यदभूत् भवति भविष्यति चेति 'तकत्' इति तत्शब्दात् 'त्यादिसर्वादेः स्वरेष्वंत्या' (श्री सि. अ. ७ पा. ३ सू. २९) दिति सूत्रेण स्वार्थेऽकप्रत्यये रूपं, तदित्यर्थः, तत् सर्वं–निरवशेषमनुमोदयामः–अनुमन्यामहे, हर्षगोचरतां प्रापयाम इत्यर्थः, बहुवचनं चात्र पूर्वोक्तचतुःशरणादिप्रतिपत्त्या उपार्जितपुण्यसंभारत्वेन स्वात्मनि बहुमानसूचनार्थं ॥ ५८ ॥ तदेवमुक्तः सुकृतानुमोदनारूपस्तृतीयोऽधिकारः, अथ चतुःशरणादिकृत्ये यत्फलं स्यात्तद्गाथाद्वयेनाह—

सुहपरिणामो निच्चं चउसरणगमाइ आयरं जीवो ।
कुसलपयडीउ बन्धइ बद्धाउ सुहाणुबन्धाओ ॥ ५९ ॥
मन्दणुभावा बद्धा तिव्वणुभावाउ कुणइ ता चेव ।
असुहाउ निरणुबंधाउ कुणइ तिव्वाउ मन्दाओ ॥ ६० ॥

शुभपरिणामः–प्रशस्तमनोऽध्यवसायः सन् नित्यं–सदैव चतुःशरणगमनादि–चतुःशरणगमनदुष्कृतगर्हासुकृतानुमोदनान्याचरन्–कुर्वन् साधुप्रभृतिको जीवः कुशलं–पुण्यं तत्प्रकृतीः 'साउच्चगोअमणुदुगे'त्यादिगाथोक्ताः द्विचत्वारिंशत्संख्याः बध्नाति, शुभाध्यवसायबध्यमानत्वात्तासां, तथा ताश्च प्रकृतीर्बद्धाः सतीः शुभाध्यवसायवशाच्छुभोऽनुबन्धः–उत्तरकालफलविपाकरूपो यासां ताः शुभानुबन्धाः एवंविधाः करोतीत्यर्थः, तथा ता एव शुभप्रकृतीः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतु:शरणं, दुष्कृतगर्हा, सुकृत-अनुमोदनाया: फ़लम् प्रकाश्यते

प्रत सूत्रांक ॥५९--६०॥ दीप अनुक्रम [५९-६०]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२४/वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[१] "चतु:शरण" मूलं एवं विजयविमलगणि कृता अवचूर्णि:

प्राग्मन्दानुभावाद् बद्धाः–स्वल्पशुभपरिणामवशान्मन्दरसा बद्धा विशिष्टतरशुभाध्यवसायवशात्तीव्रोऽनुभावो–रसो यासां तास्तीव्रानुभावाः—अत्युत्कटरसाः करोति, उपलक्षणादल्पकालस्थितीः दीर्घकालस्थितीः करोति अल्पप्रदेशका बहुप्रदेशकाश्च करोतीत्यपि ज्ञेयं, तथा 'असुहाउ'त्ति याश्चाशुभा 'नाणंतरायदसग'मित्यादिगाथोक्ता द्व्यशीतिसंख्याः पूर्वं बद्धाः स्युस्ता निर्गतोऽनुबन्धः–उत्तरकालफलविपाकरूपो याभ्यस्ताः निरनुबन्धाः एवंविधाः करोति, तद्विपाकजनितं दुःखमुत्तरकाले तस्य न भवतीत्यर्थः, तथा ता एव यास्तीव्राः–तीव्ररसाः प्राक् तीव्राशुभपरिणामेन बद्धास्ता मन्दाः–मन्दरसाः करोति चतुःशरणगमनादिरूपशुभाध्यवसायबलाद्, अत्रापि उपलक्षणाद्दीर्घकालस्थितीरल्पकालस्थितीर्बहुप्रदेशका अल्पप्रदेशकाश्च करोतीत्यपि ज्ञेयं, शुभपरिणामवशादशुभप्रकृतीनां स्थितिरसप्रदेशानां ह्राससम्भवात्, वन्दनकदानात् श्रीविष्णोरिवेत्यर्थः ॥ ६० ॥ उक्तं चतुःशरणप्रतिपत्त्यादेर्महत्फलं, अत एव तदवश्यं कर्त्तव्यमिति दर्शयति—

ता एयं कायव्वं बुहेहि णिच्चंपि संकिलेसम्मि ।
होइ तिकालं सम्मं असंकिलेसंमि सुकयफलं ॥ ६१ ॥

'ता'इति तस्मात्कारणात् 'एयं'ति एतदनन्तरोक्तं चतुःशरणादि कर्तव्यमिति–विधेयं विबुधैः–अवगततत्त्वैर्नित्यमपि–सततमपि, कस्मिन्?–संक्लेशे–रोगाद्यापद्रूपे, एतेन यथा कर्षकैः शाल्यादिबीजं शस्यनिष्पत्तये उप्तमपि पलालाद्यानुषङ्गिकं जनयति एवं चतुःशरणाद्यपि सततं कर्मनिर्जरायै क्रियमाणमिहलोकेऽपि रोगाद्युपसर्गोपशान्तिं तनोतीति दर्शितं, तथा असंक्लेशो–रोगाद्यभावस्तस्मिन् चतुःशरणादि भवति त्रिकालं–सन्ध्यात्रयरूपे काले विधीयमान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिति शेषः, सम्यग्मनोवाक्कायोपयुक्ततया, कथं भवतीत्याह—'सुगईफलं'ति शोभना गतिः सुगतिः–स्वर्गापवर्गरूपा सैव फलं यस्य तत्सुगतिफलं, स्वर्गमोक्षप्राप्तिफलमित्यर्थः, सम्यक्चतुःशरणादिकृतां साधूनामुत्कर्षतो मोक्षं यावत् श्राद्धानामच्युतं यावच्च गतेः श्रीसिद्धान्ते प्रोक्तत्वात्, 'सुकयफल'मिति पाठे तु सुकृतं–पुण्यं शुभानुबन्धि तत्प्राप्तिः फलं भवतीत्यर्थः ॥ ६१ ॥ अथ योऽतीव दुर्लभां मनुष्यत्वादिसामग्रीं प्राप्यापि चतुःशरणादि प्रमादादिना न कृतवान् तं शोचयति—

चउरंगो जिणधम्मो न कओ चउरंगसरणमवि न कयं ।
चउरंगभवच्छेओ न कओ हा हारिओ जम्मो ॥ ६२ ॥

चत्वारि–दानशीलतपोभावनारूपाणि अङ्गानि यस्य स चतुरङ्गो–दानादिचतुष्प्रकार इत्यर्थः जिनधर्मः–अर्हद्धर्मो न कृतो–न विहितः आलस्यमोहादिभिः कारणैर्विगतविवेकत्वात्, तथा न केवलं चतुरङ्गधर्मो न कृतः, किन्तु चतुरङ्गं शरणमपि–अर्हत्सिद्धसाधुधर्मरूपमपि न कृतं, तथा चतुरङ्गभवस्य–नरकतिर्यग्नरामरलक्षणस्य छेदो–विनाशो विशिष्टचारित्रतपश्चरणादिना न कृतो येनेत्यध्याहार्यं तेन 'हा' इति खेदे हारितं–वृथा नीतं जन्म–मनुष्यभवः, प्राकृतत्वात्पुंस्त्वं, तस्य हारणं च अकृतधर्मस्य जीवस्य पुनरतिशयेन मानुषस्य दुष्प्रापत्वाद् अथवा स एव प्रमादादिना पूर्वमनाराधितजिनधर्मा अन्त्यसमये संजातविवेकः स्वयमात्मानं शोचयति–चतुरङ्गो जिनधर्मो मया न कृत इत्यादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हा मया हारितं–निष्फलीकृतं मनुष्यजन्म, देवा अपि विषयप्रमादादकृतजिनजन्मोत्सवादिपुण्याश्चयवनसमये अनेनैव प्रकारेण खेदं कुर्वन्ति ॥ ६२ ॥ अथ प्रस्तुताध्ययनोपसंहारमाह—

इइ जीव पमायमहारिवीरभद्दन्तमेवमज्झयणं ।
झाएसु तिसंझमवंझकारणं निव्वुइसुहाणं ॥ ६३ ॥

'इति'उक्तप्रकारेण हे जीव!–हे आत्मन्! एतदध्ययनं ध्याय–स्मर त्रिसन्ध्यं–संध्यात्रये इति संबन्धः, कथंभूतं?–'पमायमहारिवीरं'ति प्रमादा एव महान्तोऽरयः–शत्रवः, चतुर्दशपूर्वधरादीनामपि निगोदादिदुर्गतिपातहेतुत्वात्प्रमादस्य, तेषां प्रमादमहारीणां विनाशाय वीरवद्वीरं सुभटकल्पमित्यर्थः, प्राकृतत्वादनुस्वारलोपः, पुनः कथंभूतं?–भद्रमन्ते यस्मात्तद्भद्रान्तं–मोक्षप्रापकमित्यर्थः, अथवा हे वीर हे भद्रेति संबोधनपदद्वयं जीवस्योत्साहवृद्धिहेतुः, 'अंत'मिति जीवितान्तं यावदेवैतदध्ययनं ध्यायेत्यर्थः, पुनः किंभूतं?–अवन्ध्यकारणं–सफलकारणं, केषां?–निर्वृत्तिः–मोक्षस्तत्सुखानामिति, 'जिअ'इति पाठे तु जितप्रमादमहारिपुर्योऽसौ वीरभद्रः साधुः श्रीवीरसत्कचतुर्दशसहस्रसाधुमध्यवर्ती तस्येदं जितं तदेतदध्ययनं ध्यायेत्यादि, एवं शास्त्रकर्तुः समासगर्भमभिधानमुक्तं, अस्य चाध्ययनस्य वीरभद्रसाधुकृतत्वज्ञापनेन यस्य जिनस्य यावन्तो मुनयो वैनयिक्यौत्पत्तिक्यादिबुद्धिमन्तः प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्त एव प्रकीर्णकानि अपि तावन्ति भवन्तीति ज्ञापितं भवतीति गाथार्थः ॥ ६३ ॥ इतिश्रीचतुःशरणप्रकीर्णकावचूर्णिरियं सम्पूर्णा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"तन्दुलवैचारिक" मूलं एवं अवचूर्णि:

[मूलं एवं विजयविमल गणि विवृत्ता अवचूर्णि:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

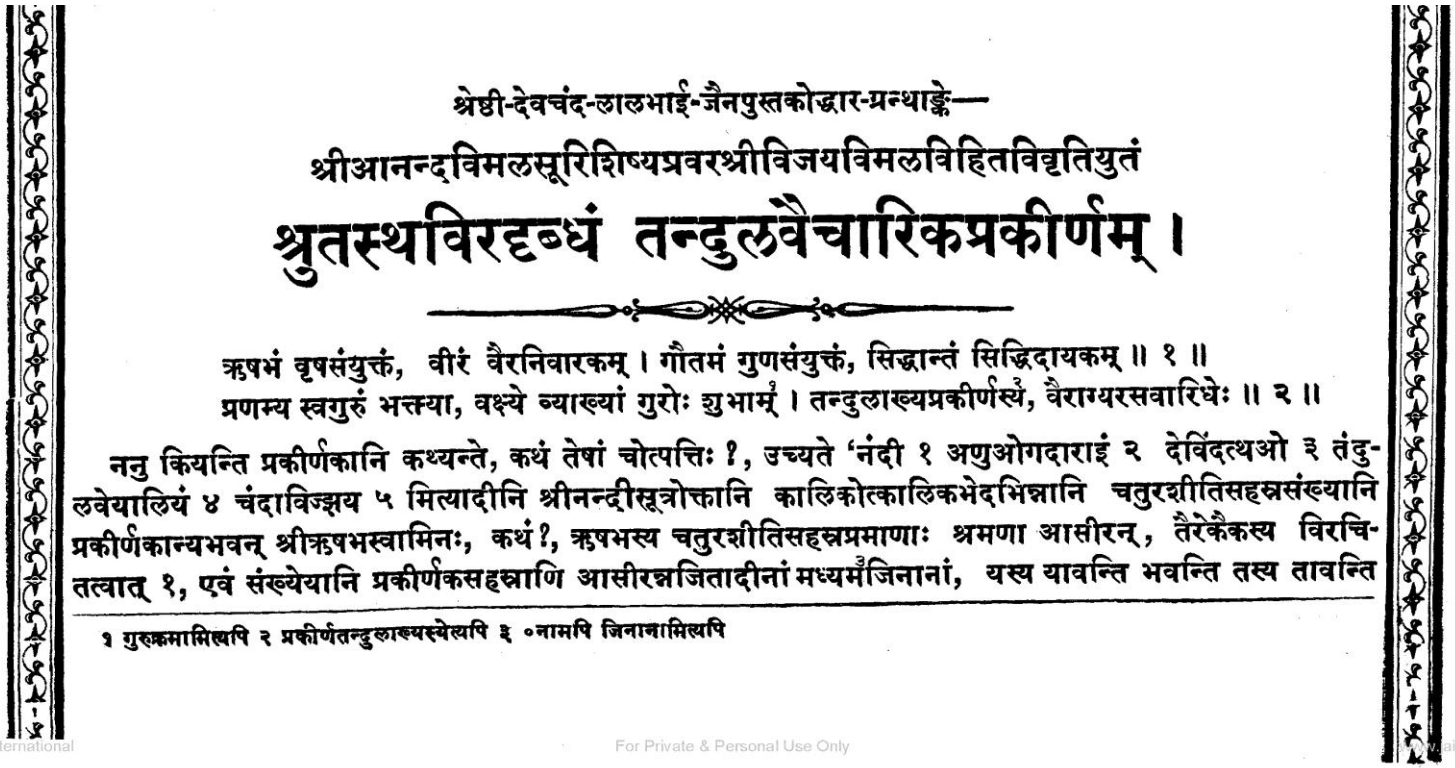
पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-40

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]



श्रेष्ठी-देवचंद-लालभाई-जैनपुस्तकोद्धार-ग्रन्थाङ्के—

श्रीआनन्दविमलसूरिशिष्यप्रवरश्रीविजयविमलविहितविवृतियुतं

श्रुतस्थविरदृब्धं तन्दुलवैचारिकप्रकीर्णम् ।

ऋषभं वृषसंयुक्तं, वीरं वैरनिवारकम् । गौतमं गुणसंयुक्तं, सिद्धान्तं सिद्धिदायकम् ॥ १ ॥
प्रणम्य स्वगुरुं भक्त्या, वक्ष्ये व्याख्यां गुरोः शुभाम्[१] । तन्दुलाख्यप्रकीर्णस्य[२], वैराग्यरसवारिधेः ॥ २ ॥

ननु कियन्ति प्रकीर्णकानि कथ्यन्ते, कथं तेषां चोत्पत्तिः ?, उच्यते ‘नंदी १ अणुओगदाराइं २ देविंदत्थओ ३ तंदुलवेयालियं ४ चंदाविज्झय ५ मित्यादीनि श्रीनन्दीसूत्रोक्तानि कालिकोत्कालिकभेदभिन्नानि चतुरशीतिसहस्रसंख्यानि प्रकीर्णकान्यभवन् श्रीऋषभस्वामिनः, कथं ?, ऋषभस्य चतुरशीतिसहस्रप्रमाणाः श्रमणा आसीरन्, तैरेकैकस्य विरचितत्वात् १, एवं संख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि आसीरन्नजितादीनां मध्यमजिनानां[३], यस्य यावन्ति भवन्ति तस्य तावन्ति

१ गुरुक्रमामित्यपि २ प्रकीर्णतन्दुलाख्यस्येत्यपि ३ ०नामपि जिनानामित्यपि

तं. वै. प्र. १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	वृत्तिकार-कृत् मङ्गलं एवं प्रकीर्णक्स्य प्रस्तावना

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक ||१||

दीप अनुक्रम [१]

तं. वै. प्र. ॥ १ ॥

प्रथमानुयोगतो वेदितव्यानि २, चतुर्दशप्रकीर्णकसहस्राणि आसीरन् वर्द्धमानस्वामिनः ३ इति, तेषां मध्ये श्रीवर्द्धमानस्वामिस्वहस्तदीक्षितेनैकेन साधुना विरचितमिदं तन्दुलवैचारिकं प्रकीर्णकं, तस्य व्याख्या क्रियत इति—

निज्जरियजरामरणं वंदित्ता जिणवरं महावीरं । वुच्छं पयण्णयमिणं तंदुलवेयालियं नाम ॥ १ ॥

‘निज्जरिय’० निर्जरितं–सर्वथा क्षयं नीतं जरा च–वृद्धत्वं मरणं च–पञ्चत्वं जरामरणं यद्वा जरया–वृद्धभावेन जरायां-वृद्धभावे वा मरणं जरामरणं येन स निर्जरितजरामरणस्तं, वन्दित्वा-कायवाङ्मनोभिः नत्वा जिनाः–राग-द्वेषादिजयनशीलाः सामान्यकेवलिनस्तेषु तेभ्यो वा वरः–प्रधानोऽतिशयापेक्षया श्रेष्ठो जिनवरस्तं जिनवरं, अतिशयस्वरूपं समवायाङ्गोक्तं यथा–‘चोत्तीस बुद्धातिसेसा पं० तं०–अवट्ठिए केसमंसुरोमणहे १ निरामया णिरुवलेवा गायलट्ठी, अयं जन्म-प्रत्ययः २ गोखीरपंडुरे मंससोणिए, जन्मप्रत्ययः ३ पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे, जन्मप्रत्ययः ४ पच्छण्णे आहारणीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा, जन्मप्रत्ययः ५ आगासगयं चक्कं ६ आगासगयं छत्तं ७ आगासियाओ सेयवरचामराओ ८ आगा-सफालियमयं सपायपीढं सीहासणं–आकाशमिव–यदत्यन्तमच्छं स्फटिकं तन्मयं ९ आगासगओ कुडभीसहस्सपरिमंडियाभि-रामो इंदज्झओ पुरओ गच्छति १० जत्थ जत्थवि य णं अरहंता भगवंतो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थवि य णं तक्-खणादेव संछण्णपत्तपुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडाओ असोगवरपायवो अभिसंजायति ११ ईसिं

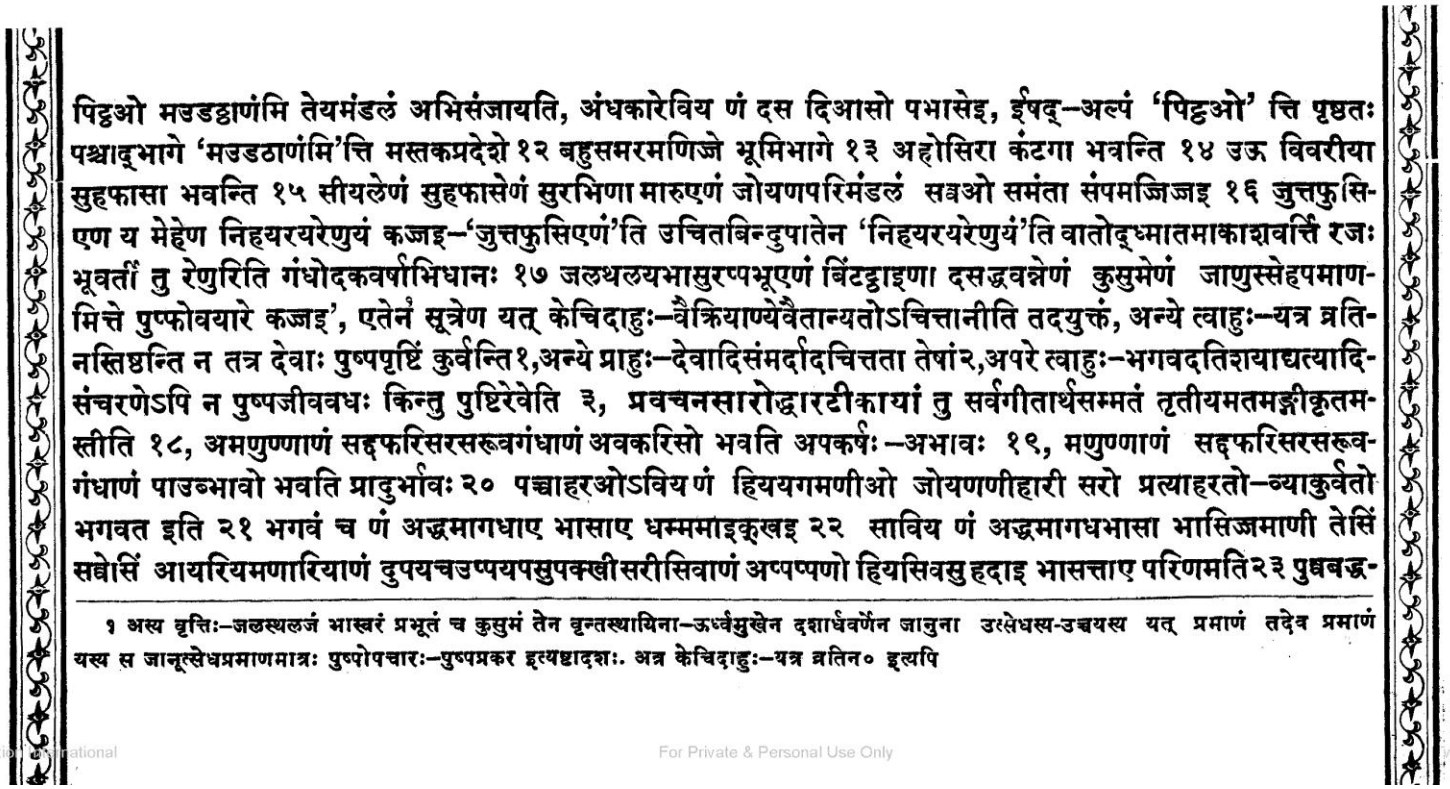
१ तानि च तीर्थस्वामिस्वहस्तदीक्षितसाधुविरचितानि वा तीर्थकरतीर्थसाधुविरचितानि वा प्रत्येकबुद्धविरचितानिवेति, अत्रादौ ग्रन्थकारो मङ्गलाद्यभिधानाय गाथामाहेत्यपि २ स्तुतिं विधायेत्यपि

मङ्गलादि गा. १

॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् महावीरस्तुति:, भगवत: ३४ अतिशयानां वर्णनं



पिट्ठओ मउडट्ठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायति, अंधकारेविय णं दस दिआसो पभासेइ, ईषद्–अल्पं 'पिट्ठओ' त्ति पृष्ठतः पश्चाद्भागे 'मउडठाणंमि'त्ति मस्तकप्रदेशे १२ बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे १३ अहोसिरा कंटगा भवन्ति १४ उऊ विवरीया सुहफासा भवन्ति १५ सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ १६ जुत्तफुसिएण य मेहेण निहयरयरेणुयं कज्जइ–'जुत्तफुसिएणं'ति उचितबिन्दुपातेन 'निहयरयरेणुयं'ति वातोद्धमातमाकाशवर्त्ति रजः भूवर्तीं तु रेणुरिति गंधोदकवर्षाभिधानः १७ जलथलयभासुरप्पभूएणं बिंटट्ठाइणा दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहपमाणमित्ते पुप्फोवयारे कज्जइ', एतेनं सूत्रेण यत् केचिदाहुः–वैक्रियाण्येवैतान्यतोऽचित्तानीति तदयुक्तं, अन्ये त्वाहुः–यत्र व्रतिनस्तिष्ठन्ति न तत्र देवाः पुष्पवृष्टिं कुर्वन्ति१,अन्ये प्राहुः–देवादिसंमर्दादचित्तता तेषां२,अपरे त्वाहुः–भगवदतिशयाद्यत्यादिसंचरणेऽपि न पुष्पजीववधः किन्तु पुष्टिरेवेति ३, प्रवचनसारोद्धारटीकायां तु सर्वगीतार्थसम्मतं तृतीयमतमङ्गीकृतमस्तीति १८, अमणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवति अपकर्षः–अभावः १९, मणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भावो भवति प्रादुर्भावः २० पच्चाहरओऽवियणं हिययगमणीओ जोयणणीहारी सरो प्रत्याहरतो–व्याकुर्वतो भगवत इति २१ भगवं च णं अद्धमागधाए भासाए धम्ममाइक्खइ २२ साविय णं अद्धमागधभासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आयरियमणारियाणं दुपयचउप्पयपसुपक्खीसरीसिवाणं अप्पप्पणो हियसिवसुहदाइ भासत्ताए परिणमति२३ पुव्वबद्ध-

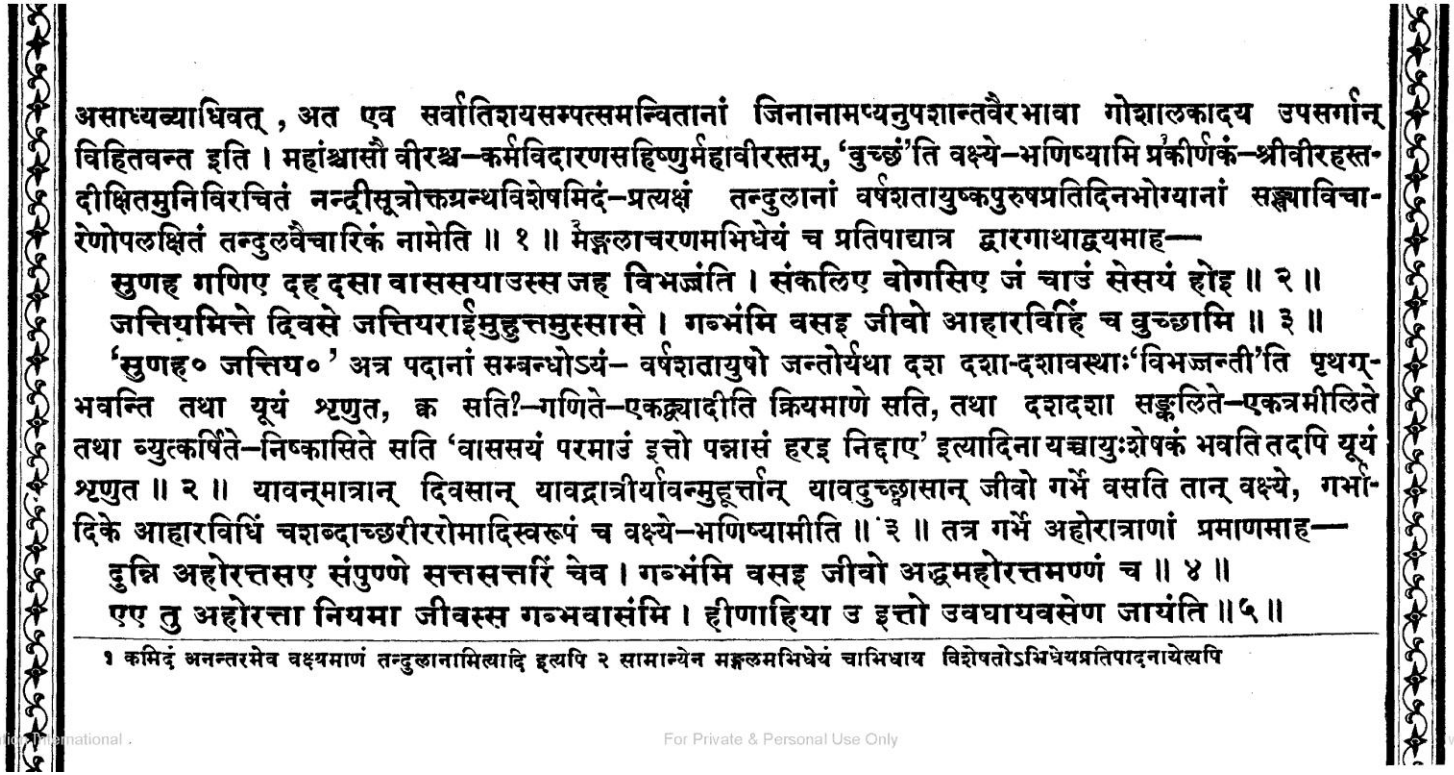
१ अस्य वृत्तिः–जलस्थलजं भास्वरं प्रभूतं च कुसुमं तेन वृन्तस्थायिना–ऊर्ध्वमुखेन दशार्धवर्णेन जानुना उत्सेधस्य-उच्चयस्य यत् प्रमाणं तदेव प्रमाणं यस्य स जानूत्सेधप्रमाणमात्रः पुष्पोपचारः–पुष्पप्रकर इत्यष्टादशः. अत्र केचिदाहुः–यत्र व्रतिन० इत्यपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेराविय णं देवासुरणागसुवन्नजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति २४ अण्णउत्थियपावयणीविय णं आगया वंदंति २५ आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा भवंति २६ जओ जओविय णं अरहंता भगवंतो विहरंति तओ तओविय णं जोयणपणवीसाएणं ईती ण भवति २७ मारी न भवति २८ सचक्कं न भवति २९ परचक्कं न भवति ३० अइवुट्ठी न भवति ३१ अणावुट्ठी न भवति ३२ दुभिक्खं न भवति ३३ पुव्वुप्पण्णा-विय णं उप्पातिया वाही खिप्पामेव उवसमंति ३४ । अत्र च 'पच्चाहरउ' इत आरभ्य १४येऽभिहितास्ते प्रभामण्डलं च कर्मक्षयकृता अतिशेषाः, शेषा भवप्रत्ययेभ्योऽन्ये देवकृता इति । ननु प्राकाराम्बुरुहाद्यतिशया देवकृता अपि चतुस्त्रिंशद्बहिः कथम्?, उच्यते, चतुस्त्रिंशत् किल नियता अन्ये त्वनियता इति, इदं च किल न स्वबुद्ध्या प्रोच्यते, यदुक्तं श्रीजिनभद्रक्षमाश्रमणैः विशेषणवत्यां–"होऊण व देवकया चउतीसाइसयबाहिरा कीस?। पागारंबुरुहाई अणण्णसरिसावि लोगम्मि ॥१॥ चोत्तीसं किर णियया ते गहिया सेसया अणियया त्ति। सुत्तंमि ण संगहिया जह लद्धीओ विसेसाओ ॥२॥" इति, तथा ननु यत्र तीर्थकरा विहरन्ति तत्र देशे पञ्चविंशतियोजनानामादेशान्तरेण द्वादशानां मध्ये तीर्थकरातिशयात् न वैरादयोऽनर्था भवन्तीत्यत्रोक्तं तत्कथं श्रीमन्महावीरे भगवति पुरिमताले नगरे व्यवस्थित एवाभग्नसेनस्य विपाकश्रुताङ्गवर्णितो व्यतिकरः सम्पन्न इति?, अत्रोच्यते, सर्वमिदमर्थानर्थजातं प्राणिनां स्वकृतकर्म्मणः सकाशादुपजायते, कर्म तु द्वेधा–सोपक्रमं निरुपक्रमं च, तत्र यानि वैरादीनि सोपक्रमकर्मसम्पाद्यानि तान्येव तीर्थकरातिशयादुपशाम्यन्ति, सदोषधात् साध्यव्याधिवत्, यानि तु निरुपक्रमकर्मसम्पाद्यानि तानि अवश्यं विपाकतो वेद्यानि नोपक्रमकरणविषयानि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:



असाध्यव्याधिवत् , अत एव सर्वातिशयसम्पत्समन्वितानां जिनानामप्यनुपशान्तवैरभावा गोशालकादय उपसर्गान् विहितवन्त इति । महांश्चासौ वीरश्च–कर्मविदारणसहिष्णुर्महावीरस्तम्, ‘वुच्छं’ति वक्ष्ये–भणिष्यामि प्रकीर्णकं–श्रीवीरहस्तदीक्षितमुनिविरचितं नन्दीसूत्रोक्तग्रन्थविशेषमिदं–प्रत्यक्षं तन्दुलानां वर्षशतायुष्कपुरुषप्रतिदिनभोग्यानां सङ्ख्याविचारेणोपलक्षितं तन्दुलवैचारिकं नामेति ॥ १ ॥ मङ्गलाचरणमभिधेयं च प्रतिपाद्यात्र द्वारगाथाद्वयमाह—

सुणह गणिए दह दसा वाससयाउस्स जह विभज्जंति । संकलिए वोगसिए जं चाउं सेसयं होइ ॥ २ ॥
जत्तियमित्ते दिवसे जत्तियराईमुहुत्तमुस्सासे । गब्भंमि वसइ जीवो आहारविहिं च वुच्छामि ॥ ३ ॥

‘सुणह० जत्तिय०’ अत्र पदानां सम्बन्धोऽयं– वर्षशतायुषो जन्तोर्यथा दश दशा-दशावस्थाः‘विभज्जन्ती’ति पृथग्भवन्ति तथा यूयं शृणुत, क्व सति?–गणिते–एकद्व्यादीति क्रियमाणे सति, तथा दशदशा सङ्कलिते–एकत्रमीलिते तथा व्युत्कर्षिते–निष्कासिते सति ‘वाससयं परमाउं इत्तो पन्नासं हरइ निद्दाए’ इत्यादिना यच्चायुःशेषकं भवति तदपि यूयं शृणुत ॥ २ ॥ यावन्मात्रान् दिवसान् यावद्रात्रीर्यावन्मुहूर्त्तान् यावदुच्छ्वासान् जीवो गर्भे वसति तान् वक्ष्ये, गर्भादिके आहारविधिं चशब्दाच्छरीररोमादिस्वरूपं च वक्ष्ये–भणिष्यामीति ॥ ३ ॥ तत्र गर्भे अहोरात्राणां प्रमाणमाह—

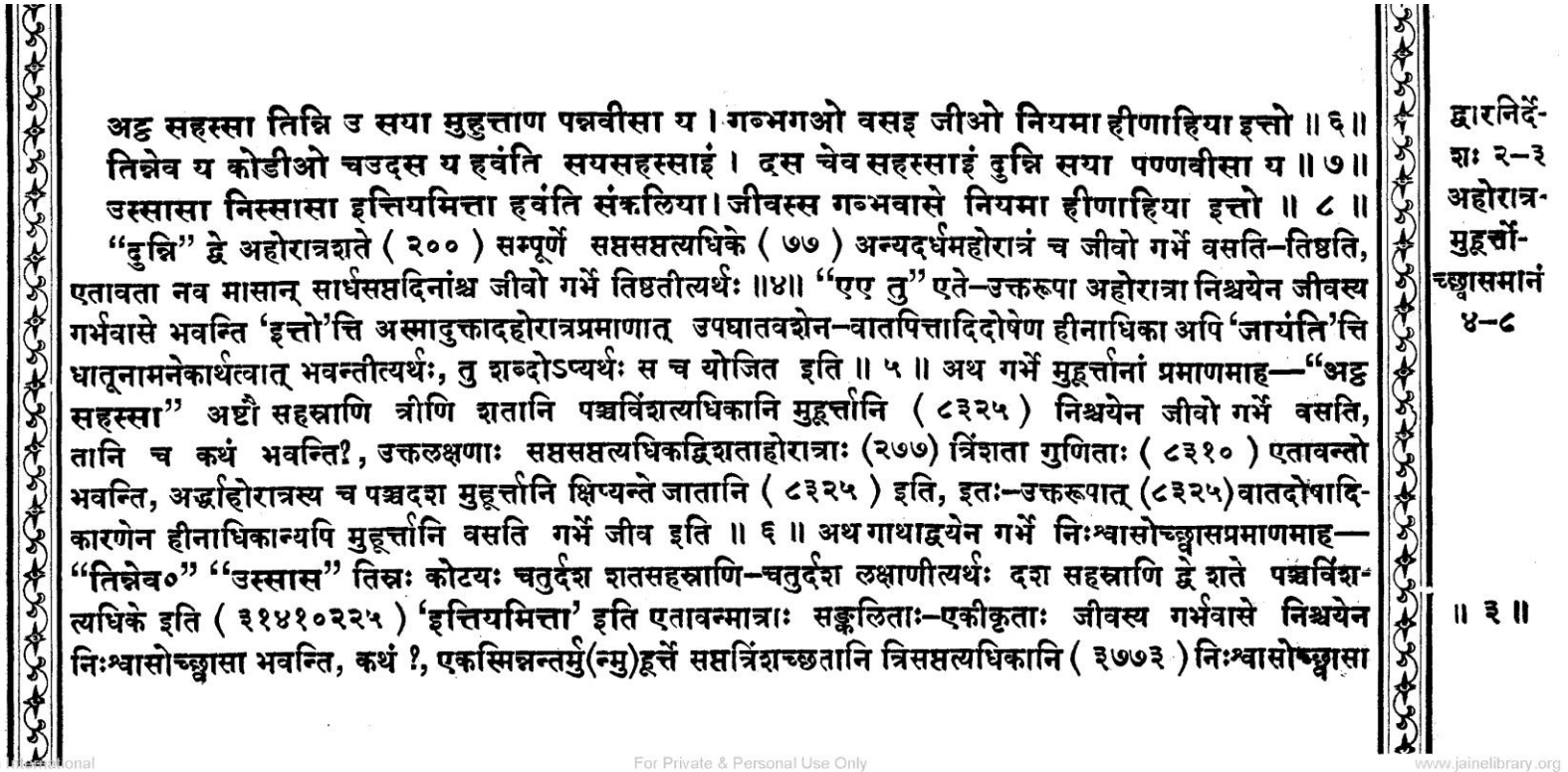
दुन्नि अहोरत्तसए संपुण्णे सत्तसत्तरिं चेव । गब्भंमि वसइ जीवो अद्धमहोरत्तमण्णं च ॥ ४ ॥
एए तु अहोरत्ता नियमा जीवस्स गब्भवासंमि । हीणाहिया उ इत्तो उवघायवसेण जायंति ॥५ ॥

१ कमिदं अनन्तरमेव वक्ष्यमाणं तन्दुलानामित्यादि इत्यपि २ सामान्येन मङ्गलमभिधेयं चाभिधाय विशेषतोऽभिधेयप्रतिपादनायेत्यपि

Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	‘तन्दुलवैचारिक’ शब्दस्य व्याख्या,

| प्रत सूत्रांक ॥४-८॥ दीप अनुक्रम [४-८] | मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:



तं. वै. प्र. ॥ ३ ॥

अट्ठ सहस्सा तिन्नि उ सया मुहुत्ताण पन्नवीसा य । गब्भगओ वसइ जीओ नियमा हीणाहिया इत्तो ॥ ६ ॥
तिन्नेव य कोडीओ चउदस य हवंति सयसहस्साइं । दस चेव सहस्साइं दुन्नि सया पण्णवीसा य ॥ ७ ॥
उस्सासा निस्सासा इत्तियमित्ता हवंति संकलिया । जीवस्स गब्भवासे नियमा हीणाहिया इत्तो ॥ ८ ॥

“दुन्नि” द्वे अहोरात्रशते (२००) सम्पूर्णे सप्तसप्तत्यधिके (७७) अन्यदर्धमहोरात्रं च जीवो गर्भे वसति–तिष्ठति, एतावता नव मासान् सार्धसप्तदिनांश्च जीवो गर्भे तिष्ठतीत्यर्थः ॥४॥ “एए तु” एते–उक्तरूपा अहोरात्रा निश्चयेन जीवस्य गर्भवासे भवन्ति ‘इत्तो’त्ति अस्मादुक्तादहोरात्रप्रमाणात् उपघातवशेन–वातपित्तादिदोषेण हीनाधिका अपि ‘जायंति’त्ति धातूनामनेकार्थत्वात् भवन्तीत्यर्थः, तु शब्दोऽप्यर्थः स च योजित इति ॥ ५ ॥ अथ गर्भे मुहूर्त्तानां प्रमाणमाह—“अट्ठ सहस्सा” अष्टौ सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानि (८३२५) निश्चयेन जीवो गर्भे वसति, तानि च कथं भवन्ति?, उक्तलक्षणाः सप्तसप्तत्यधिकद्विशताहोरात्राः (२७७) त्रिंशता गुणिताः (८३१०) एतावन्तो भवन्ति, अर्द्धाहोरात्रस्य च पञ्चदश मुहूर्त्तानि क्षिप्यन्ते जातानि (८३२५) इति, इतः–उक्तरूपात् (८३२५) वातदोषादिकारणेन हीनाधिकान्यपि मुहूर्त्तानि वसति गर्भे जीव इति ॥ ६ ॥ अथ गाथाद्वयेन गर्भे निःश्वासोच्छ्वासप्रमाणमाह—“तिन्नेव०” “उस्सास” तिस्रः कोटयः चतुर्दश शतसहस्राणि–चतुर्दश लक्षाणीत्यर्थः दश सहस्राणि द्वे शते पञ्चविंशत्यधिके इति (३१४१०२२५) ‘इत्तियमित्ता’ इति एतावन्मात्राः सङ्कलिताः–एकीकृताः जीवस्य गर्भवासे निश्चयेन निःश्वासोच्छ्वासा भवन्ति, कथं ?, एकस्मिन्नन्तर्मु(न्मु)हूर्त्ते सप्तत्रिंशच्छतानि त्रिसप्तत्यधिकानि (३७७३) निःश्वासोच्छ्वासा

द्वारनिर्देशः २–३ अहोरात्रमुहूर्त्तोच्छ्वासमानं ४–८

॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	गर्भमध्ये अहोरात्राणां प्रमाणं कथयते

भवन्ति, एतैश्च पदैः तानि (८३२५) उक्तरूपाणि मुहूर्त्तानि गुण्यन्ते तदा यथोक्तं (३१४१०२२५) एतद् भवतीति, इतः–उक्तरूपात् वातादिकारणेन हीनाधिका निःश्वासोच्छ्वासा भवन्तीति ॥७—८॥ अथाहाराधिकारे किञ्चिद्गर्भादिस्वरूपमाह–आउसो !-इत्थीए नाभिहिट्ठा सिरादुगं पुप्फनालियागारं। तस्स य हिट्ठा जोणी अहोमुहा संठिया कोसा ॥ ९ ॥ तस्स य हिट्ठा चूयस्स मंजरी [जारिसी] तारिसा उ मंसस्स । ते रिउकाले फुडिया सोणियलवया विमोयंति १० कोसायारं जोणिं संपत्ता सुक्कमीसिया जइया । तइया जीवुववाए जुग्गा भणिआ जिणिंदेहिं ॥ ११ ॥

"आउसो ! इत्थी०" हे आयुष्मन् !–हे गौतम ! स्त्रियाः–नार्याः नाभेरधः–अधोभागे पुष्पनालिकाकारं–सुमनोवृन्तसदृशं शिराद्विकं–धमनियुग्मं वर्त्तते, च पुनस्तस्य–शिराद्विकस्याधो योनिः–स्मरकूपिका संस्थिता अस्ति, किंभूता ?-अधोमुखा, पुनः किंभूता ?–'कोस'त्ति कोशा–खड्गपिधानकाकारेत्यर्थः ॥९॥ "तस्स य०" तस्याश्च योनेरधः–अधोभागे'चूतस्य'आम्रस्य यादृश्यो मञ्जर्यो–वल्लरयो भवन्ति तादृश्यो मांसस्य–पललस्य मञ्जरयो भवन्ति, ता मञ्जरयः स्त्रीणां मासान्ते यदजस्रमिश्रं दिनत्रयं श्रवति तद्ऋतुकालः–स्त्रीधर्मप्रस्तावस्तस्मिन् स्फुटिताः–प्रफुल्लाः सत्यः शोणितलवकान्–रुधिरबिन्दून् विमुञ्चन्ति–श्रवन्ति ॥१०॥ "कोसा०"ते रुधिरबिन्दवः कोशाकारां योनिं सम्प्राप्ताः सन्तः शुक्रमिश्रिताः–ऋतुदिनत्रयान्ते पुरुषसंयोगेन अपुरुषसंयोगेन वा पुरुषवीर्येण मिलिताः 'जइय'त्ति यदा भवन्ति 'तइय'त्ति तदा जीवोत्पादे–गर्भसम्भूतिलक्षणे योग्या भणिता-कथिता जिनेन्द्रैः-सर्वज्ञैरिति।ननु कथं पुरुषासंयोगे पुरुषवीर्यसम्भव इति?,अत्रोच्यते,स्थानाङ्गाभिप्रायेण यथा-"पंचहिं ठाणेहिमित्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गब्भं धरेज्जा,तं०–इत्थी दुविप्पयडा दुन्निसन्ना सुक्कपोग्गले अधिट्ठिज्जा१सुक्क-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्पोग्गलसंसट्ठे व से वत्थे अंतो जोणीए अणुपवेसेज्जा २सयं व से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ३परो व से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ४ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा ५इच्चेतेहिं पंचजावधरेज्जा' दु०परिधानवर्जितेत्यर्थः, दुर्निषण्णा पुरुषशुक्रपुद्गलान् कथञ्चित् पुरुषनिसृष्टान् आसनस्थानधितिष्ठेत्–योन्याकर्षणेन सङ्गृह्णीयात् (१) तथा शुक्रपुद्गलसंसृष्टं 'से'तस्याः स्त्रिया वस्त्रमन्तः–मध्ये योनावनुप्रविशेद्, इह च वस्त्रमित्युपलक्षणं तथाविधमन्यदपि अनुप्रविशेदिति २ स्वयमिति पुत्रार्थिनीत्वाच्छीलरक्षकत्वाच्च 'से'त्ति सा शुक्रपुद्गलान् योनावनुप्रवेशयेत् ३ परो वत्ति श्वश्रूप्रभृतिकः पुत्रार्थमेव 'से' तस्या योनाविति ४ शीतोदकलक्षणं यद् विकटं पल्वलादिगतमित्यर्थः तेन वा 'से' तस्याः आचमन्त्याः पूर्वपतिता–उदकमध्यवर्त्तिनः शुक्रपुद्गलाः अनुप्रविशेयुरिति ५ ॥ ११ ॥

अथाध्वस्तध्वस्तयोनिकालमानं जीवसङ्ख्यापरिमाणं चाह—

बारस चेव मुहुत्ता उवरिं विद्धंस गच्छई सा उ । जीवाणं परिसंखा लक्खपिहुत्तं च उक्कोसं ॥ १२ ॥
पणपन्नाय परेणं जोणी पमिलायए महिलियाणं । पणसत्तरिइ परओ पाएण पुमं भवेऽबीओ ॥ १३ ॥

"बारस०" सा पुरुषवीर्यसंयुक्ता योनिर्द्वादशैव मुहूर्त्तान् यावदध्वस्ता भवति, तथा 'उवरि'न्ति द्वादशमुहूर्त्तानन्तरं सा योनिर्विध्वंसं गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः, अयमाशयः—ऋत्वन्ते स्त्रीणां नरोपभोगेन द्वादशमुहूर्त्तमध्य एव गर्भभावः, तदनन्तरं वीर्यविनाशात् गर्भाभाव इति, तथा मनुष्यगर्भे जीवानां–गर्भजजन्तूनां परिसङ्ख्या–मानं लक्षपृथक्त्वमुत्कृष्टतो भवति, सिद्धान्तभाषया पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरा नवभ्यः सङ्ख्या कथ्यते इति ॥ १२ ॥ अथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'योनिर्विध्वंस' काल्मान कथयते

कियद्भ्यो वर्षेभ्यः पुनरूर्ध्वं गर्भं स्त्रियो न धारयन्ति पुमांश्चाबीजो भवति इति प्रसङ्गतो निरूपयितुमाह— "पणप०" महिलानां–स्त्रीणां प्रायः प्रवाहेण 'पणपन्नाय'त्ति पञ्चपञ्चाशद्वर्षेभ्यः 'परेणं'ति ऊर्ध्वं योनिः प्रम्लायति–गर्भधारणसमर्था न भवतीत्यर्थः, भावार्थोऽयं निशीथोक्तः–यथा "इत्थीए जाव पणपन्ना वासा न पूरंति ताव अमिलाया जोणी–आर्त्तवं स्यात् गर्भं च गृह्णातीत्यर्थः 'पणपन्नवासाए पुण कस्सवि आर्तवं भवति न पुण गब्भं गिण्हइ, पणपन्नाए परओ नो अत्तवं नो गब्भं गिण्हइ" इति, तथा चोक्तं स्थानाङ्गटीकायाम्–"मासि मासि रजः स्त्रीणामजस्रं श्रवति ह्यहम् । वत्सरात् द्वादशादूर्ध्वं, याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ १ ॥ पूर्णषोडशवर्षा स्त्री, पूर्णविंशेन संगता । शुद्धे गर्भाशये १, मार्गे २, रक्ते ३ शुक्रे ४ ऽनिले ५ हृदि ६ ॥ २ ॥ वीर्यवन्तं सुतं सूते, ततो न्यूनाब्दयोः पुनः । रोग्यल्पायुरधन्यो वा, गर्भो भवति नैव वा ॥३॥" इति । शुद्धे–निर्दोषे गर्भाशयादिषट्के इत्यर्थः । तथा च "ऋतुस्तु द्वादश निशाः, पूर्वास्तिस्रोऽत्र निन्दिताः । एकादशी च युग्मासु, स्यात्पुत्रोऽन्यासु कन्यका ॥ ४ ॥ पद्मं सङ्कोचमायाति, दिनेऽतीते तथा यथा । ऋतावतीते योनिः सा, शुक्रं नैव प्रतीच्छति ॥५॥ मासेनोपचितं रक्तं, धमनीभ्यामृतौ पुनः । ईषत् कृष्णं विगन्धं च, वायुर्योनिमुखात्तुदेत् ॥ ६ ॥" तथा चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं १ अविध्वस्ता योनिर्विध्वस्तं बीजं २ विध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं ३ विध्वस्ता योनिर्विध्वस्तं बीजं ४ चतुर्षु भङ्गेषु आद्ये भङ्ग एवोत्पत्तेरवकाशः, न शेषेषु त्रिष्विति, तत्र पञ्चपञ्चाशिका नारी विध्वस्तयोनिः, ससससतिकः पुमानिति, "द्वादश मुहूर्त्तान् यावद् बीजं न विध्वस्तं स्यात्तत ऊर्ध्वं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विध्वस्त" मिति द्वितीयाङ्गवृत्ताविति । तथा पुमान्–पुरुषः प्रायः पञ्चसप्ततिवर्षेभ्यः परत ऊर्ध्वमबीजो भवेत्, गर्भाधानयोग्यबीजविवर्जित इत्यर्थः ॥ १३ ॥ कियत्प्रमाणायुषामेतन्मानं द्रष्टव्यमित्याह—

वाससयाउयमेयं परेण जा होइ पुव्वकोडीओ । तस्सद्धे अमिलाया सव्वाउयवीसभागो य ॥ १४ ॥

"वास"० वर्षशतायुषामिदंयुगीनानामेतद् गर्भधारणादिकालमानमुक्तं, परेण तर्हि का वार्त्तेत्याह–'परे०' वर्षशतात् परतो वर्षद्वयं त्रयं चतुष्टयं चेत्यादि यावन्महाविदेहमनुष्याणां या पूर्वकोटिः सर्वायुषि स्यात् तस्य–सर्वायुषोऽर्धं तदर्धं यावदम्लाना–गर्भधारणयोग्या स्त्रीणां योनिः द्रष्टव्या, ततोऽपि परतः सकृत्प्रसवधर्माणोऽम्लानयोनयोऽवस्थितयौवनत्वात्, पुंसां पुनः सर्वस्यापि पूर्वकोटिपर्यन्तस्यायुषोऽन्त्यो विंशतिमो भागोऽबीज इति ॥ १४ ॥

अथ कियन्तः पुनर्जीवाः एकस्याः स्त्रियाः गर्भे एकहेलयैवोत्पद्यन्ते, कियतां च पितॄणां एकः पुत्रो भवति इत्याह–

रत्तुक्कडा उ इत्थी लक्खपुहुत्तं च बारसमुहुत्ता । पिअसंख सयपुहुत्तं बारसवासा उ गब्भस्स ॥ १५ ॥

"रत्तु०" अत्रान्यत्राप्यार्षत्वाद् विभक्तीनां वैचित्र्यं ज्ञातव्यमिति, मासान्ते त्रीणि दिनानि यावत् स्त्रीणां यन्निरन्तरमजस्रं श्रवति तदत्र रक्तमुच्येत, तेन रक्तेन–रुधिरेण उत्कटायाः पुरुषवीर्ययुक्तयोन्याश्च एकस्याः स्त्रियाः गर्भे जघन्यतः एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कृष्टतस्तु 'लक्खपुहुत्तं'ति लक्षपृथक्त्वं नवलक्षगर्भजजीवा उत्पद्यन्ते इत्यर्थः, निष्पत्तिं च प्रायः एको द्वौ वाऽऽगच्छतः, शेषास्त्वल्पजीवितत्वात्तत्रैव म्रियन्ते, एको द्वौ वेत्युक्तं व्यवहारापेक्षया निश्चयापेक्षया तु ततोऽधिकं न्यूनं वा भवतीति द्रष्टव्यमिति, चशब्दात् स्त्रियाः संसक्तायां योनौ द्वीन्द्रिया जीवा जघन्यतः एको द्वौ वा त्रयो वोत्कृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री-गर्भ मध्ये उत्पद्यमान जीवानाम् संख्या कथयते

ष्टतो नवलक्षप्रमाणा उत्पद्यन्ते, तस्यायःशलाकान्यायेन पुरुषसंयोगे तेषां जीवानां विनाशो भवति, स्त्रीपुरुषमैथुने मिथ्यादृष्टयः अन्तर्मुहूर्त्तायुषः अपर्याप्तावस्थाकालकारिणः नवप्राणधारकाः नारकदेवयुगलवर्जितशेषजीवस्थानगमनशीलाः नारकदेवयुगलाग्निवायुवर्जितशेषजीवस्थानागमनस्वभावाः मुहूर्त्तपृथक्त्वकायस्थितिकाः असङ्ख्येयाः संमूर्च्छिममनुष्या उत्पद्यन्ते चेति, तथा ‘बारसमुहुत्त’त्ति पुरुषवीर्यस्य कालमानं द्वादश मुहूर्त्तानि,एतावत्कालमेव शुक्रशोणिते अविध्वस्तयोनिके भवत इति, ‘पिअ’त्ति पितृणां पितृसंख्या तस्याः शतपृथक्त्वं भवति, अयमाशयः–उत्कृष्टतो नवानां पितृशतानामेकः पुत्रो जायते, एतदुक्तं भवति–कस्याश्चिद् दृढसंहननायाः कामातुरायाश्च योषितो यदा द्वादशमुहूर्त्तमध्ये उत्कृष्टतो नवभिः पुरुषशतैः सह सङ्गमो भवति तदा तद्बीजे यः पुत्रो भवति स नवानां पितृशतानां पुत्रो भवतीति, उपलक्षणत्वात्तिरश्चां च बीजं द्वादशमुहूर्त्तान् यावद्योनिभूतं भवति, ततश्च गवादीनां शतपृथक्त्वस्यापि बीजं गवादियोनिप्रविष्टं बीजमेव, तत्र च बीजसमुदाये एको जीव उत्पद्यमानस्तेषां सर्वेषां बीजस्वामिनामुत्कर्षतः पुत्रो भवति, मत्स्यादीनामेकसंयोगेऽपि शतसहस्रपृथक्त्वं गर्भे उत्पद्यते निष्पद्यते चेत्येकस्मिन्नपि गर्भे लक्षपृथक्त्वं पुत्राणां स्यादिति। ननु देवानां शुक्रपुद्गलाः किं सन्ति उत न?, उच्यते,सन्त्येव, परं ते वैक्रियशरीरान्तर्गता इति न गर्भाधानहेतव इति,यदुक्तं श्रीप्रज्ञापनायां–“अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं सुक्कपुग्गला?” हंता अत्थि, ते णं भंते ! तेसिं अच्छराणं कीसत्ताए भुज्जो २ परिणमंति?, गो० ! सोइंदियत्ताए चक्खिंदियत्ताए घाणिंदियत्ताए रसणिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए इट्ठत्ताए कंतत्ताए मणुन्नत्ताए मणामत्ताए सुभगत्ताए सोहग्गरूवजोव्वणगुणलावन्नत्ताए एयासिं भुज्जो २ परिणमंति जाव तत्थ णं जे ते मणपरियारगा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||१५|| दीप अनुक्रम [१५]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

देवा तेसिं इच्छामणे समुप्पज्जइ इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेत्तए, तओ णं तेहिं देवेहिं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ तत्थगयाओ चेव समाणीओ अणुत्तराइं उच्चावयाइं मणाइं पहारेमाणीओ२चिट्ठंति,तओ णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेंति सेसं निरवसेसं तं चेव जाव भुज्जो २ परिणमंति'त्ति ॥ अथ कियन्तं कालं भवस्थित्या जीवो गर्भे वसतीत्याह—“बारस०” गर्भस्य स्थितिः द्वादशवर्षप्रमाणा भवति, एतदुक्तं भवति–कोऽपि पापकारी वातपित्तादिदूषिते देवादिस्तम्भिते वा गर्भे द्वादश संवत्सराणि निरंतरं तिष्ठति उत्कृष्टतः, जघन्यतस्त्वन्तर्मुहूर्तमेव तिष्ठति, भवस्थित्या गर्भाऽधिकारात् ‘उदगगब्भे णं भंते! कालओ केवचिरं होइ ?, गो०! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छ मासा” उदकगर्भः–कालान्तरे वृष्टिहेतुपुद्गलपरिणामः तस्य समयानन्तरं षण्मासानन्तरं च वर्षणात्, अयं च मार्गशीर्षादिषु वैशाखान्तेषु सन्ध्यारागादिलिङ्गो भवतीति, तुशब्दात् मनुष्यतिरश्चां कायस्थितिः चतुर्विंशतिवर्षप्रमाणा अवगन्तव्या, यथा कोऽपि स्त्रीकाये द्वादश वर्षाणि जीवित्वा तदन्ते च मृत्वा तथाविधकर्मवशात् तत्रैव गर्भस्थिते कलेवरे समुत्पद्य पुनः द्वादश वर्षाणि जीवतीत्येवं चतुर्विंशतिर्वर्षाण्युत्कर्षतो गर्भे जन्तुरवतिष्ठते, केचिदाहुः–द्वादश वर्षाणि स्थित्वा पुनः तत्रैवान्यजीवस्तच्छरीरे उत्पद्यते तावत्स्थितिरिति ॥ १५ ॥ अथ कुक्षौ पुरुषादयः कुत्र परिवसन्तीत्याह—

दाहिणकुच्छी पुरिसस्स होइ वामा उ इत्थीयाए य । उभयंतरं नपुंसे तिरिए अट्ठेव वरिसाइं ॥ १६ ॥

‘दाहिणे’ति पुरुषस्य दक्षिणकुक्षिः स्यात्, दक्षिणकुक्षौ वसन् जीवः पुरुषः स्यादिति भावः १, स्त्रिया वामकुक्षिः स्यात्, वामकुक्षौ वसन् जीवः स्त्री भवतीति भावः २, नपुंसकः उभयान्तरं स्यात्, कुक्षिमध्यभागे वसन् जीवो नपुंसको जायते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री-कुक्षी मध्ये कुत्र पुत्र/पुत्री वसति?

इति भावः ३, स्त्रीपुरुषनपुंसकलक्षणानि यथा–“योनिर्मृदुत्वमस्थैर्यं, मुग्धता चलता स्तनौ । पुंस्कामितेति लिङ्गानि, सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते ॥ १ ॥ मेहनं खरता दार्ढ्यं, शौण्डीर्यं श्मश्रु धृष्टता । स्त्रीकामितेति लिङ्गानि, सप्त पुंस्त्वे प्रचक्षते ॥ २ ॥ स्तनादिश्मश्रुकेशादिभावाभावसमन्वितम् । नपुंसकं बुधाः प्राहुर्मोहानलसुदीपितम् ॥ ३ ॥” इति ॥ अथ तिरश्चां गर्भे भवस्थितिमाह–‘तिरिए’त्ति तिरश्चां गर्भस्थितिरुत्कृष्टतः अष्टौ वर्षाणि, ततः परं विपत्तिः प्रसवो वेति, जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्तमाना भवस्थितिरिति ॥ १६ ॥ अथ जीवो गर्भे उत्पद्यमानः किमाहारमाहारयति ततश्च किंस्वरूपो भवतीत्याह—

इमो खलु जीवो अम्मापिउसंयोगे माउउयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसट्ठं कलुसं किब्बिसं तप्पढमयाए आहारं आहारित्ता गब्भत्ताए वक्कमइ (सूत्रं १) ‘सत्ताहं कललं होइं, सत्ताहं होइ अब्बुयं । अब्बुया जायए पेसी, पेसीओ य घणं भवे ॥ १ ॥ (१७) तो पढमे मासे करिसूणं पलं जायइ १ बीए मासे पेसी संजायए घणा २ तइए मासे माउए दोहलं जणइ ३ चउत्थे मासे माउए अंगाइं पीणेइ ४ पंचमे मासे पंच पिंडियाओ पाणिं पायं सिरं चेव निव्वत्तेइ ५ छट्ठे मासे पित्तसोणियं उवचिणेइ ६ सत्तमे मासे सत्त सिरासयाइं ७०० पंच पेसीसयाइं ५०० नवधमणीओ नवनउइं च रोमकूवसयसहस्साइं निवत्तेइ ९९०००० विणा केसमंसुणा सह केसमंसुणा अद्धट्ठाओ रोमकूवकोडीओ निवत्तेइ ३५०००००, अट्ठमे मासे वित्तीकप्पो हवइ ८ (सूत्रं २)

‘इमो खलु’त्ति यावत् ‘वक्कमइ’त्ति मुत्कलं, अयं जीवः खलु इति निश्चितं मातापित्रोः संयोगे ‘माउउयं’ति मातुरोजो-जनन्या आर्त्तवं शोणितमित्यर्थः ‘पिउसुक्कंति’ पितुः शुक्रं, इह यदिति शेषः ‘तं’ ति तदाहारं तस्य-गर्भव्युत्क-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भ-मध्ये जीवानाम् आहारस्य प्रमाणं कथयते

तं. वै. प्र. ॥ ७ ॥

मणस्य प्रथमता तत्प्रथमता तया 'आहारित्त'त्ति तैजसकार्मणशरीराभ्यां भुक्त्वा गर्भतया-गर्भत्वेन 'वक्कमइ'त्ति व्युत्क्रामति उत्पद्यत इत्यर्थः, किंभूतमाहारं ?—'तदुभयसंसिट्ठं'ति तयोः-शुक्रशोणितयोरुभयं तच्च तत् संसृष्टं च-मिलितं च तदुभयसंसृष्टं, कलुषं-मलिनं 'किब्बिसं'ति कर्बुरमिति, ततः केन क्रमेण शरीरं निष्पाद्यते इत्याह–'सत्ताह'–मित्यादि० यावद् भवेत्तिपद्यं, सप्ताहोरात्राणि यावत् शुक्रशोणितसमुदायमात्रं कललं भवति १ ततः सप्ताहोरात्राणि अर्बुदो भवति, ते एव शुक्रशोणिते किञ्चित् स्थानीभूतत्वं प्रतिपद्येते इति २ ततोऽपि चार्बुदात् पेसी–मांसखण्डरूपा भवति ३ ततश्चानन्तरं सा घनं–समचतुरस्रं मांसखण्डं भवति ॥ १७ ॥ 'तो पढमे०' ततः–इह च तच्छुक्रशोणितमुत्तरोत्तरपरिणाममासादयत् प्रथमे मासे कर्षोनं पलं जायते, पञ्चगुञ्जाभिर्माषः षोडशभिर्माषैः कर्षः चतुर्भिः कर्षैः पलमिति वचनात् त्रयः कर्षाः स्युरिति भावः १ द्वितीये तु मासे मांसपेसी घना–घनस्वरूपा भवति, समचतुरस्रं मांसखण्डं जायत इत्यर्थः २ तृतीये मासे तु मातुर्दोहदं जनयतीत्यर्थः ३ चतुर्थे मासे मातुरङ्गानि प्रीणयति–पुष्टानि करोतीत्यर्थः ४ पञ्चमे मासे पाणिद्वयपादद्वयमस्तकरूपाः पञ्च पिण्डिकाः–पञ्चाङ्कुरान् निर्वर्त्तयति निष्पादयतीत्यर्थः ५ षष्ठे मासे पीयते जलमनेनेति पित्तं पित्तं च शोणितं च पित्तशोणितं तत् उपचिनोति–पुष्टं करोतीत्यर्थः ६ सप्तमे मासे सप्त शिराशतानि ७०० पञ्च पेशीशतानि ५०० नव धमन्यो–नव नाड्यः ९ नवनवतिं रोमकूपशतसहस्राणि निर्वर्त्तयति, रोम्णां–तनुरुहाणां कूपा इव कूपा रोमकूपा रोमरन्ध्राणीत्यर्थः तेषां नवनवतिलक्षा इति केशश्मश्रुभिर्विना, तत्र केशाः–शिरोजाः श्मश्रूणि–कूर्चकेशाः ९९०००००, केशश्मश्रुभिः सह 'अद्धट्ठाउ'त्ति सार्धाः तिस्रो रोमकूपकोटीः निर्वर्तयतीति ३५०००००००,

गर्भे मासाष्टकावस्था सू. २

॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [३] + ॥१७..॥

दीप अनुक्रम [२०]

अष्टमे मासे तु शरीरमाश्रित्य 'वित्तीकप्पे' त्ति निष्पन्नप्रायो जीवो भवतीति ८ ॥ अत्राधिकारे इन्द्रभूतिः जनोपकाराय त्रैशलेयं सर्वज्ञं सर्वभूतदयैकरसं प्रश्नयति यथा—

जीवस्स णं भंते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारेइ वा पासवणेइ वा खेलेइ वा सिंघाणेइ वा वंतेइ वा पित्तेइ वा सुक्केइ वा सोणिएइ वा ?, नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारेइ वा जाव सोणिएइ वा ?, गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जं आहारं आहारेइ तं चिणाइ सोइंदियत्ताए १ चक्खुरिंदियत्ताए २ घाणिंदियत्ताए ३ जिब्भिंदियत्ताए ४ फासिंदियत्ताए ५ अट्ठिअट्ठिमिंजकेसमंसुरोमनहत्ताए, से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जीवस्स णं गब्भगयस्स समाणस्स नत्थि उच्चारेइ वा जाव सोणिएइ वा (सूत्रं ३)

'जीवस्स णं भंते !' इत्यादि, हे भदन्त ! जीवस्य–जन्तोः 'णं' वाक्यालङ्कारे गर्भगतस्य–गर्भत्वं प्राप्तस्य 'समाणस्स'त्ति सतः अस्ति–विद्यते वर्त्तत इत्यर्थः उच्चारो–विष्ठा 'इ' इति उपप्रदर्शने अलङ्कारे पूरणे वा वेति विकल्पार्थे 'प्रश्रवणं' मूत्रं 'खेलो' निष्ठीवनं 'सिंघाणे'ति नासिकाश्लेष्म 'वंतं' वमनं 'पित्तं' मायुः शुक्रं–वीर्यं शोणितं–रुधिरं 'सुक्के इ वा सोणिए इ वा' इति पदद्वयं भगवत्यादिसूत्रे न दृश्यते आगमज्ञैर्विचार्यमिति, 'नो इणट्ठे समट्ठे' नो–नैव 'इणट्ठे'त्ति अयमनन्तरोक्तत्वेन प्रत्यक्षोऽर्थो–भावः समर्थो–बलवान्, वक्ष्यमाणदूषणमुद्गरप्रहारजर्जरितत्वात्, गौतमस्वामी प्राह— 'से केणट्ठेणं'ति अथ केन कारणेन इत्यर्थः हे भदन्त ! एवं प्रोच्यते–जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उच्चारो याव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भगत जीव-संबंधे विविध प्रश्ना:

च्छोणितमिति ?, भगवान् प्राह–हे गौतम ! जीवः णं वाक्यालङ्कारे गर्भगतः सन् यदाहारमाहारयति तदाहारं श्रोत्रेन्द्रियतया १ चक्षुरिन्द्रियतया २ घ्राणेन्द्रियतया ३ जिह्वेन्द्रियतया ४ स्पर्शनेन्द्रियतया ५ चिनोति पुष्टिभावं नयतीत्यर्थः, इन्द्रियाणि द्वैधानि–पुद्गलरूपाणि द्रव्येन्द्रियाणि १ लब्ध्युपयोगरूपाणि तु भावेन्द्रियाणि २, पुनर्निर्वृत्त्युपकरणलक्षणभेदात् द्वैधानि द्रव्येन्द्रियाणि, तत्र निर्वृत्तिर्द्विधा–अन्तो १ बहिश्च २, तत्र अन्तः–श्रोत्रेन्द्रियस्य अन्तः–मध्ये नेत्रगोचरातीता केवलिदृष्टा कदम्बकुसुमाकारा देहावयवरूपा काचिन्निर्वृत्तिरस्ति या शब्दग्रहणोपकारे वर्त्तते १ चक्षुरिन्द्रियस्यान्तः–मध्ये केवलिगम्या धान्यमसूराकारा देहावयवरूपा काचिन्निर्वृत्तिरस्ति या रूपग्रहणोपकारे वर्त्तते २ घ्राणेन्द्रियस्य अन्तः–मध्ये केवलिदृश्या अतिमुक्तककुसुमाकारा देहावयवरूपा काचिन्निर्वृत्तिरस्ति या गन्धग्रहणोपकारे वर्त्तते ३ रसनेन्द्रियस्य अन्तः–मध्ये जिनगम्या क्षुरप्राकारा देहावयवरूपा काचिन्निर्वृत्तिरस्ति या रसग्रहणोपकारे वर्त्तते ४ स्पर्शनेन्द्रियस्य अन्तः–मध्ये केवलिदृष्टा देहाकारा काचिन्निर्वृत्तिरस्ति या स्पर्शग्रहणोपकारे वर्त्तते ५–१ बहिर्निर्वृत्तिस्तु या सर्वेषामपि श्रोत्रादीनां कर्णशष्कुलिकादिका दृश्यते सैव मन्तव्या २, उपकरणेन्द्रियं तु तेषामेव कदम्बगोलकाकारादीनां खड्गस्य छेदनशक्तिरिव ज्वलनस्य दहनशक्तिरिव वा या स्वकीयस्वविषयग्रहणशक्तिस्तत्स्वरूपं द्रष्टव्यम् २, तथा ज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमाज्जीवस्य शब्दादिग्रहणशक्तिरूपं लब्धिभावेन्द्रियं १ यत्तु शब्दादीनामेव ग्रहणपरिणामलक्षणं तदुपयोगभावेन्द्रियमिति २, तत्र यानि द्रव्येन्द्रियाणि तानि जीवानामिन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां भवन्ति, यानि च भावेन्द्रियाणि तानि संसारिणां सर्वावस्थाभावीनीति, तथा नयनस्य विषयोऽप्रकाशकवस्तु पर्वताद्याश्रित्यात्माङ्गुलेन सातिरेकं योजन-

गर्भे उच्चाराद्यभावः सू. ३

॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षं स्यात्, प्रकाशके त्वादित्यचन्द्रादावधिकमपि विषयपरिमाणं स्यात्, नात्र विषये नियमः कोऽपि निर्दिष्टोऽस्ति सिद्धान्ते, यतः पुष्करवरद्वीपार्द्धे मानुषोत्तरपर्वतसमीपे कर्कसङ्क्रान्तौ मनुष्याः प्रमाणाङ्गुलभवैः सातिरेकैरेकविंशतियोजनलक्षैः व्यवस्थितं रविं पश्यन्तः प्रोच्यन्ते शास्त्रान्तरे इति, जघन्यतस्त्वत्यासन्नरजोमलादेरग्रहणादङ्गुलसङ्ख्येयभागात् परतः स्थितं वस्तु चक्षुषो विषयः १ श्रोत्रस्य द्वादश योजनान्युत्कृष्टविषयो मेघगर्जितादौ २ घ्राणरसनस्पर्शनानां तूत्कृष्टं नव योजनानि ३-४-५ जघन्यतस्तु चतुर्णामप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागादागतं गन्धादिकं विषयः, मनसस्तु केवलज्ञानस्येव समस्तमूर्त्तामूर्त्तवस्तुविषयत्वेन क्षेत्रतो नास्ति विषयप्रमाणं मनसोऽप्राप्यकारित्वादिति, विषयप्रमाणं चात्र इन्द्रियविचारे आत्माङ्गुलेनैव ज्ञेयमिति, तथा—'अट्ठिअट्ठिमिंज०'अस्थ्यस्थिमिञ्जकेशश्मश्रुरोमनखतया चिनोतीति, तत्रास्थि—हड्डं अस्थिमिंजा—अस्थिमध्यावयवः केशाः—शिरोजाः श्मश्रूणि—कूर्चकेशाः रोमाणि—कक्षादिकेशा इति,'से' अथ अनेनार्थेन—अनेन कारणेन हे गौतम! हे इन्द्रभूते! एवं—पूर्वोक्तं प्रोच्यते—प्रकर्षेण प्रतिपाद्यते जीवस्य गर्भगतस्य सतो नास्ति उच्चारो यावच्छोणितमिति ॥ पुनर्गौतमो ज्ञातनन्दनं प्रश्नयति—

जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?—गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे नो पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए?, गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ सव्वओ परिणामेइ सव्वओ ऊससेइ सव्वओ नीससेइ अभिक्खणं आहारेइ अभिक्खणं परिणामेइ अभिक्खणं ऊससेइ अभि० नीससेइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

आहच्च आहारेइ आहच्च परिणामेइ आहच्च ऊससेइ आ० नीससइ, माउजीवरसहरणी पुत्तजीवरसहरणी माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवं फुडा तम्हा आहारेइ तम्हा परिणामेइ अवरावि णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाइ, से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–जीवे णं गब्भगए समाणे नो पहू मुहेणं कावलियं आहारं आहरित्तए । (सूत्रं ४)

'जीवे णं०' हे भदन्त ! हे भवान्त ! हे दयैकरसकृतवाग्वृष्ट्याद्रींकृतभव्यहृदयवसुंधर ! जीवो गर्भगतः सन् प्रभुः–समर्थः मुखेन–वक्त्रेण कवलैर्भवं कावलिकं आहारं–अशनादिकं 'आहारित्तए'त्ति आहर्त्तुं अदनं कर्तुमिति ?, आह जगदीश्वरः–हे गौतम ! नायमर्थः समर्थः, श्रीगौतमः प्राह–'से' अथ केनार्थेन एवं प्रोच्यते ?, विश्वैकवत्सलो वीरः प्राह–हे गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् 'सव्वउ'त्ति सर्वात्मना–सर्वप्रकारेण आहारयति, आहारतया गृह्णातीत्यर्थः, सर्वात्मना परिणामयति, शरीरादितया गृह्णातीत्यर्थः, सर्वतः–सर्वात्मना 'उच्छ्वसिति' सर्वप्रकारेण ऊर्ध्वश्वासं गृह्णातीत्यर्थः, सर्वतः–सर्वात्मना निःश्वसिति–श्वासमोक्षणं करोतीत्यर्थः, अभीक्ष्णं–पुनः पुनः आहारयति अभीक्ष्णं परिणामयति अभीक्ष्णमुच्छ्वसिति अभीक्ष्णं निःश्वसिति, 'आहच्च'त्ति कदाचिदाहारयति कदाचिन्नाहारयति तथास्वभावत्वात् कदाचित् परिणामयति कदाचिन्न परिणामयति कदाचिदुच्छ्वसिति कदाचिन्नोच्छ्वसिति कदाचिन्निःश्वसिति कदाचिन्न निःश्वसिति अपर्याप्तावस्थायां । अथ कथं सर्वतः आहारयतीत्याह—'माउजीवर'० रसः ह्रियते–आदीयते यया सा रसहरणी नाभिनालमित्यर्थः मातृजीवस्य रसहरणी मातृजीवरसहरणी, किमित्याह–पुत्रजीवरसहरणी, पुत्रस्य रसोपादाने कारणत्वात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथमेवमित्याह–मातृजीवप्रतिबद्धा सती सा यतः पुत्रजीवं 'फुडा' इति पुत्रजीवं स्पृष्टवती, इह प्रतिबद्धता–गाढसम्बन्धस्तदंशत्वात् स्पृष्टता च–सम्बन्धमात्रं अतदंशत्वात्, अथवा मातृजीवरसहरणी १ पुत्रजीवरसहरणी २ चेति द्वे नाड्यौ स्तः, तयोश्चाद्या मातृजीवप्रतिबद्धा पुत्रजीवं स्पृष्टेति, 'तम्हा' इति यस्मादेवं तस्मान्मातृजीवप्रतिबद्धया रसहरण्या पुत्रजीवस्पर्शनात् आहारयति तस्मात् परिणमयति, 'अवरावि य' त्ति पुत्रजीवरसहरण्यपि च पुत्रजीवप्रतिबद्धा सती मातृजीवं स्पृष्टवती, यस्मादेवं तस्माच्चिनोति शरीरं, उक्तञ्च तन्त्रान्तरे–"पुत्रस्य नाभौ मातुश्च, हृदि नाडी निबध्यते। ययाऽसौ पुष्टिमाप्नोति, केदार इव कुल्यया ॥ १ ॥" इति, 'से' अथ अनेनार्थेन हे गौतम ! एवं प्रोच्यते–जीवो गर्भगतः सन् न प्रभुः–न समर्थः मुखेन कावलिकं आहारमाहर्त्तुमिति ॥ पुनः गौतमो वीरं प्रश्नयति—

जीवे णं गब्भगए समाणे किमाहारं आहारेइ ?, गोयमा जं से माया नाणाविहाओ नव रसविगइओ तित्तकडुयकसायंबिलमहुराइं दव्वाइं आहारेइ तओ एगदेसेणं ओयमाहारेइ, तस्स फलबिंटसरिसा उप्पलनालोवमा भवइ नाभिरसहरणी जणणीए सया इं नाभीए पडिबद्धा नाभीए तीए गब्भो ओयं आइयइ अण्हयंतीए ओयाए तीए गब्भो विवड्ढइ जाव जाउत्ति (सू० ५)

जीवो गर्भगतः सन् किमाहारमाहारयति ?, गौतम! 'जं से'त्ति या से–तस्य गर्भसत्त्वस्य माता गर्भधारिणी 'नाणा०' नानाविधाः—विविधप्रकाराः रसरूपा रसप्रधाना वा विकृतयो—दुग्धाद्या रसविकारास्ताः आहारयति, तथा यानि तिक्तकटुककषायाम्लमधुराणि द्रव्याणि चाहारयति, तत्र तिक्तानि–निम्बचिर्भटादीनि कटुकानि–आर्द्रकतीमनादीनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायाणि–वल्लकादीनि आम्लानि–तक्रारनालादीनि मधुराणि–क्षीरदध्यादीनि ५, 'तओ एगदेसेणं'ति तासां–रसविकृत्यादीनामेकदेशस्तेन सह 'ओयं'ति ओजसं–शुक्रशोणितसमुदायरूपं आहारयति, यद्वा त्वगेकदेशेन मातुराहारमिश्रं ओजः–शोणितं आहारयति । कथमित्याह 'तस्स फल' इत्यादि यावत् 'जाउ'त्ति, तस्य–गर्भजीवस्य 'जणणीए'त्ति जनन्या–मातुः नाभिरसहरणी–नाभिनालमस्ति, किम्भूता ?–फलवृन्तसदृशी–उत्पलनालोपमा च पुनः किंभूता ?–'पडिबद्धा' गाढलग्ना, क्व ?–नाभौ, कथं ?–सदा 'इं' इति वाक्यालङ्कारे 'तीए'त्ति तया 'नाभीए'त्ति जननीनाभिप्रतिबद्धया रसहरण्या 'गब्भो ओयं'ति गर्भः–उदरस्थः जन्तुः ओजः–मातुराहारमिश्रं शुक्रशोणितरूपं 'आइयइ'त्ति आददाति गृह्णातीति, 'अण्हयंतीए ओयाए तीए'त्ति तस्यां 'अशश् भोजने' अश्नत्यां यद्वा 'भुज पालनाभ्यवहारयोः' भुंजानायां-भोजनं कुर्वत्यां वा ओजसा–मातुराहारमिश्रेण शुक्रशोणितरूपेण गर्भो विवर्धते–वृद्धिं याति यावज्जात इति । 'भुजो भुंजजिमजेमकम्माण्हंसमाणचमढचट्टा' इति (श्री सिद्ध० अ० ८ पा० ४ सू० ११०) प्राकृतसूत्रेण भुजधातोः अण्ह इत्यादेश इति । पुनर्गौतमो वीरदेवं प्रश्नयति—

कइ णं भंते! माउअंगा पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ माउअंगा पण्णत्ता, तंजहा–मंसे १ सोणिए २ मत्थुलुंगे ३, कइ णं भंते ! पिउअंगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ पिउअंगा पन्नत्ता, तंजहा–अट्ठि १ अट्ठिमिंजा २ केसमंसुरोमनहा ३ (सूत्रं ६)

'कइ णं भंते !' हे भदन्त! णं इति वाक्यालङ्कारे कति मातुरङ्गानि आर्त्तवबहुलानीत्यर्थः प्रज्ञप्तानि ?, जगदीश्वरो

गर्भे आहारपोषणादि सू.५ मातापित्रंगानि सू.६

॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगत्राता जगद्भावविज्ञाता वीर आह–हे गणधर ! गौतम ! त्रीणि मातुरङ्गानि प्रज्ञप्तानि मया अन्यैश्च जगदीश्वरैः, तद्यथा–मांसं–पललं १ शोणितं–रुधिरं २ मत्थुलुंगेति–मस्तकभेज्जकं, अन्ये त्वाहुः–मेदःफिप्फिसादिः मस्तुलुंगमिति ३ ॥ 'कइ णं भंते !' कति हे भदन्त ! पैतृकाङ्गानि शुक्रविकारबहुलानीत्यर्थः प्रज्ञप्तानि ?, हे गौतम ! त्रीणि पैतृकाङ्गानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–अस्थि–हड्डुं १ अस्थिमिञ्जा–अस्थिमध्यावयवः २ केशश्मश्रुरोमनखाः३, तत्र केशाः–शिरोजाः श्मश्रूणि–कूर्चकेशाः रोमाणि–कक्षादिकेशाः नखाः–करजा इति, केशादिकं बहुसमानरूपत्वादेकमेव, उभयव्यतिरिक्तानि तु शुक्रशोणितयोः समविकाररूपत्वात् मातापित्रोः साधारणानीति ॥ गर्भस्थोऽपि किं कश्चिद् जीवो नरकं देवलोकं वा गच्छतीति गौतमो वीरं प्रश्नयति—

जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जिज्जा ?, गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए णो उववज्जिज्जा, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–जीवे णं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए नो उववज्जिज्जा ?, गोयमा ! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए विभंगनाणलद्धीए विउव्वियलद्धीए विउव्वियलद्धीपत्ते पराणीयं आगयं सुचा निसम्म पएसे निच्छुहइ निच्छुहित्ता विउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समोहणित्ता चाउरंगिणिं सिन्नं सन्नाहेइ सन्नाहित्ता पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ, से णं जीवे अत्थकामए १ रज्जकामए २ भोगकामए ३ कामकामए ४ अत्थकंखिए १ रज्जकंखिए २ भोगकंखिए ३ कामकंखिए ४ अत्थपिवासिए १ भोग० २ रज्ज० ३ काम० ४, तच्चित्ते १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भगत जीवस्य नरकस्थाने उत्पत्ति:

प्रत सूत्रांक [७] + ||१७..||

दीप अनुक्रम [२४]

तम्मणे २ तल्लेसे ३ तदज्झवसिए ४ तत्तिव्वज्झवसाणे ५ तयट्ठोवउत्ते ६ तदप्पियकरणे ७ तब्भावणाभाविए ८ एयंसि च णं (चे) अंतरंसि कालं करिज्जा नेरइएसु उववज्जिज्जा, से एएणं अट्ठेणं एवं वुच्चइ जीवे णं गब्भगए समाणे नेरइएसु अत्थेगइए उववज्जेजा अत्थेगइए नो उववज्जेजा गोयमा ! (सूत्रं ७)

'जीवे णं गब्भग०' हे भदन्त ! जीवो गर्भगतः सन् मृत्वेति शेषः नरकेषु उत्पद्यते ?, हे गौतम ! अस्ति–विद्यते 'एगइए'त्ति एककः कश्चित् सगर्वराजादिगर्भरूपः उत्पद्यते अस्त्ययं पक्षः यदुत एककः कश्चिन्नोत्पद्यते, 'से' अथ केनार्थेन हे भदन्त ! एवं प्रोच्यते–जीवो गर्भगतः सन् नरकेषु अस्त्येककः उत्पद्यते अस्त्येककको नोत्पद्यते ?, हे गौतम ! 'जे णं'ति यो जीवः 'णं' इति वाक्यालङ्कारे गर्भगतः सन् आहारादिका संज्ञा विद्यते यस्य स संज्ञी पञ्च इन्द्रियाणि–श्रवण १ घ्राण २ रसन ३ चक्षुः ४ स्पर्शन ५ लक्षणानि विद्यन्ते यस्य स पञ्चेन्द्रियः सर्वाभिराहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासभाषामनोलक्षणाभिः षड्भिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः, मासद्वयोपरिवर्त्तीत्यनुक्तमपि ज्ञेयं, यतो मासद्वयमध्यवर्त्ती मनुष्यो गर्भस्थो नरके देवलोकेऽपि न यातीत्युक्तं भगवत्यामिति, पूर्वभविकवीर्यलब्ध्या पूर्वभविकविभंगज्ञानलब्ध्या विभंगनाणलद्धीएत्ति पदं भगवत्यां नास्ति, पूर्वभविकवैक्रियलब्ध्या वैक्रियलब्धि प्राप्तः सन् यद्वा वीर्यलब्धिकः विभङ्गज्ञानलब्धिकः वैक्रियलब्धिकः वैक्रियलब्धि प्राप्तः सन् परानीकं–शत्रुसैन्यं आगतं–प्राप्तं 'सोचे'ति श्रुत्वा 'निसम्म'त्ति निशम्य–मनसा अवधार्य 'पएसे निच्छुभइ'त्ति स्वप्रदेशान् अनन्तानन्तकर्मस्कन्धानुविद्धान् गर्भदेशाद् बहिः क्षिपति–निष्काशयति निष्काश्य विष्कम्भबाहल्याभ्यां शरीरप्रमाणं आयामतः सङ्ख्येययोजनप्रमाणं जीवप्रदेशदण्डं निसृजति; वैक्रियसमुद्घातेन 'समोहणइ'त्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७] + ॥१७..॥ दीप अनुक्रम [२५]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

तं. वै. प्र. ॥ १२ ॥

असकृदनादौ संसारे तद्भावनया–अर्थादिसंस्कारेण भावितो यः स तद्भावनाभावितः ८, ‘एयंसि’त्ति एतस्मिन् ‘णं’ इति वाक्यालङ्कारे चेत्–यदि ‘अन्तरंसि’त्ति सङ्ग्रामकरणावसरे कालं–मरणं कुर्यात् तदा नरकेषु गाढदुःखाकुलेषु उत्पद्यते, नरभवं त्यक्त्वा महारम्भी मिथ्यादृष्टिः नरके यातीत्यर्थः, ‘से’ अथ एतेनार्थेनैवं प्रोच्यते–हे गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् नरकेषु अस्ति एककः कश्चिदुत्पद्यते अस्ति एककः कश्चिन्नोत्पद्यते ॥ पुनर्गौतमो वीरं प्रश्नयतीत्याह—

जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोगेसु उववज्जिज्जा ?, गो०! अत्थेगइए उव० अत्थेग० नो उव०, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–अत्थेगइए उ०अत्थेगइए नो उ० ?, गोयमा ! जे णं जीवे गब्भगए समाणे सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सुच्चा निसम्म तओ से भवइ तिव्वसंवेगसंजायसद्धे तिव्वधम्माणुरायरत्ते, से णं जीवे धम्मकामए १ पुण्णकामए २ सग्गकामए ३ मुक्खकामए ४ धम्मकंखिए १ पुण्णकंखिए २ सग्गकंखिए ३ मुक्खकंखिए ४ धम्मपिवासिए १ पुण्णपिवासिए २ सग्गपिवासिए ३ मुक्खपिवासिए ४ तच्चित्ते १ तम्मणे २ तल्लेसे ३ तदज्झवसिए ४ तत्तिव्वज्झवसाणे ५ तदप्पियकरणे ६ तयट्ठोवउत्ते ७ तब्भावणाभाविए ८ एयंसि णं (चे) अंतरंसि कालं करिज्जा देवलोएसु उववज्जिज्जा, से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ अत्थेगइए उववज्जिज्जा अत्थेगइए नो उववज्जिज्जा (सूत्रं ८)

‘जीवे णं भंते ! गब्भगए देव०’ जीवो हे भदन्त ! गर्भगतः सन् मृत्वेति शेषः देवलोकेषु उत्पद्यते ?, हे गौतम ! अस्ति

गर्भस्थस्यै- व देवेषू- त्पादः

॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भगत जीवस्य देवलोके उत्पत्ति:

एककः कश्चित् उत्पद्यते अस्त्येककः कश्चिन्नोत्पद्यते, 'से' अथ केनार्थेन हे भदन्त! एवं प्रोच्यते–कश्चिदुत्पद्यते कश्चिन्नोत्पद्यते?, हे गौतम! यो जीवो गर्भगतः सन् संज्ञी पञ्चेन्द्रियः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः, मासद्वयोपरिवर्त्तीत्यवधार्यं मासद्वयमध्यवर्ती तु स्वर्गे न यातीति, पूर्वभविकवैक्रियलब्धिकः पूर्वभविकावधिज्ञानलब्धिकः तथारूपस्य–तथाविधस्य उचितस्येत्यर्थः श्रमणस्य–साधोः वाशब्दो देवलोकोत्पादहेतुत्वं प्रति श्रमणमाहनवचनयोस्तुल्यत्वप्रदर्शनार्थः 'माहणस्स'त्ति मा हन २ इत्येवमादिशति स्वयं स्थूलप्राणातिपातादिनिवृत्तत्वाद् यः स माहनः यद्वा ब्रह्मणो–ब्रह्मचर्यस्य देशतः सद्भावात् ब्राह्मणो–देशविरतस्तस्य वा यद्वा श्रमणः–साधुस्तस्य माहनः–परमगीतार्थस्तस्य वा 'अंतिए'त्ति समीपे एकमप्यास्तामनेकं आर्यं–आराद् यातं पापकर्मभ्य इत्यार्यं अत एव धार्मिकमिति सुवचनं–शोभनवाक्यं श्रुत्वा–आकर्ण्य निशम्य–मनसा अवधार्य 'तउ'त्ति तदनन्तरमेव सः–गर्भस्थजन्तुः भवति–जायते 'तिव्वसं०' तीव्रसंवेगेन–भृशं दुःखलक्षाकुलभवभयेन सञ्जाता–सम्यगुत्पन्ना श्रद्धा–श्रद्धानं धर्मादिषु यस्य स तीव्रसंवेगसञ्जातश्रद्धः 'तिव्वध०' तीव्रो यो धर्मानुरागः–धर्मबहुमानस्तेन रक्त इव–रञ्जित इव यः स तीव्रधर्मानुरागरक्तः स गर्भस्थः वैराग्यवान् जीवः 'णं' वाक्यालङ्कारे 'धम्मकामए'त्ति धर्मे–श्रुतचारित्रलक्षणे कामो–वाञ्छामात्रं यस्य स धर्मकामकः १ पुण्ये–तत्फलभूते शुभकर्मणि कामो यस्य स पुण्यकामकः स्थानाङ्गे तु–अन्न१पान२वस्त्रा३ऽऽलय४शयना५ऽऽसन६मनो७वचन८काय९लक्षणं नवविधं पुण्यं प्रतिपादितं जगदीश्वरेण भगवतेति २, स्वर्गे–देवलोके कामो यस्य स स्वर्गकामकः ३ मोक्षे–शिवे अनन्तानन्तसुखमये कामो यस्य स मोक्षकामकः ४, एवमग्रेऽपि, नवरं काङ्क्षा–गृद्धिरासक्तिरित्यर्थः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८] + ||१७..||

दीप अनुक्रम [२४]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

धर्मे काङ्क्षा सञ्जाता अस्येति धर्मकाङ्क्षितः १ पुण्यकाङ्क्षितः २ स्वर्गकाङ्क्षितः ३ मोक्षकाङ्क्षितः ४ पिपासेव पिपासा–प्राप्तेऽपि धर्मेऽतृप्तिः धर्मपिपासा सा सञ्जाता अस्येति धर्मपिपासितः १ पुण्यपिपासितः २ स्वर्गपिपासितः ३ मोक्षपिपासितः ४, 'तच्चित्ते' इत्यादिअष्टविशेषणानि धर्मपुण्यस्वर्गमोक्षे शुभानि वाच्यानि, तच्चित्तः १ तन्मनाः २ तल्लेश्यः ३ तदध्यवसितः ४ तत्तीव्राध्यवसायः ५ तदर्थोपयुक्तः ६ तदर्पितकरणः ७ तद्भावनाभावितः ८, 'एयंसि णं'ति एतस्मिन्नन्तरे–धर्मध्यानावसरे कालं–मरणं 'करिज्ज'त्ति कुर्यात् तदा देवलोकेषु उत्पद्यते, 'से' अथैतेनार्थेन हे गौतम! एवमस्माभिः प्रोच्यते–अस्ति एककः कश्चित् स्वर्गे उत्पद्यते 'अत्थि'त्ति अस्ति एककः कश्चित् नोत्पद्यते इति ॥ गर्भाधिकारे पुनर्गौतमस्वामी श्रीमहावीरं प्रश्नयति—

जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा पासिल्लए वा अंबखुज्जए वा अच्छिज्ज वा चिट्ठिज्ज वा निसीइज्ज वा तुयट्टिज्ज वा आसइज्ज वा सइज्ज वा माउए सुयमाणीए सुयइ जागरमाणीए जागरइ सुहियाए सुहिओ भवइ दुहियाए दुक्खिओ भवइ?, हंता गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे उत्ताणए वा जाव दुक्खिओ भवइ ॥–(सूत्रं ९) थिरजायंपिहु रक्खइ सम्मं सारक्खई तओ जणणी। संवाहई तुयट्टइ रक्खइ अप्पं च गब्भं च ॥ १ ॥ (१८) अणुसुयइ सुयंतीए जागरमाणीए जागरइ गब्भो। सुहियाए होइ सुहियो दुहियाए दुक्खिओ होइ ॥ २ ॥ (१९) उच्चारे पासवणे खेलं संघाणओवि से नत्थि। अट्ठीट्ठीमिंजनहकेसमंसुरोमेसु परिणामो ॥ ३ ॥ (२०) एवं बुंदिमइगओ गब्भे संवसइ दुक्खिओ जीवो। परमतमिसंधकारे अमिज्झभरिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भाधिकारे विविध प्रश्नोत्तर

पएसंमि ॥ ४ ॥ (२१) आउसो ! तओ नवमे मासे तीए वा पडुप्पन्ने वा अणागए वा चउण्हं माया अण्णयरं पयायइ, तंजहा–इत्थिं वा इत्थिरूवेणं १ पुरिसं वा पुरिसरूवेणं २ नपुंसगं वा नपुंसगरूवेणं ३ बिंबं वा बिंबरूवेणं ४ (सू० १०) अप्पं सुक्कं बहुं उउयं, इत्थी तत्थ जायइ १ । अप्पं उयं बहुं सुक्कं, पुरिसो तत्थ जायइ २ ॥१॥ (२२) दुण्हंपि रत्तसुक्काणं, तुल्लभावे नपुंसओ ३ । इत्थिउयसमाओगे, बिंबं तत्थ जायइ ४ ॥२॥ (२३) अह णं पसवणकालसमयंसि सीसेण वा पाएहिं वा आगच्छइ समागच्छइ तिरियमागच्छइ विणिघायमावज्जइ (सू०११)

कोई पुण पावकारी बारस संवच्छराइं उक्कोसं । अच्छइ उ गब्भवासे असुइप्पभवे असुइयंमि ॥१॥ (२४) जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स वा पुणो । तेण दुक्खेण संमूढो, जाइं सरइ नऽप्पणो ॥२॥ (२५) वीसरसरं रसंतो जो सो जोणीमुहाओ निप्फिडइ । माऊए अप्पणोऽविय वेयणमउलं जणेमाणो ॥ ३ ॥ (२६) गब्भघरयंमि जीवो कुंभीपागंमि नरयसंकासे । वुत्थो अमिज्झमज्झे असुइप्पभवे असुइयंमि ॥ ४ ॥ (२७) पित्तस्स य सिंभस्स य सुक्कस्स य सोणियस्स चिय मज्झे । मुत्तस्स पुरीसस्स य जायइ जह वच्चकिमिउव्व ॥ ५ ॥ (२८) तं दाणि सोयकरणं केरिसयं होइ तस्स जीवस्स ? । सुक्करुहिरागराओ जस्सुप्पत्ती सरीरस्स ॥ ६ ॥ (२९) एयारिसे सरीरे कलमलभरिए अमिज्झसंभूए । निययं विगणिज्जंतं सोयमयं केरिसं तस्स ? ॥ ७ ॥ (३०)

'जीवे णं भंते! ग०' जीवो हे भदन्त! गर्भगतः सन् 'उत्ताणए वे'ति उत्तानको वा सुप्तोन्मुखो वेत्यर्थः 'पासिल्लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व'त्ति पार्श्वशायी वा 'अंबखुज्जए व'त्ति आम्रफलवत् कुब्ज इति 'अच्छिज्ज'त्ति आसीनः सामान्यतः, एतदेव विशेषतः उच्यते–'चिट्ठेज्ज व'त्ति ऊर्ध्वस्थानेन 'निसीज्जए वे'ति निषदनस्थानेन 'तुयट्टेज्ज व'त्ति शयीत निद्रया इति वेति 'आसइज्ज व'त्ति आश्रयति गर्भमध्यप्रदेशं 'सइज्ज व'त्ति शेते निद्रां विनेति, मात्रा मातरि वा 'सुयमाणीए'त्ति शयनं कुर्वत्या कुर्वत्यां वा 'सुयइ'त्ति स्वपिति निद्रां करोतीत्यर्थः, 'जागरमाणीए'त्ति जाग्रत्या–जागरणं कुर्वत्या कुर्वत्यां वा जागर्त्ति, निद्रानाशं कुरुते इत्यर्थः, सुखितायां सुखितो भवति, दुःखितायां दुःखितो भवति, 'हन्ता गोयम ! त्ति' हन्त इति कोमलामन्त्रणार्थो दीर्घत्वं च मागधदेशीप्रभवं, उभयत्रापि 'जीवे णं गब्भगए समाणे' इत्यादेः प्रत्युच्चारणं तु स्वानुमतत्वप्रदर्शनार्थं, वृद्धाः पुनराहुः–'हंता गोयमा !' इत्यत्र हन्त इति एवमेतदिति अभ्युपगमवचनं, यदनुमतं तत्प्रदर्शनार्थं 'जीवे णं गब्भगए' इत्यादि प्रत्युच्चारितमिति, हे गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् उत्तानको वा यावद्दुःखितो भवतीति । अथ पूर्वोक्तं पद्येन गाथाचतुष्टयेन दर्शयन्नाह–'थिरजा०' स्थिरजातं–स्थिरीभूतं 'रक्खइ'त्ति रक्षति–सामान्येन पालयति ततः सा जननी तं सम्यग्–यत्नादिकरणेन रक्षति 'संवाहइ'त्ति संवहति गमनाऽऽगमनादिप्रकारेण 'तुयट्टइ'त्ति त्वग्वर्त्तयति–स्वापयति रक्षति–आहारादिना पालयति आत्मानं च गर्भं चेति ॥ १ ॥ 'अणु०'अनुस्वपिति–अनुशेते 'सुयंतीए'त्ति स्वपत्यां सत्यां जाग्रत्यां जागर्ति गर्भः–उदरस्थजन्तुः जनन्यां सुखितायां सुखितो भवति दुःखितायां दुःखितो भवति ॥२॥'उच्चारो०' उच्चारो–विष्ठा प्रश्रवणं–मूत्रं खेलो–निष्ठीवनं 'सिंघाणं'ति नासिकाश्लेष्मापि 'से' तस्य गर्भस्थस्य नास्तीति, जननीजठरस्थो जीव आहारत्वेन तु यद् गृह्णाति तदस्थ्यस्थिमिंजनखकेशश्मश्रुरोमेषु (मसु) पूर्वव्याख्यातेषु 'परिणामो'त्ति

गर्भाव-स्थादि-

॥ १४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणामयतीत्यर्थः ॥३॥ 'एवं बु०' एवमुक्तप्रकारेण 'बुंदि'मिति शरीरं अतिगतः–प्राप्तः सन् गर्भे–जननीकुक्षौ संवसति–संतिष्ठते चारकगृहे चौरवत्, 'दुक्खिओ जीवो'त्ति अग्निवर्णाभिः सूचीभिः भिद्यमानस्य जन्तोः यादृशं दुःखं जायते ततोऽप्यष्टगुणं यद् दुःखं भवति तेन सदृशेन दुःखेन दुःखितो भवति जीवः गर्भे, किंभूते गर्भे?–तमसा अन्धकारं यत्र तमोऽन्धकारः परमश्चासौ तमोऽन्धकारश्च परमतमोऽन्धकारः महान्धकारव्याप्त इत्यर्थः तस्मिन्, अमेध्यभृते–विष्ठापूर्णे प्रदेशे–जीववसनस्थानके ॥ ४ ॥ इति। 'आउसो ! तओ' इत्यादि, हे आयुष्मन् !–हे इन्द्रभूते ! ततः–अष्टमासानन्तरं नवमे मासे अतीते वा–अतिक्रान्ते वा प्रत्युत्पन्ने वा–वर्त्तमाने वा अनागते वा–अप्राप्ते वा 'चउण्हं' चतुर्णां स्त्र्यादिरूपाणां वक्ष्यमाणानां माता–जननी अन्यतरत्–चतुर्णां मध्ये एकतरं 'पयायइ'त्ति प्रसूते 'तंजह'त्ति तत् पूर्वोक्तं यथा-स्त्रियं वा स्त्रीरूपेण–स्त्र्याकारेण प्रसूते १ पुरुषं वा पुरुषरूपेण–पुरुषाकारेण २ नपुंसकं वा नपुंसकरूपेण–नपुंसकाकारेण ३ बिम्बं वा बिम्बरूपेण–बिम्बाकारेण, बिम्बमिति गर्भप्रतिबिम्बं गर्भाकृतिरार्त्तवपरिणामो नतु गर्भ एव ४, एते कथं जायन्त ? इत्याह–'अप्पं' अल्पं शुक्रं 'बहुउउय'त्ति बहुकं–प्रभूतं 'उयं'ति ओजः–आर्त्तवं स्त्री तत्र गर्भाशये जायते–उत्पद्यते १, अल्पं–ओजः बहु शुक्रं पुरुषस्तत्र जायते २, द्वयोरपि रक्तशुक्रयोः–रुधिरवीर्ययोः तुल्यभावे–समत्वे सति नपुंसको जायते ३, 'इत्थी'त्ति स्त्रियाः–नार्या 'ओय'त्ति ओजसः 'समाओगे'त्ति समायोगः–वातवशेन तत्स्थिरीभवनलक्षणं स्त्र्योजःसमायोगस्तस्मिन् सति बिम्बं तत्र–गर्भाशये प्रजायते ४ इति । 'अह ण' मित्यादि, अथानन्तरं 'णं' वाक्यालङ्कारे प्रसवकालसमये–जन्मकालावसरे शीर्षेण वा–मस्तकेन वा पादाभ्यां वा–चरणाभ्यां वा आगच्छति 'समागच्छ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इ'त्ति सममू–अविषममागच्छति'सम्मं आगच्छइ'त्ति पाठे सम्यक्–अनुपघातहेतुना आगच्छति–मातुरुदरात् योन्या-निष्क्रामति, 'तिरियमागच्छइ'त्ति तिरश्चीनो भूत्वा जठरान्निर्गन्तुं प्रवर्त्तते यदि तदा विनिर्घातं–मरणमापद्यते निर्गमा-भावादिति । 'कोइ पुण०' कोऽपि पुनः पापकारी–ग्रामघातरामाजठरविदारणजिनमुनिमहाशातनाविधायी वातपित्तादिदू-षितो देवादिस्तम्भितो वेति शेषः, द्वादश संवत्सराणि उत्कृष्टतः 'अच्छइ'त्ति तिष्ठति, तुशब्दात् गर्भोक्तं प्रबलं दुःखं सहमा-नोऽवतिष्ठते गर्भवासे–गर्भगृहे, किम्भूते ?–अशुचिप्रभवे अशुचिके–अशुच्यात्मके इति ॥ १ ॥ ननु नवमासमात्रान्तरित-मपि प्राक्तनं भवं सामान्यजीवः किं न स्मरतीत्याह–'जायमा०' गाथा, जायमानस्य–गर्भान्निःसरतः तत्र उत्पद्यमानस्य वा यद्दुःखं भवति वा–अथवा पुनर्म्रियमाणस्य यद्दुःखं भवति तेन दारुणदुःखेन संमूढो–महामोहं प्राप्तः जातिं–प्राक्तनभवं आत्मीयं–स्वकीयं मूढात्मा प्राणी न स्मरति–कोऽहं पूर्वभवे देवादिकोऽभवमिति न जानातीति ॥ २ ॥ 'वीसर' गाथा, 'वीसर'त्ति परमकरुणोत्पादकं'सरं'ति'स्वरं–ध्वनिं 'रसंतो'त्ति भृशं कुर्वन्स गर्भस्थो जीवः योनिमुखात् 'निप्फिडइ'त्ति निष्क्रामति मातुः आत्मनोऽपिच वेदनामतुलां जनयन्–उत्पादयन् ॥ ३ ॥ 'गब्भत्थ' गाथा, गर्भगृहे जीवः कुंभीपाके–कोष्ठिकाकृतितप्तलोहभाजनसदृशे नरकसदृशे–नारकोत्पत्तिस्थानतुल्ये 'वुच्छो'त्ति उषितः–स्थितः, अमेध्यं–गूथं मध्ये यस्य गर्भगृहस्य सः अमेध्यमध्यस्तस्मिन् अशुचिप्रभवे–जम्बालाद्युद्भवे अशुचिके–अपवित्रस्वरूपे ॥ ४ ॥ 'पित्त०' पित्तस्य 'सिंभस्य' श्लेष्मणः शुक्रस्य शोणितस्य मूत्रस्य पुरीषस्य–विष्ठायाः मध्ये–मध्यभागे जायते–उत्पद्यते, क इव ?–'वच्चकि-म्मिउव्व'त्ति वर्चस्वकृमिवत्–विष्ठानीलंगुवत्, यथा कृमिः–द्वीन्द्रियजन्तुविशेषः उदरमध्यस्थविष्ठायामुत्पद्यते तथा जीवोऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [९-११] + ॥१८--३०॥

दीप अनुक्रम [२५-४२]

पीति ॥ ५ ॥ ‘तं दाणि०’ तत् ‘दाणि’ति इदानीं–साम्प्रतं शौचकरणं–शरीरसंस्कारकरणं कीदृशं भवति तस्य–गर्भनिर्गतस्य जीवस्य ?, यस्य भङ्गुरशरीरस्योत्पत्तिः–प्रादुर्भावः शुक्ररुधिराकरात्–वीर्यरुधिरखनेः वर्त्तत इति ॥ ६ ॥ ‘एया०’ एतादृशे शरीरे कलमलभृते–उदरस्थजलबटकदमादिपूर्णे अमेध्यसम्भृते–विष्ठाकीर्णोदरसम्भृते **‘निययं विगणिज्जंत’** मिति पदद्वये ‘सप्तम्या द्वितीये’ (श्रीसि. अ० पा. ३ सू. १३७) ति सप्तम्यर्थे द्वितीया, निजके–आत्मीये **‘विगणिज्जंत’**मिति आत्मपरेषां जुगुप्सायोग्ये शौचमतं–पवित्रत्वाङ्गीकारलक्षणं, यथा मयाऽस्य स्नानचन्दनादिना पवित्रत्वं विधेयमिति, यद्वा शौचेन–वस्त्रचन्दनाभरणादिना मदो–गर्वो यत्र सनत्कुमारचक्रिवत् तत् शौचमदं यथा कीदृशं मम शरीरं शोभतेऽलङ्कारादिनेति, यदिवा एवंविधे शरीरे कुत्रापि रोगादिना विनष्टे शोकमतं–शोकाङ्गीकारकरणं यथा–हा मम सुन्दरं शरीरं स्फोटकादिना विनष्टमिति, कीदृशं तस्य जीवस्येति ॥ ७॥ अथ जीवानां ग्रन्थमुखे द्वितीयगाथया सूचिता दश दशाः निरूप्यन्ते–

आउसो ! एवं जायस्स जंतुस्स कमेण दस दसा एवमाहिज्जंति तंजहा–बाला १ किड्डा २ मंदा ३ बला य ४ पण्णा य ५ हायणि ६ पवंचा ७ । पब्भारा ८ मुम्मुही ९ सायणी य दसमा य १० कालदसा ॥ १ ॥ (३१) जायमित्तस्स जंतुस्स, जा सा पढमिया दसा । न तत्थ सुहं दुक्खं वा, नहु जाणंति बालया ॥ १ ॥ (३२) बीईयं च दसं पत्तो, नाणाकीलाहिं कीडइ । न य से कामभोगेसु, तिव्वा उप्पज्जई रई ॥ २ ॥ (३३) तइयं च दसं पत्तो, पंचकामगुणे नरो । समत्थो भुंजिउं भोए, जइ से अत्थि घरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवानां दश-दशाणाम् वर्णनं

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

धुवा ॥ ३ ॥ (३४) चउत्थी उ बला नाम, जं नरो दसमस्सिओ । समत्थो बलं दरिसेउं, जइ भवे निरुवहवो ॥ ४ ॥ (३५) पंचमी उ दसं पत्तो, आणुपुवीएँ जो नरो । समत्थोऽत्थं विचिंतेउं, कुडुंबं चाभिगच्छइ ॥ ५ ॥ (३६) छट्ठीओ हायणी नामा, जं नरो दसमस्सिओ । विरज्जइ उ कामेसुं, इंदिएसु य हायइ ॥ ६ ॥ (३७) सत्तमी य पवंचा ओ, जं नरो दसमस्सिओ । निच्छुभइ चिक्कणं खेलं, खासई य खणे खणे ॥ ७ ॥ (३८) संकुइयवलीचम्मो, संपत्तो अट्ठमीदसं । नारीणं च अणिट्ठो य, जराए परिणामिओ ॥ ८ ॥ (३९) नवमी मुम्मुही नाम, जं नरो दसमस्सिओ । जराघरे विणस्संते, जीवो वसइ अकामओ ॥ ९ ॥ (४०) हीणभिन्नसरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ । दुब्बलो दुक्खिओ सुयई, संपत्तो दसमीं दसं ॥ १० ॥ (४१)

'आउसो ए०' हे आयुष्मन्! एवम्–उक्तप्रकारेण जातस्य–उत्पन्नस्य जन्तोः–जीवस्य क्रमेण–अनुक्रमेण दश दशा–दशावस्थाः, दशवर्षप्रमाणा प्रथमा दशा–अवस्था १ दशवर्षप्रमाणा द्वितीया दशाऽवस्था २ इत्येवं दश दशाः, एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहिज्जंती'ति आख्यायन्ते–कथ्यन्ते, तद्यथा—'बाला १ किड्डा २' इत्यादिगाथा, बालस्येयमवस्था धर्मधर्मिणोरभेदात् बाला १, क्रीडाप्रधाना दशा क्रीडा २, मन्दो–विशिष्टबलबुद्धिकार्योपदर्शनासमर्थो भोगानुभूतावेव समर्थो यस्यां दशायां सा मन्दा ३, यस्यां पुरुषस्य बलं स्यात् सा बलयोगात् बला ४, प्रज्ञा–वाञ्छितार्थसम्पादनकुटुम्बाभिवृद्धिविषया बुद्धिः तद्योगात् दशा प्रज्ञा ५, हापयति पुरुषस्येन्द्रियाणि मनाक् स्वार्थग्रहणाप्रभूणि करोतीति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हापनी ६, प्रपञ्चयति–विस्तारयति खेलकासादि इति प्रपञ्चा ७, प्राग्भारं–ईषदवनतमुच्यते तदिव गात्रं यस्यां सा प्राग्भारा ८, मोचनं–मुक् जराराक्षसीसमाक्रान्तशरीरगृहस्य मोचनं तं प्रति मुखं–आभिमुख्यं यस्यां सा मुन्मुखी ९, स्वापयति–निद्रायत्तं करोति सा शायिनी दशमी १०, एताः कालोपलक्षिताः दशाः कालदशाः उच्यन्ते इति ॥१॥ अथ सूत्रेणैव दश दशा दर्शनन्नाह'—'जायमि०' श्लोकः, जातमात्रस्य जन्तोः–जीवस्य या सा प्रथमिका दशा–दशवर्षप्रमाणावस्था 'तत्थ'त्ति तस्यां प्रथमदशायां प्रायेण सुखं दुःखं वा नेति–नास्ति, तथाऽऽत्मपरेषां सुखदुःखं नैव जानंति बालकाः–जातिस्मरणादिज्ञानविकला इति ॥ १ ॥ 'बीईयं च' द्वितीयां दशां प्राप्तो जीवो नानाक्रीडाभिः क्रीडति–क्रीडां करोतीत्यर्थः, 'से' तस्य द्वितीयाऽवस्थावर्त्तिनो जीवस्य कामौ च–शब्दरूपे भोगाश्च–गन्धरसस्पर्शाः कामभोगास्तेषु तीव्रा–प्रबला रतिः–मन्मथवाञ्छा नोत्पद्यते न प्रकटीभवतीत्यर्थः ॥ २ ॥ 'तइयं च' तृतीयां दशां प्राप्तः पञ्चकामगुणे–शब्दरूपरसगन्धस्पर्शलक्षणे नरो–मनुष्यः आसक्तो भवति, तथा तदा भोगान् भोक्तुं समर्थो भवति यदि 'से' तस्य जीवस्य अस्तीति–सत्तारूपतया वर्त्तते गृहे–स्वावासे 'धुवे'ति राजाद्युपद्रवाभावेन निश्चला समृद्धिरिति शेषः ॥ ३ ॥ 'चउ०' चतुर्थीं बलानाम्नी दशा वर्तते यां बलानाम्नीं दशामाश्रितो नरः समर्थो भवति बलं–स्ववीर्यं द्रष्टुं (दर्शयितुं) फलिहमल्लवत्, यदि भवेत् निरुपद्रवो–रोगादिक्लेशरहितः, अन्यथा मात्स्यिकमल्लवत् विनाशं यातीति ॥४॥ 'पंचमी उ' पञ्चमीं दशां प्राप्तः आनुपूर्व्या–परिपाट्या यो नरः स समर्थो भवति अर्थं विचिन्तयितुं–द्रव्यचिन्तां कर्तुं च पुनः कुटुम्बं प्रति अभिगच्छति–कुटुंबचिन्तायां प्रवर्त्तते इत्यर्थः ॥५॥ 'छट्ठी उ' षष्ठी हापनीनाम्नी दशा वर्त्तते,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यां हापनीं दशां नर आश्रितः 'विरज्जइ'त्ति प्रवाहेण विरक्तो भवति, केभ्यः ?–काम्यंत इति कामाः–कन्दर्पाभिलाषास्तेभ्यः इन्द्रियेषु–श्रवणघ्राणचक्षुर्जिह्वास्पर्शनलक्षणेषु हीयते–हानिं गच्छतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ 'सत्तमी०' सप्तमी प्रपद्या दशा यां दशां आश्रितः 'निच्छुभइ'त्ति बहिर्निक्षिपति यत्र कुत्रापि बहिर्निस्सारयति चिक्कणं–पिच्छिलं चेपकतुल्यमित्यर्थः 'खेलं' श्लेष्माणं च पुनः क्षणं २–वारं २ 'खासइ'त्ति–खासितं करोतीत्यर्थः ॥ ७ ॥ 'संकुइ०' अष्टमीं दशां प्राप्तो जीवः सङ्कुचितवलिचर्मा भवति, च पुनः जरया परिणमितो–व्याप्तः स्यात्, नारीणां स्वपरस्त्रीणां अनिष्टो भवति, श्रावस्तीपुरीवास्तव्यजिनदत्तश्राद्धवदिति ॥ ८ ॥ नवमी मुन्मुखी नाम्नी वर्त्तते, यां मुन्मुखीं दशां नरः आश्रितः 'जराघरे' जरागृहे शरीरे विनश्यति सति जीवोऽकामको–विषयादिवाञ्छारहितो वसति ॥ ९ ॥ 'हीण०' हीनस्वरः–लघुध्वनिः भिन्नस्वरः–स्वभावस्वरादन्यस्वरः दीनः–दीनत्वं गतः विपरीतः–पूर्वावस्थातः विचित्तः विचित्रो वा–नानास्वरूपः दुर्बलः–कृशाङ्गः दुःखितो–रोगादिपीडालक्षव्याप्तः एवंविधो जीवः स्वपिति स्वशरीरे स्वगृहे वा संप्राप्तः, कां ?–दशमीं दशामिति १० ॥ यस्यां यद् भवति तदाह—

दसगस्स उवक्खेवो वीसइवरिसो उ गिण्हई विज्जं। भोगा य तीसगस्स य चत्तालीसस्स विन्नाणं ॥११॥(४२)
पण्णासगस्स चक्खू हायइ सट्ठिक्कयस्स बाहुबलं। भोगा य सत्तरिस्स य असीइगस्सा य विन्नाणं ॥ १२ ॥ (४३)
नउई नमइ सरीरं वाससए जीवियं चयइ। कित्तिओऽत्थ सुहो भागो दुहो भागो य कित्तिओ ?॥१३॥(४४)(सूत्रं१२)
जो वाससयं जीवइ, सुही भोगे पभुंजइ। तस्सावि सेविउं सेओ, धम्मो य जिणदेसिओ। १४। (४५) किं पुण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सपच्चवाए, जो नरो निच्चदुक्खिओ ?। सुदुयरं तेण कायव्वो, धम्मो य जिणदेसिओ ॥ १५ ॥ (४६) नंदमाणो चरे धम्मं, वरं मे लट्ठतरं भवे। अनंदमाणोऽवि चरे, मा मे पावतरं भवे ॥ १६ ॥ (४७) नवि जाई कुलं वावि, विज्जा वाऽवि सुसिक्खिया। तारे नरं व नारिं वा, सव्वं पुन्नेहिं वड्ढई ॥ १७ ॥ (४८) पुन्नेहिं हीयमाणेहिं, पुरिसागारोऽवि हायई। पुन्नेहिं वड्ढमाणेहिं, पुरिसगारोऽवि वड्ढई ॥ १८ ॥ (४९)

'दसग०' दशकस्य–दशवर्षप्रमाणस्य जीवस्य 'उवक्खेवो' त्ति वालोत्पाटनं मुण्डनमिति लोकोक्तिः, उपलक्षणत्वादन्यदपि प्रथमावस्थाभवो महोत्सवविशेषो ज्ञेय इति १, विंशतिवर्षको–द्वितीयावस्थावर्त्ती विद्यां गृह्णातीति २, त्रिंशत्कस्य भोगा भवन्ति ३ चत्वारिंशत्कस्य विज्ञानं भवति ४ ॥ ११ ॥ 'पन्ना०' पञ्चाशत्कस्य जीवस्य 'चक्खु'त्ति चक्षुर्बलं हीयते ५, षष्टिकस्य बाहुबलं हीयते ६, सप्ततिकस्य भोगा हीयन्ते ७, अशीतिकस्य विज्ञानं हीयते ८ ॥ १२ ॥ 'नउइ०' नवतिकस्य शरीरं नमति–वक्रं भवतीत्यर्थः ९, वर्षशते सति जीवितं त्यजति जीवः१० ॥ 'कित्तिउऽत्थ' अत्र–शतवर्षे जीवानां सुखभागः कीर्त्तितो–निरूपितोऽस्तीति, चशब्दोऽप्यर्थे दुःखभागोऽपि कीर्तितोऽस्तीति, यद्वा अत्र 'कित्तिओ'त्ति कियान् सुखभागो वर्त्तते कियान् दुःखभागो वर्त्तते ॥ १३ ॥ अथ शतवर्षायुष्कस्य जीवस्यान्यस्यापि उपदेशं ददातीति 'जो वास०' यो जीवो वर्षशतं जीवति प्राणान् धारयतीत्यर्थः, च पुनः सुखी भोगान् भुंक्ते तस्यापि जीवस्य सेवितुं–सदा कर्तुं श्रेयो–मङ्गलं धर्मो–दुर्गतिपतज्जीवाधारः जिनदेशितः–केवलिना भाषितः ॥ १४ ॥ 'किं पुण०' किं पुनः सप्रत्यवाये–सकष्टे आयुषि काले वा सति इति शेषः, यो नरो नित्यदुःखितः–सदा दुःखाकुलो भवेत्?, तेन दुःखितजीवेन जिनद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

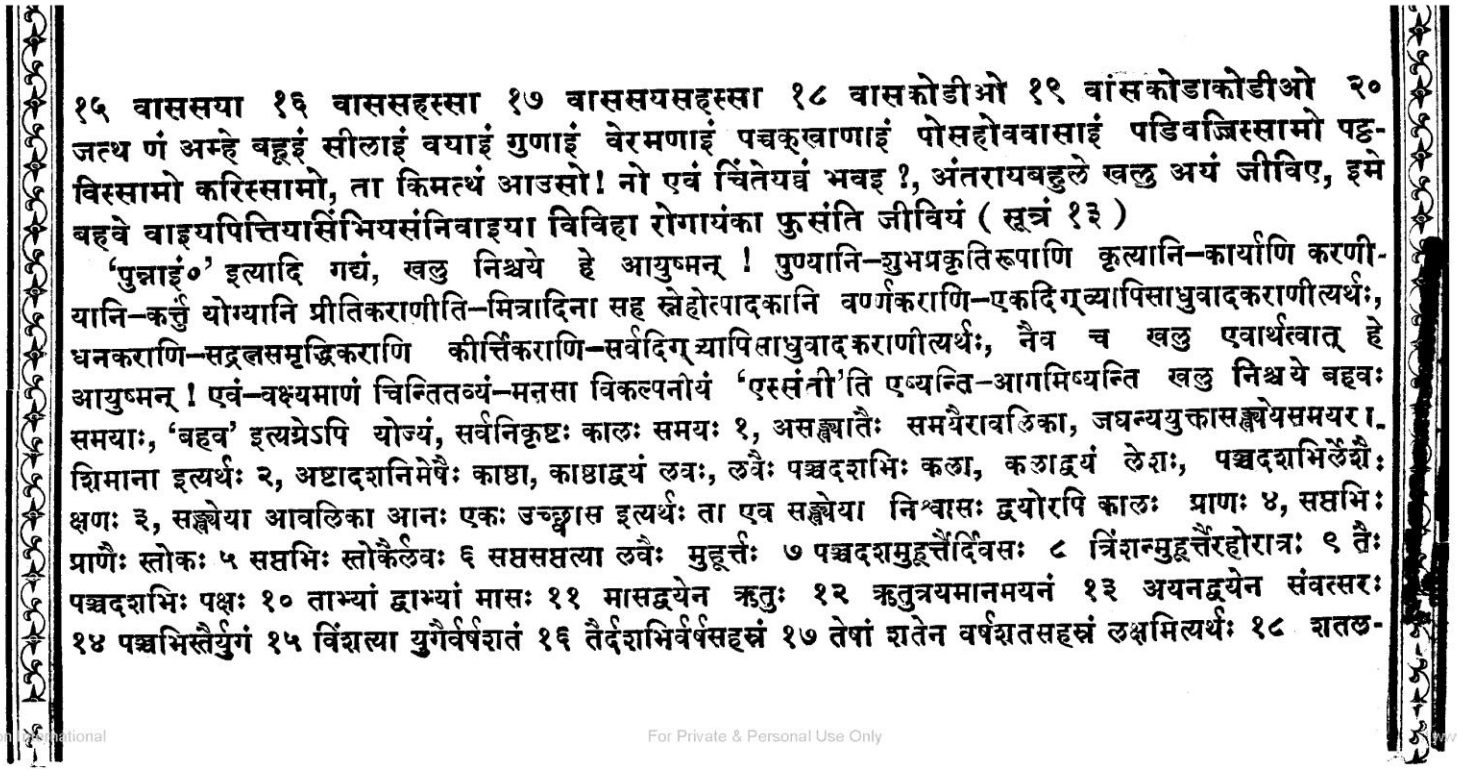
शितो धर्मः सुष्ठुतरं–विशेषतः कर्त्तव्यो नन्दिषेणपूर्वभवब्राह्मणजीववदिति ॥ १५ ॥ 'नंदमा०' नन्दमानः–सौख्यं भुञ्जानो धर्मं जिनोक्तं चरेत्–कुर्यादित्यर्थः, किंभूतं धर्मं?–वरं–श्रेष्ठं शिवप्रापकत्वात्, कया भावनया धर्मं कुर्यादित्याह–मे–मम अत्र भवे परभवे च 'लष्टतरं' अतिकल्याणं भवेदिति भावनयेति, अनन्दमाणोऽवि–अनन्दन्नपि सौख्यमभुञ्जानोऽपि धर्मं कुर्यात्, कया भावनयेत्याह–मे–मम पापतरं मा भवतु–एकं तावदहं पापफलं भुंजे पुनर्धर्मा करणे मा भवतु मेऽतिपापफलमिति भावनयेति ॥ १६ ॥ किंच–'नवि जा०' नरं–पुरुषं वाशब्दाद् बालादिभेदभिन्नं नारीं–स्त्रियं वाशब्दात् क्लीबं जातिः–मातृपक्षः ब्राह्मणादिका जातिर्वा कुलं–पितृपक्षः उग्रभोगादिकं कुलं वा विद्या वा सुशिक्षिता–सदभ्यस्ता वा नापीति–नैव तारयति–भवाब्धितीरं प्रापयति, सर्वं स्वर्गापवर्गादिसौख्यं पुण्यैः–संविग्नसाधुदानादिभिर्वर्धते–प्राप्यते इत्यर्थः, अत्रान्यत्रापि वकारचकारापिशब्दाः यथायोगं पूरणसमुच्चयादिकेऽर्थे ज्ञातव्या इति ॥ १७ ॥ 'पुन्नेहिं' पुण्यैः–अन्नपानवस्त्रपीठफलकौषधादिभिः साधुदानादिभिरुपार्जितशुभफलैः हीयमानैः–क्षयं गच्छद्भिः पुरुषकारः–पुरुषाभिमानः अपिशब्दादन्यदपि यशःकीर्त्तिस्फीतिलक्ष्म्यादिकं हीयते–शनैः शनैः क्षयं यातीत्यर्थः, पुण्यैः वर्द्धमानैः पुरुषकारोऽपि वर्द्धते ॥ १८ ॥

पुन्नाइं खलु आउसो! किचाइं करणिज्जाइं पीइकराइं वन्नकराइं धणकराइं कित्तिकराइं, नो य खलु आउसो! एवं चिंतियवं–एस्संति खलु बहवे समया १ आवलिया २ खणा ३ आणापाणू ४ थोवा ५ लवा ६ मुहुत्ता ७ दिवसा ८ अहोरत्ता ९ पक्खा १० मासा ११ रिऊ १२ अयणा १३ संवच्छरा १४ जुगा

पुण्यकार्ये-ऽनालस्यं सू. १३

॥ १८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



१५ वाससया १६ वाससहस्सा १७ वाससयसहस्सा १८ वासकोडीओ १९ वासकोडाकोडीओ २० जत्थ णं अम्हे बहूइं सीलाइं वयाइं गुणाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं पडिवज्जिस्सामो पट्ठ-विस्सामो करिस्सामो, ता किमत्थं आउसो! नो एवं चिंतेयव्वं भवइ ?, अंतरायबहुले खलु अयं जीविए, इमे बहवे वाइयपित्तियासिंभियसंनिवाइया विविहा रोगायंका फुसंति जीवियं (सूत्रं १३)

'पुन्नाइं०' इत्यादि गद्यं, खलु निश्चये हे आयुष्मन् ! पुण्यानि–शुभप्रकृतिरूपाणि कृत्यानि–कार्याणि करणीयानि–कर्तुं योग्यानि प्रीतिकराणीति–मित्रादिना सह स्नेहोत्पादकानि वर्णकराणि–एकदिग्व्यापिसाधुवादकराणीत्यर्थः, धनकराणि–सद्रत्नसमृद्धिकराणि कीर्त्तिकराणि–सर्वदिग्व्यापिसाधुवादकराणीत्यर्थः, नैव च खलु एवार्थत्वात् हे आयुष्मन् ! एवं–वक्ष्यमाणं चिन्तितव्यं–मनसा विकल्पनीयं 'एस्संती'ति एष्यन्ति–आगमिष्यन्ति खलु निश्चये बहवः समयाः, 'बहव' इत्यग्रेऽपि योज्यं, सर्वनिकृष्टः कालः समयः १, असङ्ख्यातैः समयैरावलिका, जघन्ययुक्तासङ्ख्येयसमयरा-शिमाना इत्यर्थः २, अष्टादशनिमेषैः काष्ठा, काष्ठाद्वयं लवः, लवैः पञ्चदशभिः कला, कलाद्वयं लेशः, पञ्चदशभिर्लेशैः क्षणः ३, सङ्ख्येया आवलिका आनः एकः उच्छ्वास इत्यर्थः ता एव सङ्ख्येया निश्वासः द्वयोरपि कालः प्राणः ४, सप्तभिः प्राणैः स्तोकः ५ सप्तभिः स्तोकैर्लवः ६ सप्तसप्तत्या लवैः मुहूर्त्तः ७ पञ्चदशमुहूर्त्तैर्दिवसः ८ त्रिंशन्मुहूर्त्तैरहोरात्रः ९ तैः पञ्चदशभिः पक्षः १० ताभ्यां द्वाभ्यां मासः ११ मासद्वयेन ऋतुः १२ ऋतुत्रयमानमयनं १३ अयनद्वयेन संवत्सरः १४ पञ्चभिस्तैर्युगं १५ विंशत्या युगैर्वर्षशतं १६ तैर्दशभिर्वर्षसहस्रं १७ तेषां शतेन वर्षशतसहस्रं लक्षमित्यर्थः १८ शतल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१३] + ||४९..||

दीप अनुक्रम [६३]

तं. वै. प्र. ॥ १९ ॥

क्षैर्वर्षैर्वर्षकोटिः १९वर्षकोटिः वर्षकोटिभिः गुण्यते वर्षकोटीकोटिः भवति १०००००००००००००० इति २० ॥ यत्र समयावलिकादौ 'णं' वाक्यालङ्कारे 'अम्हे'त्ति वयं बहूनि–प्रभूतानि शीलानि–समाधानानि व्रतानि–महाव्रतानि 'गुणा'इति गुणान्–विनयादीन्, अत्र 'गुणाद्याः क्लीबे वे' (श्रीसि. अ. ८ पा. १ सू. २४) ति क्लीबत्वं, 'वेरमणाइं'ति असंयमादिभ्यो निवर्त्तनानि प्रत्याख्यानानीति–नमस्कारसहितपौरुष्यादीनि पौषधः–पर्वदिनमष्टम्यादि तत्रोपवासा–अभक्तार्थकरणानि पौषधोपवासास्तान् प्रतिपद्यामहे–आचार्यादिपार्श्वेऽङ्गीकरिष्यामः 'पट्ठविस्सामो'त्ति प्रस्थापयिष्यामः अङ्गीकरणानन्तरं प्रथमतया कर्त्तुमारप्स्यामः करिष्याम इति–साक्षात्कारेण सततं निष्पादयिष्यामः, 'त'त्ति तावदादौ किमर्थं नैव चिन्तयितव्यं?, हे आयुष्मन् ! त्वं शृणु यतो भवति अन्तरायबहुलं–विघ्नप्रचुरमिदं खलु निश्चये जीवितं–आयुर्जीवानां, तथा इमे–प्रत्यक्षाः बहवः वातिका–वातरोगोद्भवाः पैत्तिकाः–पित्तरोगजाः 'सिंभिय'त्ति श्लेष्मभवाः सान्निपातिकाः–सन्निपातजन्याः विविधाः–अनेकप्रकारा रोगा–व्याधयस्ते च ते आतङ्काश्च–कृच्छ्रजीवितकारिणः इति रोगातङ्काः जीवितं स्पृशंतीति । अथ सर्वान् अपि मनुजान् एते रोगाः स्पृशन्ति न वा ? इति दर्शयन्नाह–

आसी य खलु आउसो ! पुव्विं मणुया ववगयरोगायंका बहुवाससयसहस्सजीविणो, तंजहा–जुयलधम्मिया अरिहन्ता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा चारणा विज्जाहरा । ते णं मणुया अणइवरसोमचारुरूवा भोगुत्तमा भोगलक्खणधरा सुजायसव्वंगसुन्दरंगा रत्तुप्पलपउमकरचरणकोमलंगुलितला नगनगरमगरसागरचक्कंकधरंकलक्खणंकियतला सुप्पइट्ठियकुम्मचारुचलणा आणुपुव्विं सुजायपीवरंगुलिया उन्नयतणुतंब-

पुण्यकार्ये-ऽनालस्यं सू. १३

॥ १९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ युगलिकानांस्वरुपम् वर्णयते

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१४] + ||४९..||

दीप अनुक्रम [६४]

निद्धनहा संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणीकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गनिमग्गगूढजाणू गयससणसु-
जायसन्निभोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासियगई सुजायवरतुरयगुज्झदेसा आइण्णहयव्व निरुवलेवा
पसुइयवरतुरयसीहअइरेगवट्टियकडी साहयसोणंदमुसलदप्पणनिगरियवरकणगच्छरुसरिसवरवइरवलियम-
ज्झा गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोहियविकोसायंतपउमगंभीरवियडनाभी उज्जुयसम-
सहियसुजायजायजच्चतणुकसिणनिद्धआइज्जलडहसुकुमालमउयरमणिज्जरोमराई झसविहगसुजायपीणकुच्छी
झसोयरा पउमवियडनाभा संगयपासा सन्नयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाइयपीणरईयपासा
अकरंडुयकणयरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयदेहधारी पसत्थबत्तीसलक्खणधरा कणगसिलायलुज्जलपसत्थ-
समतलउवचियविच्छिन्नपिहुलवच्छा सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफलिहवट्टियभुया भुयगीसरविउलभोग-
आयाणफलिहउच्छूढदीहबाहू जुगसंनिभपीणरइयपीवरपउट्ठा संठियउवचियघणथिरसुबद्धसुवट्टसुसिलिट्ठलट्ठ-
पव्वसंधी रत्ततलोवचियमउयमंसलसुजायलक्खणपसत्थअच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजायकोमलवरंगु-
लिया तंबतलिणसुइरुइरनिद्धनक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा सुत्थि-
यपाणिलेहा ससिरविसंखचक्कसुत्थियसुविभत्तसुविरइयपाणिलेहा वरमहिसवराहसीहसद्दूलउसभनागवर-
विउलउन्नयमउयक्खंधा चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा अवट्टियसुविभत्तचित्तमंसू मंसलसंठियप-
सत्थसद्दूलविउलहणुया ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसन्निभाधरुट्ठा पंडुरससिसगलविमलनिम्मलसंखगो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खीरकुंददगरयमणालियाधवलदंतसेढी अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता सुनिद्धदंता सुजायदंता एकदंता सेढीविव अणेगदंता हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा सारसनवथणियमहुरगभीरकुंचनिग्घोसदुंदुहिसरा गरुलाययउज्जुतुंगनासा अवदारियपुंडरीयवयणा कोकासियधवलपुंडरीयपत्तलच्छा आनामियचावरुइलकिण्हचिहुरराईसुसंठियसंगयआययसुजायभुमया अल्लीणपमाणजुत्तसवणा सुसवणा पीणमंसलकवोलदेसभागा अइरुग्गयसमग्गसुनिद्धचंदद्धसंठियनिडाला उडुवइपडिपुन्नसोमवयणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणनिचियसुबद्धलक्खणुन्नयकूडागारनिभनिरुवमपिंडियग्गसिरा हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जकेसंतकेसभूमी सामलीबोंडघणनिचियच्छोडियमिउविसयसुहुमलक्खणपसत्थसुगंधिसुन्दरभुयमोयगभिंगनीलकज्जलपहट्ठभमरगणनिद्धनिउरंबनिचियकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरया लक्खणवंजणगुणोववेया माणुम्माणपमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगा ससिसोमागारकंतपियदंसणा सब्भावसिंगारचारुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, ते णं मणुया ओहस्सरा मेहस्सरा हंसस्सरा कोंचस्सरा नंदिस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सरघोसा अणुलोमवाउवेगा कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणीप्फोसपिट्ठंतरोरुपरिणया पउमुप्पलसुगंधिसरिसनीसाससुरभिवयणा छवी निरायंका उत्तमपसत्था अइसेसनिरुवमतणू जल्लमल्लकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरनिरुवलेवा छायाउज्जोविअंगमंगा वज्जरिसहनारायसंघयणा समचतुरंससंठाणसंठिया छधणुसहस्साइं, उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ते णं मणुया दो

युगलिक-स्वरूपं सू- १४

॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छप्पण्णगपिट्ठिकरंडयसया पण्णत्ता समणाउसो ! ते णं मणुया पगइभद्दया पगइविणीया पगइउवसंता पगइपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दया विणीया अप्पिच्छा असंनिहिसंचया अचंडा असिमसिकिसिवाणिज्जविवज्जिया विडिमंतरनिवासिणो इच्छियकामकामिणो गेहागाररुक्खकय-निलया पुढविपुप्फफलाहारा ते णं मणुयगणा पण्णत्ता (सूत्रं १४)

'आसी य खलु' आसन्–चशब्दात् संति भविष्यन्ति च खलु–निश्चये हे आयुष्मन्!–हे गणिगुणगणधर! पूर्वं–पूर्वस्मिन् काले प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थारकेषु यथासम्भवं मनुजाः–नराः रोगो–व्याधिः स चासावातङ्कश्च रोगातंकः व्यपगतो रोगातङ्के येषां ते व्यपगतरोगातङ्काः यद्वा रोगश्च–ज्वरादिः आतङ्कश्च–सद्यःप्राणहारी शूलादी रोगातङ्कौ तौ व्यप-गतौ येषां ते तथा, बहुवर्षशतसहस्रजीविनः, तद्यथा–युगलधार्मिकाः अर्हन्तः–तीर्थङ्कराश्चक्रवर्त्तिनः बलदेवा–वासुदे-वज्येष्ठबान्धवः वासुदेवाः–बलदेवलघुबान्धवास्त्रिखण्डभोक्तारः चारणाः–जङ्घाचारणविद्याचारणलक्षणाः विद्यां धारय-न्तीति विद्याधराः नमिविनम्याद्याः ।'ते ण'मिति णं वाक्यालङ्कारे ते युगलधार्मिका अर्हदादयो मनुजाः–मनुष्याः 'अणइवरे'ति अतीव–अतिशयेन 'सोमं' दृष्टिसुभगं चारु रूपं येषां ते तथा यद्वा 'अणवइरसोमचारुरूव'त्ति अतीति अव्ययमतिक्रमार्थे न अति अनति सौम्यं च तच्चारु च सौम्यचारु सौम्यचारु च तद्रूपं च सौम्यचारुरूपं वरं च तत्सौम्यचारुरूपं च वरसौम्यचारुरूपं अनतीति–अनतिक्रान्तं वरसौम्यचारुरूपं येषां ते अनतिवरसौम्यचारुरूपाः, देवैरपि स्वलावण्यगुणादिभिरजितरूपा इत्यर्थः, भोगैरुत्तमाः भोगोत्तमाः सर्वोत्तमभोगभोक्तार इत्यर्थः, भोगसूच-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१४] + ||४९..||

दीप अनुक्रम [६४]

तं. वै. प्र. ॥ २१ ॥

कलक्षणानि–स्वस्तिकादीनि धारयन्तीति भोगलक्षणधराः सुजातानि–सुनिष्पन्नानि सर्वाणि अङ्गानि–अवयवाः यत्र तदेवंविधं सुन्दरं अङ्गं–शरीरं येषां ते सुजातसर्वाङ्गसुन्दराङ्गाः, 'रत्तुप्पलपउमकरचरणकोमलंगुलितल'त्ति रक्तोत्पलवत् करचरणानां कोमला अङ्गुल्यो येषां ते तथा, तथा पद्मवत् करचरणानां कोमलानि तलानि–अधोभागा येषां ते तथा, नगः–पर्वतः नगरं प्रतीतं मकरो–मत्स्यः सागरः–समुद्रः चक्रं प्रतीतं अङ्कधरः–चन्द्रः अङ्कः–तस्यैव लाञ्छनं मृगः एवंरूपैर्लक्षणैरङ्कितानि तलानि–पादाधोभागाः येषां ते तथा, सुप्रतिष्ठिताः–सत्प्रतिष्ठानवन्तः कूर्मवत्–कच्छपवत् चारवः चरणा येषां ते तथा, आनुपूर्व्या–परिपाट्या वर्द्धमाना हीयमाना वा इति गम्यते, सुजाताः–सुनिष्पन्नाः पीवराः अङ्गुलिकाः–पादाग्रावयवाः येषां ते तथा, उन्नताः–तुङ्गाः तनवः–प्रतलाः ताम्रा–अरुणाः स्निग्धाः–कान्तिमन्तो नखा येषां ते तथा, संस्थितौ–संस्थानविशेषवन्तौ सुश्लिष्टौ–मांसलौ गूढौ–मांसलत्वादनुपलक्ष्यौ गुल्फौ–घुटकौ येषां ते तथा, आनुपूर्व्येण–परिपाट्या वर्धमाना हीयमाना वा इति गम्यते, एणी–हरिणी तस्याश्चेह जङ्घा ग्राह्या, कुरुविन्दं–तृणविशेषः वृत्ता च–सूत्रवलनकं एतानीव वृत्ते–वर्तुले आनुपूर्व्येण स्थूलस्थूलत्वेनेति गम्यं, जङ्घे–प्रसृते येषां ते तथा, समुद्गस्येव–समुद्गकपक्षिण इव निमग्ने–अन्तःप्रविष्टे गूढे–मांसलत्वादनुपलक्ष्ये जानुनी–अष्ठीवन्तौ येषां ते तथा, गजो–हस्ती 'ससण'त्ति श्वसिति–प्राणिति अनेनेति श्वसनः–शुण्डादण्डः गजस्य श्वसनः गजश्वसनस्तस्य सुजातस्य–सुनिष्पन्नस्य सन्निभे–सदृशे ऊरू येषां ते तथा, वरवारणस्य–प्रधानगजेन्द्रस्य तुल्यः–सदृशो विक्रमः–पराक्रमो विलासिता–सञ्जातविलासा च गतिर्येषां ते तथा, सुजातवरतुरगस्येव सुगुप्तत्वेन गुह्यदेशो–लिङ्गलक्षणोऽवयवो येषां

युगलिक-स्वरूपं सू. १४

॥ २१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते तथा, आकीर्णहय इव–जात्याश्व इव निरुपलेपाः–तथाविधमलविकलाः, प्रमुदितो–हृष्टो यो वरतुरगः सिंहश्च ताभ्यां सकाशादतिरेकेण–अतिशयेन वर्त्तिता–वर्तुला कटिर्येषां ते तथा, 'साहय'त्ति संहृतं–संक्षिप्तं यत् सोणंदं त्रिकाष्ठिकामध्यं मुशलं–प्रतीतं दर्पणो–दर्पणगण्डो विवक्षितः 'निगरिय'त्ति सर्वथा शोधितं सारीकृतमित्यर्थः यद् वरकनकं तस्य यत् 'छरु'त्ति खड्गादिमुष्टिः स च (ततः) एतद्द्वन्द्वस्तैः सदृशो यः, वरवज्रवद् वलितः क्षामो–वलित्रयोपेतो मध्यभागो येषां ते तथा, गङ्गावर्त्तक इव प्रदक्षिणावर्त्ती–दक्षिणावर्त्ती तरङ्गैरिव तरङ्गैः–तिसृभिर्वलिभिर्भङ्गुरा तरङ्गभङ्गुरा रविकिरणैस्तरुणं–अभिनवं तत्प्रथमतया तत्कालमित्यर्थः बोधितं–विकासितं 'विकोसायंत'त्ति विगतकोशं कृतं यत् पङ्कजं तद्वत् गम्भीरा विकटा च नाभिर्येषां ते तथा, 'उजुय०' ऋजुकानां–अवक्राणां समानानामायामादिप्रमाणतः 'सहिय'त्ति संहितानाम्–अविरलानां सुजातानां जात्यानां–स्वाभाविकानां तनूनां–सूक्ष्माणां कृष्णानां–कालवर्णानां अथवा कृत्स्नानां–अभिन्नानां स्निग्धानां–कान्तानां आदेयानां–सौभाग्यवतां लडहानां–मनोज्ञानां सुकुमारमृदूनां–अत्यंतकोमलानां रमणीयानां च रोम्णां–तनुरुहाणां राजिः–आवलिर्येषां ते तथा, झषविहगयोरिव–मत्स्यपक्षिणोरिव सुजातौ–सुभूतौ पीनौ–उपचितौ कुक्षी–जठरदेशौ येषां ते तथा, 'झषोदरा' इति प्रतीतं पद्मवद् विकटा नाभिर्येषां ते तथा, इदं च विशेषणं न पुनरुक्तं पूर्वोक्तस्य नाभिविशेषणस्य बाहुल्येन पाठादिति, सङ्गतपार्श्वाः–युक्तपार्श्वाः सन्नतौ–अधोऽधो नमन्तौ पार्श्वौ येषां ते सन्नतपार्श्वाः अत एव सुन्दरपार्श्वाः सुजातपार्श्वाः पार्श्वगुणोपेतपार्श्वाः इत्यर्थः मितौ–परिमितौ मातृकौ–मात्रोपेतौ एकार्थपदद्वययोगादतीव मात्रान्वितौ नोचितप्रमाणाद्धीनाधिकौ पीनौ–उपचितौ रतिदौ–रमणीयौ पार्श्वौ येषां ते मितमातृकपीनरतिदपार्श्वा इत्यर्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

'अकरंडुय'त्ति मांसोपचितत्वादविद्यमानपृष्ठिपार्श्वास्थिकमिव कनकरुचकं–काञ्चनकान्ति निर्मलं–स्वाभाविकमलरहितं आगन्तुकमलरहितं च सुजातं–सुनिष्पन्नं निरुपहतं–रोगादिभिरनुपहतं देहं–शरीरं धारयन्ति ये ते तथा, 'पसत्थबत्तीस०' छत्रं १ ध्वजः २ यूपः ३ स्तूपः ४ दामिणी रूढिगम्यं ५ कमण्डलु ६ कलशः ७ वापी ८ स्वस्तिकः ९ पताका १० यवः ११ मत्स्यः १२ कूर्मः १३ रथवरः १४ मकरध्वजः १५ अङ्को–मृगः १६ स्थालं १७ अङ्कुशः १८ चूतफलकं १९ स्थापनकं २० अमरः २१ लक्ष्म्या अभिषेकः २२ तोरणं २३ मेदिनी २४ समुद्रः २५ प्रधानमन्दिरं २६ गिरिवरः २७ वरदर्पणः २८ लीलायमानगजः २९ वृषभः ३० सिंहः ३१ चामरं ३२, एतानि प्रशस्तानि द्वात्रिंशल्लक्षणानि धारयन्ति ये ते तथा, कनकशिलातलमिव उज्ज्वलं प्रशस्तं समतलं–अविषमरूपं उपचितं–मांसलं विस्तीर्णपृथुलं–अतिविस्तीर्णं वक्षोहृदयं येषां ते तथा, श्रीवत्सेन अङ्कितं वक्षो येषां ते तथा, पुरवरस्य परिघा–अबद्धा अर्गला तद्वत् वर्तितौ–वृत्तौ भुजौ–बाहू येषां ते तथा, भुजगेश्वरो–भुजगराजः तस्य विपुलो–महान् यो भोगः–शरीरं तद्वत् आदीयत इत्यादानः–आदेयो रम्यो यः परिघः–अर्गला'उच्छूढ'त्ति स्वस्थानाद् अवक्षिप्तो–निष्काशितः तद्वच्च दीर्घौ बाहू येषां ते तथा,युगसन्निभौ–यूपसदृशौ पीनौ–मांसलौ रतिदौ–रमणीयौ पीवरौ–महान्तौ प्रकोष्ठौ–कलाचिकादेशौ, तथा संस्थिताः–संस्थानविशेषवन्तः उपचिताः–सुनिचिताः घनाः–बहुप्रदेशाः स्थिराः–सुबद्धा स्नायुभिः सुष्ठु बद्धाः सुवृताः–अतिशयेन वर्तुलाः सुश्लिष्टाः–सुघनाः लष्टाः–मनोज्ञाः पर्वसन्धयश्च– पर्वास्थिसंधानानि येषां ते तथा, रक्ततलौ–लोहिताधोभागौ 'उवचिय'त्ति औपचयिकौ उपचयनिर्वृत्तौ उपचितौ वा मृदुकौ–कोमलौ मांसवन्तौ सुजातौ–सुनिष्पन्नौ लक्षणप्रशस्तौ–प्रशस्तस्वस्तिकचक्रगदाशंखकल्पवृक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रादित्यादिचिह्नौ अच्छिद्रजालौ–अविरलाङ्गुलिसमुदायौ पाणी–करौ येषां ते तथा, पीवरा:–उपचिता वृत्ता:–वर्तुलाः सुजाता:–सुनिष्पन्ना: कोमला: वरा: अङ्गुल्य:–करशाखा येषां ते तथा, ताम्रा:–अरुणा: तलिना:–प्रतला: शुचय:–पवित्रा रुचिरा–दीप्ता: स्निग्धा–अरूक्षा: नखा–नखरा: येषां ते तथा, चन्द्र इव पाणिरेखा–हस्तरेखा येषां ते चन्द्रपाणिरेखा:, एवं सूर्यपाणिरेखा: शंखपाणिरेखा: स्वस्तिकपाणिरेखा: चक्रपाणिरेखा:, एतदेवानन्तरोक्तं विशेषणपञ्चकं तत्प्रशस्तता-प्रकर्षप्रतिपादनाय सङ्ग्रहवचनेनाह–शशिरविशङ्खचक्रस्वस्तिकरूपा: विभक्ता–विभागवत्य: सुविरचिता:–सुकृता: पाणिषु रेखा: येषां ते तथा, वरमहिषवराहसिंहशार्दूलवृषभनागवरवत् विपुलौ–प्रतिपूर्णौ उन्नतौ–उङ्गौ मृदुकौ–कोमलौ द्वौ स्कन्धौ येषां ते तथा वरमहिष:–सैरभेय:वराह:–शूकर: शार्दूलो–व्याघ्र: नागवरो–गजवर:, चत्वार्यङ्गुलानि स्वाङ्गुलापेक्षया सुष्ठु प्रमाणं यस्या: कम्बुवरेण च–प्रधानशङ्खेन सदृशी–उन्नतत्ववलित्रययोगाभ्यां समाना ग्रीवा–कण्ठो येषां ते तथा, अवस्थितानि–न हीयमानानि न वर्द्धमानानि सुविभक्तानि चित्राणि च–शोभया अद्भुतभूतानि श्मश्रूणि–कूर्चकेशा येषां ते तथा, मांसलं संस्थितं प्रशस्तं शार्दूलस्येव विपुलं हनु–चिबुकं येषां ते तथा, 'ओयविय'त्ति परिकर्मितं यच्छिलाप्रवालं–विद्रुमं बिम्बफलं–गोल्हाफलं तत्सन्निभ:–सदृशो रक्तत्वेन अधरोष्ठ:–अधस्तनदन्तच्छदो येषां ते तथा, पाण्डुरं यच्छशिशकलं–चन्द्र-खण्डं तद्वत् विमल:–आगन्तुकमलरहित: निर्मल:–स्वाभाविकमलरहितो य: शङ्ख: तद्वत् गोक्षीरफेनवत् 'कुंद'त्ति कुन्दपुष्पवत् दकरजोवद् मृणालिकावत्–पद्मिनीमूलवत् धवला दन्तश्रेणि:–दशनपङ्क्तिर्येषां ते तथा, अखण्डदन्ता:–परि-पूर्णदशना: अस्फुटितदन्ता:–राजिरहितदन्ता: अविरलदन्ता: सुस्निग्धदन्ता:–अरूक्षदन्ता: सुजातदन्ता:–सुनिष्पन्नद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्ताः, एको दन्तो यस्या श्रेण्या सा एकदन्ता सा श्रेणिः येषां ते तथा ता इव दन्तानामतिघनत्वादेकदन्तश्रेणिस्तेषामिति भावः, अनेकदन्ताः द्वात्रिंशद्दन्ता इति भावः, यद्वा एका–एकाकारा दन्तश्रेणिर्येषां ते एकदन्तश्रेणयः ते इव परस्परं अनुपलक्ष्यमाणदन्तविभागत्वात् अनेके दन्ताः येषां ते अनेकदन्ता, एवं नामाविरलदन्ता यथा अनेकदन्ता अपि सन्तः एकाकारदन्तपङ्क्त्य इव लक्ष्यंते इति भावः, हुतवहेन–अग्निना निर्ध्मातं–निर्दग्धं धौतं–प्रक्षालितमलं तप्तं च–उष्णं यत् तपनीयं–सुवर्णविशेषः तद्वत् रक्ततलं–लोहितरूपं तालु च–काकुदं जिह्वा च–रसना येषां ते तथा, 'सर'त्ति अत्र योज्यं सारसवत्–पक्षिविशेषवत् मधुरः स्वरः–शब्दो येषां ते तथा, नवमेघवत् गम्भीरः स्वरो येषां ते तथा, क्रौंचस्य–पक्षिविशेषस्येव निर्घोषो येषां ते तथा, दुन्दुभिवत्–भेरीवत् स्वरो येषां ते तथा, तत्र स्वरः–शब्दः षड्जः १ ऋषभः २ गान्धार ३ मध्यम ४ पञ्चम ५ धैवत ६ निषाद ७ रूपो वा एषां विस्तरस्वरूपं स्थानाङ्गानुयोगद्वारतोऽवगन्तव्यमिति, घण्टानुप्रवृत्तरणितमिव यः शब्दः स घोष उच्यते, नितरां घोषः निर्घोष इति, गरुडस्येव–सुपर्णस्येव आयता–दीर्घा ऋज्वी–सरला तुङ्गा–उन्नता नासा–घोणा येषां ते तथा, अवदालितं–रविकिरणैः विकाशितं यत् पुण्डरीकं–सितपद्मं तद्वद् वदनं–मुखं येषां ते तथा। 'कोकासिय'त्ति विकसिते प्रायः प्रमुदितत्वात्तेषां धवले–सिते पुण्डरीके 'पत्रले' पक्ष्मवती अक्षिणी–लोचने येषां ते तथा, आनामितं–ईषन्नामितं यच्चापं–धनुः तद्वद् रुचिरे–शोभने कृष्णचिकुरराजिसुसंस्थिते कुत्रापि कृष्णा भ्रूराजिः सुसंस्थिते संगते आयते–दीर्घे सुजाते–सुनिष्पन्ने भ्रुवौ येषां ते तथा, आलीनौ नतु टप्परौ प्रमाणयुक्तौ–उपपन्नप्रमाणौ श्रवणौ–कर्णौ येषां ते तथा अत एव सुश्रवणाः सुष्ठु श्रवणं–शब्दोपलंभो येषां ते तथा, पीनौ–मांसलौ कपोललक्षणौ देशभागौ

॥ २३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वदनस्यावयवौ येषां ते तथा, अचिरोद्गतः समग्रः–सम्पूर्णः सुस्निग्धः चन्द्रः–शशी तस्यार्द्धवत् संस्थितं–संस्थानं यस्य ललाटस्य तत्तथा तदेवंविधं 'निडाल'त्ति ललाटं–भालं येषां ते अचिरोद्गतसमग्रसुस्निग्धचन्द्रार्धसंस्थितललाटाः, उडुपतिरिव–चन्द्र इव प्रतिपूर्णं सौम्यं वदनं येषां ते उडुपतिप्रतिपूर्णसौम्यवदनाः, छत्राकारोत्तमाङ्गदेशा इति कण्ठ्यं, घनो–लोहमुद्गरस्तद्वन्निचितं–निबिडं यद्वा घनं–अतिशयेन निचितं सुबद्धं स्नायुभिः लक्षणोन्नतं–महालक्षणं कूटागारनिभं–सशिखरभवनतुल्यं निरुपमपिण्डिकेव वर्तुलत्वेन पिण्डिकायमानं अग्रशिरः–शिरोऽग्रं येषां ते घननिचितसुबद्धलक्षणोन्नतकूटागारनिभनिरुपमपिण्डिकाग्रशिरसः, हुतवहेन–अग्निना निर्ध्मातं धौतं तप्तं च यत्तपनीयं–रक्तवर्णसुवर्णं तद्वत् 'केसंत'त्ति मध्यकेशाः केशभूमिः–मस्तकत्वग् येषां ते हुतवहनिर्ध्मातधौततप्ततपनीयकेशान्तकेशभूमयः, शाल्मली–वृक्षविशेषः स च प्रतीत एव तस्य बोंडं–फलं तद्वत् छोटिता अपि घना निचिता–अतिशयेन निचिताः शाल्मलीबोण्डघननिचितच्छोटिताः, ते हि युगलधार्मिकाः केशपाशं न कुर्वन्ति परिज्ञानाभावात् केवलं छोटिता अपि तथा स्वभावतया शाल्मलीबोण्डाकारवत् घननिचिता अवतिष्ठन्ते तत एतद्विशेषणोपादानं, तथा मृदवः–अकर्कशाः विशदा–निर्मलाः सूक्ष्माः–श्लक्ष्णाः लक्षणा–लक्षणवन्तः प्रशस्ताः–प्रशंसाऽऽस्पदीभूताः सुगन्धयः–परमगन्धकलिताः अत एव सुन्दराः तथा भुजमोचको–रत्नविशेषः भृङ्गः–चतुरिन्द्रियपक्षिविशेषः नीलो–मरकतमणिः कज्जलं प्रतीतं प्रहृष्टः–प्रमुदितो यो भ्रमरगणः प्रहृष्टभ्रमरगणः प्रहृष्टो हि भ्रमरगणस्तारुण्यावस्थायां भवति तदानीं चातिकृष्ण इति प्रहृष्टग्रहणं तद्वत् स्निग्धाः–कालकान्तयः भुजमोचकभृङ्गनीलकज्जलप्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धाः तथा निकुरम्बाः–निकुरम्बीभूताः सन्तः निचिताः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविकीर्णाः कुञ्चिताः–ईषत्कुटिलाः प्रदक्षिणावर्त्ताश्च मूर्धनि शिरोजाः–केशा येषां ते शाल्मलीबोण्डघननिचितच्छोटितमृदुविशदप्रशस्तसूक्ष्मलक्षणसुगन्धिसुन्दरभुजमोचकभृङ्गनीलकज्जलप्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धनिकुरम्बनिचितप्रदक्षिणावर्त्तमूर्धशिरोजलः, लक्षणानि–स्वस्तिकादीनि व्यञ्जनानि–मषतिलकादीनि गुणाः–क्षान्त्यादयस्तैरुपेता–युक्ताः लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेताः, तथा मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्णानि सुजातानि–जन्मदोषरहितानि सर्वाण्यङ्गानि–अवयवाः यत्र तदेवंविधं सुन्दरं अङ्गं–शरीरं येषां ते तथा, तत्र मानं–जलद्रोणप्रमाणता, सा चैवं–जलभृतकुम्भे प्रमातव्ये पुरुषे उपवेशिते यज्जलं–तोयं निर्गच्छति तद् यदि द्रोणमानं भवति तदा स पुरुषो मानोपपन्न इत्युच्यते, तत्र २५६ पलप्रमाणं द्रोणमानमिति, उन्मानं–तुलाऽऽरोपितस्यार्द्धभारप्रमाणता, भारमानं यथा–षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको, गुञ्जैका च यवैस्त्रिभिः । गुञ्जात्रयेण वल्लःस्यात्, गद्याणे ते च षोडश ॥ १ ॥ पलञ्च दश गद्याणैस्तेषां साद्धशतैर्मणं । मणैर्दशभिरेका च, घटिका कथिता बुधैः ॥ २ ॥ घटिभिर्दशभिस्ताभिरेको भारः प्रकीर्तितः" इति, प्रमाणं पुनः आत्माङ्गुलेन अष्टोत्तरशताङ्गुलोच्छ्रयता, शशिवत् सौम्य आकारः कान्तं–कमनीयं प्रियं–प्रेमावहं दर्शनं च येषां ते तथा, स्वभावत एव शृङ्गारं–शृङ्गाररूपं चारु–प्रधानं रूपं–वेषो येषां ते तथा, 'प्रासादीयाः' प्रसादाय–मनःप्रसत्तये हितास्तत्कारित्वात् प्रासादीयाः–मनःप्रह्लत्तिकारिण इति भावः १ दर्शनीयाः–दर्शनयोग्याः यान् पश्यतश्चक्षुषी न श्रमं गच्छत इत्यर्थः २ अभि–सर्वेषां द्रष्टृणां मनःप्रसादानुकूलतया अभिमुखं रूपं येषां ते अभिरूपाः अत्यन्तकमनीया इति भावः ३ अत एव प्रतिरूपाः प्रति विशिष्टं असाधारणं रूपं येषां ते प्रातरूपाः, यद्वा प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूपं येषां ते प्रतिरूपाः, ते मनुष्याः 'णं' वाक्यालङ्कारे

युगलिक-स्वरूपं सू. १४

॥ २४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघः–प्रवाहः तद्वत् स्वरो येषां ते ओघस्वराः, मेघस्येवातिदीर्घः स्वरो येषां ते मेघस्वराः, हंसस्येव मधुरः स्वरो येषां ते हंसस्वराः, क्रौंचस्येवाप्रयासविनिर्गतोऽपि दीर्घदेशव्यापी स्वरो येषां ते क्रौंचस्वराः, नन्दिः–द्वादशतूर्यसङ्घातस्तद्वत् स्वरो येषां ते नन्दिस्वराः, नन्द्या इव घोषो–नादो येषां ते नन्दिघोषाः, सिंहस्येव प्रभूतदेशव्यापी स्वरो येषां ते सिंहस्वराः सिंहघोषाः मञ्जुः–प्रियः स्वरो येषां ते मञ्जुस्वराः मञ्जुः घोषो येषां ते मञ्जुघोषाः, एतदेव पदद्वयेन व्याचष्टे–सुस्वराः सुस्वरघोषाः, अनुलोमः–अनुकूलो वायुवेगः–शरीरान्तर्वर्त्तिवातजवो येषां ते अनुलोमवायुवेगाः, वायुगुल्महितोदरमध्यप्रदेशा इति भावः, कङ्कः–पक्षिविशेषः तस्येव ग्रहणिः–गुदाशयो नीरोगवर्चस्कतया येषां ते कङ्कग्रहणयः, कपोतस्येव–पक्षिविशेषस्य परिणामः–आहारपाको येषां ते कपोतपरिणामाः, कपोतस्य हि जठराग्निः पाषाणलवानपि जरयतीति श्रुतिः, एवं तेषामपि अत्यर्गलाहारग्रहणेऽपि न जातुचिदप्यजीर्णदोषो भवतीति, शकुनेरिव–पक्षिण इव पुरीषोत्सर्गे निर्लेपतया 'फोसं'ति फोसः–अपानदेशः 'फुस उत्सर्गे' फुसन्ति–पुरीषमुत्सृजन्ति अनेनेति व्युत्पत्तेः, तथा पृष्ठं–प्रतीतं अन्तरे च–पृष्ठोदरयोरन्तराले पार्श्वावित्यर्थः ऊरू–जङ्घे चेति द्वन्द्वस्ते परिणता–विशिष्टपरिणामवन्तो येषां ते शकुनिष्फोसपृष्ठान्तरोरुपरिणताः, पद्मं–कमलं उत्पलं–नीलोत्पलं यद्वा पद्मं–पद्मकाभिधानं गन्धद्रव्यं उत्पलं च–उत्पलकुष्ठं तयोः गन्धेन–सौरभेण सदृशः–समो यो निःश्वासस्तेन सुरभि—सुगन्धि वदनं–मुखं येषां ते पद्मोत्पलगन्धसदृशनिःश्वाससुरभिवदनाः 'छवी'ति छविमन्तः उद्दीप्तवर्णया सुकुमालया च त्वचा युक्ता इति भावः, निरातङ्का–नीरोगा इत्यर्थः उत्तमा–उत्तमलक्षणोपेताः प्रशस्ताः अतिशेषा–कर्मभूमिकमनुष्यापेक्षया अतिशायिनी अत एव निरुपमा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपमारहिता तनुः–शरीरं येषां ते उत्तमप्रशस्तातिशेषनिरुपमतनवः, एतदेव सविशेषमाह–'जल्लमल'० याति च लगति चेति जल्लः पृषोदरादित्वान्निष्पत्तिः स्वल्पप्रयत्नापनेयः स चासौ मलश्च जल्लमलः स च कलङ्कं च–दुष्टतिलकादिकं स्वेदश्च–प्रस्वेदः रजश्च–रेणुः दोषः–मालिन्यकारिणी चेष्टा तेन वर्जितं निरुपलेपं च–मूत्रविष्ठाद्युपलेपरहितं शरीरं येषां ते जल्लमलकलङ्कस्वेदरजोदोषवर्जितनिरुपलेपशरीराः, सूत्रे च निरुपलेपशब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, छायया—शरीरप्रभया उद्योतितमङ्गं–शरीरं अंगं च–प्रत्यङ्गं येषां ते तथा। वज्रऋषभनाराचं संहननं येषां ते वज्रऋषभनाराचसंहननाः, समचतुरस्रं च तत् संस्थानं च समचतुरस्रसंस्थानं तेन संस्थिताः समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिताः, अनयोरग्रे व्याख्यां करिष्यामीति, षट् धनुःसहस्राणि अवसर्पिणीप्रथमारकापेक्षया ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता इति, धनुःस्वरूपं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ यथा–अणंताणं सुहुमपरमाणुपोग्गलसमुदयसमागमेणं वावहारिए परमाणू णिप्फज्जति, तत्थ णो सत्थं संकामइ, अणंताणं वावहारियपरमाणूणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा उसण्हसण्हियाति वा अट्ठ उसण्हसण्हियाउ सा एगा सण्हसण्हिया अट्ठ सण्हसण्हिया सा एगा उद्धरेणू अट्ठ उद्धरेणू सा एगा तसरेणू अट्ठ तसरेणू सा एगा रहरेणू अट्ठरहरेणूहिं एगे देवकुरुउत्तरकुराणं मणुयाणं वालग्गे अट्ठ देवकुरुउत्तरकुरुवालग्गा से एगे हरिवासरम्मगवासाणं मणुयाणं वालग्गे, एवं रम्मयहेरण्णहेमवएरण्णवयाणं मणुस्साणं पुव्वविदेहअवरविदेहाणं मणुस्साणं, अट्ठ पुव्वविदेहाणं मणुस्साणं वालग्गा सा एगा लिक्खा अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया अट्ठ जूआओ से एगे जवमज्झे अट्ठ जवमज्झे से एगे अंगुले एतेणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाइं पाओ बारस अंगुलाइं वितत्थी चउवीस अंगुलाइं रयणी अडयालीसअंगुलाइं कुच्छी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छण्णउअंगुलाइं से एगे अक्खेति वा दंडेति वा धणुति वा जुएति वा मुसलेति वा नालियाति वा, एतेणं धणुप्पमाणेणं दो धणुस्सहस्साइं गाउयमिति । तथा ते प्रथमारकमनुष्याः षट्पञ्चाशदधिकद्विपृष्ठकरण्डकशताः प्रज्ञप्ताः तीर्थङ्करैरिति, तथा तुवरीप्रमाणाहाराः षण्मासावशेषे आयुषि स्त्रीपुरुषयुगलप्रसवाः एकोनपञ्चाशद्दिनापत्यपालका दिनत्रये आहारेच्छाः १, द्वितीयारके तु द्विक्रोशोच्चाः १२८ पृष्ठकरण्डकाः चतुःषष्टिदिनापत्यपालकाः बदरप्रमाणाहारकाः दिनद्वये आहारेच्छवः २, तृतीये अरके क्रोशोच्चाः ६४ पृष्ठकरण्डकाः ७९ दिनापत्यपालकाः आमलकप्रमाणाहारकाः एकान्तराहारेच्छकाः ३, षट्पञ्चाशदन्तर्द्वीपे तु मनुष्याः अष्टधनुःशतप्रमाणशरीरोच्छ्रयाः चतुर्थाशिनः चतुःषष्टिपृष्ठकरण्डकाः एकोनाशीतिदिनानि कृतापत्यरक्षाः पल्योपमासंख्येयभागायुषः, तथा सर्वेऽपि युगलजीवाः निजायुःसमे देवे हीनायुषि देवे वा उत्पद्यन्ते, सर्वयुगलजीवाः हस्त्यश्वकरभगोमहिष्यादीनां सद्भावेऽपि तत्परिभोगपराङ्मुखाः सत्यपि मणिकनकमौक्तिकादिके ममत्वाभिनिवेशरहिताः युगलक्षेत्रे विस्रसात एव शाल्यादीनि धान्यादीन्युपजायन्ते परं न ते मनुष्यादीनां परिभोगाय, दंशमशकयूकादयः चन्द्रसूर्योपरागादयश्च न भवन्तीति । तथा ते मनुष्याः 'णं' वाक्यालङ्कारे प्रकृत्या–स्वभावेन भद्रकाः परानुपतापहेतुकायवाङ्मनश्चेष्टाः प्रकृत्या–स्वभावेन न तु परोपदेशतः विनीताः–विनययुक्ताः प्रकृतिविनीताः प्रकृत्या उपशान्ताः प्रकृत्युपशान्ताः प्रकृत्यैव प्रतनवः–अतिमन्दीभूताः क्रोधमानमायालोभा येषां ते तथा, अत एव मृदु—मनोज्ञं परिणामसुखावहं यन्मार्दवं तेनसम्पन्नाः मृदुमार्दवसम्पन्नाः न कपटमार्दवोपेता इत्यर्थः, आ–समन्तात् सर्वासु क्रियासु लीना–गुप्ता आलीनाः–नोल्ब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णचेष्टाकारिण इत्यर्थः भद्रकाः—सकलतत्क्षेत्रोचितकल्याणभाविनः विनीताः–बृहत्पुरुषविनयकरणशीलाः अल्पेच्छाः–मणिकनकादिविषयप्रतिबन्धरहिताः अत एव 'असंनि०' न विद्यते सन्निधिरूपः सञ्चयो येषां ते तथा अचण्डा–न तीव्रकोपाः असिमषिकृषिवाणिज्यविवर्जिताः, तत्र अस्युपलक्षिताः सेवकाः पुरुषाः असयः मष्युपलक्षिता लेखनजीविनः मषयः कृषिरिति कृषिकर्मोपजीविनः, वाणिज्यमिति–वणिग्जनोचितवाणिज्यकलोपजीविनः एते न भवन्ति, तेषां सर्वेषां अहमिन्द्रत्वात् इति, 'विडिमान्तरेषु' कल्पद्रुमशाखान्तरेषु प्रासादाद्याकृतिषु निवसनं–आकालमावासो येषां ते विडिमान्तरनिवासिनः, ईप्सितान्–मनोवाञ्छितान् कामान्–शब्दादीन् कामयन्ते इत्येवंशीलाः ईप्सितकामकामिनः गेहाकारेषु–गृहसदृशेषु वृक्षेषु–कल्पद्रुमेषु कृतो–निष्पादितः निलयः–आवासः यैस्ते गेहाकारवृक्षकृतनिलयाः, गृहाकारकल्पवृक्षसूचनेनान्येऽपि सूचिता द्रष्टव्याः, यदुक्तं प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ यथा–मत्ताङ्गदाः १ भृताङ्गाः २ त्रुटिताङ्गाः ३ दीपाङ्गाः ४ ज्योतिरङ्गाः ५ चित्राङ्गाः ६ चित्ररसाः ७ मण्यङ्गाः ८ गेहाकाराः ९ अनग्नाः १०, तत्र मत्ताङ्गदानां फलानि विशिष्टानि विशिष्टबलवीर्यकान्तिहेतुविस्रसापरिणतसरससुगन्धिविविधपरिपाकागतहृद्यमद्यपरिपूर्णानि स्फुटित्वा २ मद्यं मुञ्चन्तीति १, भृताङ्गाः यथेह मणिकनकरजतादिमयविचित्रभाजनानि दृश्यन्ते तथैव विस्रसापरिणतैः स्थालकच्चोलकंसकरकादिभिर्भाजनैरिव फलैरुपशोभमानाः प्रेक्ष्यन्ते २, त्रुटिताङ्गेषु सङ्गतानि सम्यग् यथोक्तरीत्या सम्बद्धानि त्रुटितानि–आतोद्यानि बहुप्रकाराणि ततविततघनशुषिरकाहलकादीनि ३, दीपाङ्गाः यथेह स्निग्धं प्रज्वलन्त्यः काञ्चनमय्यो दीपिका उद्योतं कुर्वाणा दृश्यन्ते तद्वत् दीपाङ्गाः विस्रसापरिणताः प्रकृष्टोद्द्योतेन सर्वमुद्यो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयन्तो वर्त्तन्ते ४, ज्योतिषिकाः सूर्यमण्डलमिव स्वतेजसा सर्वमपि भासयन्तः सन्तीति ५, चित्राङ्गेषु माल्यमनेकप्रकारसरससुरभिनानावर्णकुसुमदामरूपं भवति ६, चित्ररसाः भोजनार्थाय भवन्ति, कोऽर्थः ?–विशिष्टदलिककलमशालिशालनकाः पक्वान्नप्रभृतिभ्योऽतीवापरिमितस्वादुतादिगुणोपेतेन्द्रियबलपुष्टिहेतुस्वादुभोज्यपदार्थपरिपूर्णैः फलमध्यैर्विराजमानाश्चित्ररसाः संतिष्ठन्ते इति ७ मण्यङ्गेषु वराणि भूषणानि विस्रसापरिणतानि कटककेयूरकुण्डलादीन्याभरणानि भवन्ति ८, गेहाकारनामकेषु कल्पद्रुमेषु विस्रसापरिणामत एव प्रांशुप्राकारोपगूढसुखारोहसोपानपङ्क्तिविचित्रचित्रशालोचितकान्तानि अनेकसमप्रकटापवरककुट्टिमतलाद्यलङ्कृतानि नानाविधानि निकेतनानि भवन्ति ९, अनग्नेषु कल्पपादपेषु अत्यर्थं बहुप्रकाराणि वस्त्राणि विस्रसात एवातिसूक्ष्मसुकुमारदेवदूष्यानुकाराणि मनोहारीणि निर्मलानि उपजायन्त इति १०। 'पुढविपुप्फे'ति पृथिवीपुष्पफलाहाराः पृथिवी पुष्पफलानि च कल्पद्रुमाणामाहारो येषां ते तथा, 'ते मणुयगणा' ते मनुजगणाः–युगलधार्मिकवृन्दाः 'णं' वाक्यालङ्कारे प्रज्ञप्ता जगदीश्वरैः, यदुक्तं जीवाभिगमवृत्तौ हे भगवन् ! पृथिव्याः कीदृशः आस्वादः ?, भगवानाह–हे गौतम ! यथा गोक्षीरं चातुरक्यं–चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, तच्चैवं–गवां पुण्ड्रदेशोद्भवेक्षुचारिणीनां अनातङ्कानां कृष्णानां यत्क्षीरं १ तदन्याभ्यः कृष्णगोभ्य एव यथोक्तगुणाभ्यः पानं दीयते २ तत्क्षीरमप्येवंभूताभ्योऽन्याभ्यः ३ तत्क्षीरमप्यन्याभ्यः ४ इति चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, अन्ये त्वेवमाहुः–पुण्ड्रेक्षुचारिणीनां गवां लक्षस्य क्षीरमर्द्धार्द्धक्रमेण दीयते यावदेकस्याः क्षीरं तच्चातुरक्यमिति, एवंभूतं यच्चातुरक्यं गोक्षीरं खण्डगुडमत्स्यण्डिकोपनीतं मन्दाग्निक्वथितं, इतोऽपि पृथिव्याः आस्वादः इष्टतर इति, कल्पपादपसत्कानां पुष्पफलानां तु कीदृश आस्वादः ?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४] + ||४९..|| दीप अनुक्रम [६५]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

तं. वै. प्र. ॥ २७ ॥

यथा चक्रर्त्तिनः एकान्तसुखावहं भोजनं लक्षनिष्पन्नं शुभवर्णरसगन्धस्पर्शयुक्तं आस्वादनीयं अग्निवृद्धिकरं उत्साहवृद्धिकरं मन्मथजनकं, इतोऽपि चक्रवार्त्तिभोजनादिष्टतर एवास्वाद इति।

आसी य समणाउसो! पुव्विं मणुयाण छव्विहे संघयणे, तंजहा–वज्जरिसहनारायसंघयणे १ रिसहनारायसं० २ नाराय० ३ अद्धनारायसं० ४ कीलियसं० ५ छेवट्टसंघयणे ६, संपइ खलु आउसो! मणुयाणं छेवट्टे संघयणे वट्टइ आसी य आउसो! पुव्विं मणुयाणं छव्विहे संठाणे, तंजहा–समचतुरंसे १ नग्गोहपरिमंडले २ सादि ३ खुज्जे ४ वामणे ५ हुंडे ६, संपइ खलु आउसो! मणुयाणं हुंडे संठाणं वट्टइ। (सू० १५) संघयणं संठाणं उच्चत्तं आउयं च मणुयाणं। अणुसमयं परिहायइ ओसप्पिणिकालदोसेणं ॥ १ ॥ (५०) कोहमयमायलोभा उस्सन्नं वड्ढए य मणुयाणं। कूडतुलकूडमाणा तेणऽणुमाणेण सव्वंति ॥ २ ॥ (५१) विसमा अज्ज तुलाओ विसमाणि य जणवएसु माणाणि। विसमा रायकुलाइं तेण उ विसमाइं वासाइं ॥ ३ ॥ (५२) विसमेसु य वासेसुं हुंति असाराइं ओसहिबलाइं। ओसहिदुब्बलेण य आउं परिहायइ नराणं ॥ ४ ॥ (५३) एवं परिहायमाणे लोए चंदुव कालपक्खम्मि। जे धम्मिया मणुस्सा सुजीवियं जीवियं तेसिं ॥ ५ ॥ (५४)

तथा ‘आसी य समणा’ आसन् हे श्रमण! हे गौतम! हे आयुष्मन्! पूर्वं मनुजानां षड्विधानि ‘संघयणे’त्ति संहननानि दृढदृढतरादयः शरीरबन्धा इत्यर्थः, तद्यथा–वज्रर्षभनाराचं १ ऋषभनाराचं २ नाराचं ३ अर्द्धनाराचं ४

संहननसंस्थाने उपदेशश्च सू. १५ गा.५४

॥ २७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	संघयण-संस्थानयो: सभेद वर्णनं

कीलिका ५ सेवार्त्तं ६, वज्रादीनां कोऽर्थः ?–ऋषभः–अस्थिद्वयस्यावेष्टकः पट्टः १ वज्रमिव वज्रं–कीलिका २ नाराचं–उभयतो मर्कटबन्धः ३ ततो द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्था वेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाकारं वज्राख्यमस्थियन्त्रं तद्वज्रर्षभनाराचं १ कीलिकारहितं ऋषभनाराचं २ पट्टरहितं केवलमर्कटबन्धं नाराचं ३ यत्रैकपार्श्वे मर्कटबन्धोऽपरपार्श्वे च कीलिका तदर्धनाराचं ४ यत्रास्थीनि च कीलिकामात्रबद्धानि तत्कीलिकाख्यं ५ यत्र चास्थीनि परस्परपर्यन्तसंस्पर्शरूपसेवामात्रेण व्याप्तानि नित्यं स्नेहाभ्यङ्गादिपरिशीलनमपेक्षन्ते तत् सेवया कृतं–व्याप्तं सेवार्त्तं ६, सम्प्रति–इदानीं पञ्चमारके खलु–निश्चये हे आयुष्मन्! मनुजानां सेवार्त्तं संहननं वर्त्तते, तत्र श्रीवीरात्सप्तत्यधिकशत १७० वर्षे श्रीस्थूलभद्रे स्वर्गं गते चरमाणि चत्वारि पूर्वाणि आद्यसंस्थानमाद्यसंहननं महाप्राणध्यानं च गतं, तथा श्रीवीरात् ५८४ वर्षे श्रीवज्रे दशमं पूर्वं संहननचतुष्कं च गतमिति । तथा आसन् हे आयुष्मन्! पूर्वं मनुजानां षड्विधानि 'संठाणे'त्ति सन्तिष्ठन्ति प्राणिन एभिराकारविशेषैरिति संस्थानानि, तद्यथा–'समचतुरंसे'त्ति समं–नाभेरुपर्यधश्च सकलपुरुषलक्षणोपेतावयवतया तुल्यं तच्च तच्चतुरस्रं च–अन्यूनाधिकाश्चतस्रोऽप्यस्रयो यस्य तत्समचतुरस्रं, अस्रयश्च पर्यङ्कासनोपविष्टस्य जानुनोरन्तरमासनस्य ललाटोपरिभागस्य चान्तरं दक्षिणस्कन्धवामजानुनोरन्तरं वामस्कन्धदक्षिणजानुनोश्चान्तरमिति संस्थानं–आकारः समचतुरस्रसंस्थानं १ न्यग्रोधवत् परिमण्डलं यस्य यथा न्यग्रोध उपरि सम्पूर्णप्रमाणोऽधस्तु हीनस्तथा यत् संस्थानं नाभेरुपरि सम्पूर्णमधस्तु न तथा तत् न्यग्रोधपरिमण्डलमुपरिविस्तारबहुलमिति भावः २ आदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते ततः सह आदिना–नाभेरधस्तनभागेन यथोक्तप्रमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णलक्षणेन वर्त्तते इति **सादि** उत्सेधबहुलमिति भावः, इदमुक्तं भवति–यत् संस्थानं नाभेरधः प्रमाणोपपन्नमुपरि हीनं तत् सादीति ३ यत्र शिरोग्रीवाहस्तपादादिकं यथोक्तप्रमाणलक्षणोपेतं न पृष्ठयुदरादि तत् कुब्जं ४ यत्र पुनरुरउदरपृष्ठ्यादिप्रमाणलक्षणोपेतं शिरोग्रीवाहस्तपादादिकं च हीनं तद् वामनं ५ यत्र तु सर्वेऽप्यवयवाः प्रमाणलक्षणपरिभ्रष्टास्तत् हुंडं ६, सम्प्रति खलु–निश्चये हे आयुष्मन्! मनुजानां हुण्डं संस्थानं वर्त्तते, अथोपदेशं ददातीत्याह-**'संघयण०'** संहननं संस्थानं शरीरादेरुच्चत्वम्–उच्छ्रयमानं आयुश्च मनुजानां चकारादन्येषां अपि अनुसमयं–समयं समयं प्रति परिहीयते अवसर्पिणीकालदोषेणेति ॥ १ ॥ **'कोहमा०'** क्रोधमानमायालोभाश्च उत्सन्नं–प्रवाहेण वर्द्धन्ते–पूर्वमनुष्यापेक्षया विशेषतो वर्धन्ते, मनुष्याणां कूटतुलानि–कूटतोलनाद्युपकरणानि कूटमानानि–कूटकुडवप्रस्थादिमानानि च वर्द्धन्ते तेन कूटतुलादिनाऽनुमानेन–अनुसारेण **'सव्वं'**ति क्रयाणकवाणिज्यादिकं कूटं वर्द्धते इति ॥ २ ॥ **'विस०'** विषमाः अर्पणायान्याः ग्रहणायान्याश्च अद्य दुष्षमाकाले तुला तथा जनपदेषु–मगधादिदेशेषु मानानि–कुडवसेतिकादिप्रमाणानि विषमाणि–असमानि जातानि, चशब्दादनेकप्रकारवञ्चनानि, तथा विषमाणि–अनेकान्यायकारकाणि राजकुलानि वर्त्तन्ते, अथ तेन कारणेन तुशब्दोऽप्यर्थः वर्षाण्यपि–संवत्सराण्यपि विषमाणि–दुःखरूपाणि जातानीति ॥ ३ ॥ **'विसमे०'** विषमेषु वर्षेषु सत्सु भवन्ति असाराणि–सारवर्जितानि औषधिबलानि–गोधूमादिवीर्याणि, औषधिदुर्बलत्वेन नराणामन्येषामपि आयुः–जीवितं परिहीयते–शीघ्रं क्षीयते इति ॥ ४ ॥ **'एवं'** एवमुक्तप्रकारेण परिहीयमाने लोके कृष्ण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५] + ॥५०--५४॥ दीप अनुक्रम [६५-७०]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

पक्षे चन्द्रवत् ये धार्मिकाः–धर्मयुक्ताः मनुष्यास्तेषां जीवितं–जीवितकालः सुजीवितं–सुष्ठु जीवितं ज्ञातव्यमिति ॥ ५ ॥
अथ शतवर्षायुःपुरुषस्य कियंतो युगायनादयो भवन्तीति दर्शयन्नाह–

आउसो ! से जहा नाम ए केइ पुरिसे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोऊयमंगलपायच्छित्ते सिरसि ण्हाए कंठे-मालाकडे आविद्धमणिसुवन्ने अहयसुमहग्घवत्थपरिहिए चंदणोक्खिन्नगायसरीरे सरससुरहिगंधगोसीसचंदणा-णुलित्तगत्ते सुइमालावन्नगविलेवणे कप्पियहारद्धहारतिसरयपालंबपलंबमाणे कडिसुत्तयसुकयसोहे पिणद्धगे-विज्जअंगुलिज्जगललियंगयललियकयाभरणे नाणामणिकणगरयणकडगतुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलुज्जोवियाणणे मउडदिन्नसिरए हारुत्थयसुकयरइयवच्छे पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिं-गलंगुलिए नाणामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणोवियमिसिमिसंतविरइयसुसिलट्ठविसिट्ठलट्ठआविद्ध-वीरवलए, किं बहुणा ? कप्परुक्खोविव अलंकियविभूसिए सुइपयए भवित्ता अम्मापियरो अभिवाद यिज्जा ॥ तए णं तं पुरिसं अम्मापियरो एवं वइज्जा–जीव पुत्ता ! वाससयंति, तंपियाइं तस्स नो बहुयं भवइ, कम्हा ?, वाससयं जीवंतो वीसं जुगाइं जीवइ, वीसइं जुगाइं जीवंतो दो अयणसयाइं जीवइ, दो अयणसयाइं जीवंतो छ उउसयाइं जीवइ, छ उऊसयाइं जीवंतो बारस माससयाइं जीवइ, बारस माससयाइं जीवंतो चउवीसं पक्खसयाइं जीवइ, चउवीसं पक्खसयाइं जीवन्तो छत्तीसं राइंदियसहस्साइं जीवइ, छत्तीसं राइंदियसहस्साइं जीवंतो दस असीयाइं मुहुत्तसयसहस्साइं जीवइ, दस असीयाइं मुहुत्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	मनुष्यायु: एवं तन्दुल-संख्या गणना

प्रत सूत्रांक [१६] + ||५४..||

दीप अनुक्रम [७१]

तं. वै. प्र. ॥ २९ ॥

सयसहस्साइं जीवंतो चत्तारि उस्सासकोडीसए सत्त य कोडीओ अडयालीसं च सयसहस्साइं चत्तालीसं च सहस्साइं जीवइ, चत्तारि ऊसासकोडीसए जाव चत्तालीसं च ऊसाससहस्साइं जीवंतो अद्धतेवीसं तंदुलवाहे भुंजइ ॥ कहमाउसो! अद्धतेवीसं तंदुलवाहे भुंजइ ।, गोयमा! दुब्बलाए खंडियाणं बलियाए छडियाणं खयरमुसलपच्चाहयाणं ववगयतुसकणियाणं अखंडाणं अफुडियाणं फलगसरियाणं एक्केक्कवीयाणं अद्धतेरसपलियाणं पत्थएणं, सेवियणं पत्थए मागहए कल्लं पत्थो सायं पत्थो चउसट्ठी तंदुलसाहस्सीओ मागहओ पत्थओ बिसाहस्सिएणं कवलेणं बत्तीसं कवला पुरिसस्स आहारो अट्ठावीसं इत्थीयाए चउवीसं पंडगस्स, एवामेव आउसो! एयाए गणणाए दो असइओ पसई दो पसईओ सेइआ होइ चत्तारि सेइआ कुलओ चत्तारि कुलया पत्थो चत्तारि पत्था आढगं सट्ठीए आढयाण जहण्णए कुंभे असीइए आढयाणं मज्झिमे कुंभे आढयसयं उक्कोसए कुंभे अट्ठेव आढगसयाणि वाहो, एएणं बाहप्पमाणेणं अद्धतेवीसं तंदुलवाहे भुंजइ ॥

'आउसो! से जहा'० हे आयुष्मन्! स यथानामको–यत्प्रकारनामा देवदत्तादिनामेत्यर्थः, अथवा 'से' इति सः यथेति दृष्टान्तार्थः नामेति सम्भावनायां ए इति वाक्यालङ्कारे कश्चित् पुरुषः स्नातः–कृतस्नानः स्नानानन्तरं कृतं–निष्पादितं बलिकर्म–स्वगृहदेवतानां पूजा येन सः कृतबलिकर्म्मा, तथा कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तार्थं–दुःस्वप्नादिविघातार्थमवश्यकरणीयत्वाद्येन स तथा, तत्र कौतुकानि–मषीतिलकादीनि मङ्गलानि तु–सिद्धार्थकदध्यक्षतदूर्वाङ्कुरा-

तन्दुलादि-गणना सू. १६

॥ २९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीनि, शिरसि–उत्तमाङ्गे स्नातः–कृतस्नानः, पूर्वं देशस्नानमुक्तमिह तु सर्वस्नानमिति न पौनरुक्त्यं, कण्ठे–ग्रीवायां 'मालकडे'त्ति कृता माला–पुष्पमाला येन स कृतमालः प्राकृतत्वात् 'मालकडे'त्ति, आविद्धानि–परिहितानि मणिसुवर्णानि येन स तथा, तत्र 'मणि'त्ति मणिमयानि भूषणानि एवं सुवर्णमयानीति, अहतं–मलमूषकादिभिरनुपहतं प्रत्यग्रमित्यर्थः सुमहार्घ्यं–बहुमूल्यं वस्त्रं परिहितं येन स तथा, चन्दनेन–श्रीखण्डेनोत्कीर्ण–चर्चितं गात्रं–शरीरं येन स तथा, सरसेन–रसयुक्तेन सुरभिगन्धेन–सुष्ठु गन्धयुक्तेन गोशीर्षचन्दनेन–हरिचन्दनेन 'अन्विति' अतिशयेन लिप्तं–विलेपनरूपं कृतं गात्रं–शरीरं यस्य स तथा, शुचिनी–पवित्रे माला–पुष्पमाला वर्णकं विलेपनं च–मण्डनकारि कुङ्कुमादि विलेपनं यस्य स तथा, कल्पितो–विन्यस्तो हारः–अष्टादशसरिकोऽर्धहारो–नवसरिकः त्रिसरकं–प्रतीतमेव यस्य स तथा, प्रालंबो–झुम्बनकं प्रलम्बमानो यस्य स तथा, कटिसूत्रेण–कट्याभरणविशेषेण सुष्ठु कृता शोभा यस्य स तथा, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, अथवा कल्पितहारादिभिः सुष्ठु कृता शोभा यस्य स तथा, पिनद्धानि–परिहितानि ग्रैवेयकाङ्गुलीयकानि कण्ठकाख्योर्मिकाख्यानि येन स तथा, तथा 'ललियंगय'त्ति ललिताङ्गके–शोभमानशरीरे अन्यान्यपि ललितानि–शोभनानि कृतानि–न्यस्तानि आभरणानि–सारभूषणानि यस्य स तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, नानामणिकनकरत्नानां कटकत्रुटिकैः–हस्तबाह्याभरणविशेषैः बहुत्वात् स्तम्भिताविव स्तम्भितौ भुजौ यस्य स तथा, अधिकरूपेण सश्रीकः–सशोभो यः स तथा, कुण्डलाभ्यां–कर्णाभरणाभ्यामुद्योतितं–उद्योतं प्रापितमाननं–मुखं यस्य स तथा, मुकुटदीप्तशिरस्कः, हारेणावस्तृतं–आच्छादितं तेनैव सुष्ठु कृतं रतिदं च वक्षः–उरो यस्यासौ हारावस्तृतसुकृतरतिदवक्षाः (क्षसः), प्रलम्बेन–दीर्घेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रलम्बमानेन च सुष्ठु कृतं पटेन तु उत्तरीयं–उत्तरासङ्गो येन स तथा, मुद्रिकाः–अङ्गुल्याभरणानि ताभिः पिङ्गलाः–कपिला अङ्गुलयो यस्य स तथा, नानामणिकनकरत्नैर्विमलानि–विगतमलानि महार्हाणि–महार्घाणि निपुणेन शिल्पिना 'उचिय'त्ति परिकर्मितानि 'मिसिमिसिंत'त्ति दीप्यमानानि यानि विरचितानि–निर्वृत्तानि सुश्लिष्टानि–सुसन्धीनि विशिष्टानि-अन्येभ्यो विशेषवन्ति लष्टानि–मनोहराणि आविद्धानि–परिहितानि वीरवलयानि येन स तथा, सुभटो हि यदि कश्चिद-न्योऽप्यस्ति वीरव्रतधारी तदा असौ मां विजित्य मोचयत्वेतानि वलयानीति स्पर्धयन् यानि कटकानि परिदधाति तानि वीरवलयानीत्युच्यन्ते, किं बहुना वर्णितेनेति शेषः, कल्पवृक्ष इवालङ्कृतो दलादिभिर्विभूषितश्च फलादिभिः एवमसावपि मुकुटादिभिरलङ्कृतो विभूषितश्च भवति वस्त्रादिभिरिति, शुचिपदं–पवित्रस्थानमित्यर्थः, भूत्वा भूयः अम्बापितरौ–मातापि-तरावभिवादयते–पादयोः प्रणिपातं करोतीत्यर्थः। ततः–अभिवादनानन्तरं 'ण'मिति वाक्यालङ्कारे तं पुरुषं–स्वपुत्र-लक्षणं मातापितरौ एवं वदेतां–कथयतां इत्यर्थः–हे पुत्र ! त्वं जीव वर्षशतमिति, अथ यदि तस्य पुत्रस्य वर्षशतप्रमाणमायुः स्यात् तदा स जीवति नान्यथेति, तदपिच आयुः 'आइं'ति अलङ्कारे तस्य–वर्षशतायुःपुरुषस्य न बहुकं–वर्षशताधिकं भवति, कस्मात् ?, यस्माद् वर्षशतं जीवन् विंशतियुगान्येव जीवति निरुपक्रमायुष्कत्वात्, तत्र युगं–चन्द्रादिवर्षपञ्चात्मकमिति १ विंशतियुगानि जीवन् पुरुषः द्वे अयनशते जीवति, तत्रायनं षण्मासात्मकमिति २ द्वे अयनशते जीवञ्जीवः षड् ऋतुशतानि जीवति, तत्रर्तुः मासद्वयात्मकः ३ षड् ऋतुशतानि जीवन् जन्तुर्द्वादश मासशतानि जीवति द्वादश मासशतानि जीवन् प्राणी चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवति २४०० चतुर्विंशतिपक्षशतानि जीवन् षट्त्रिंशदहो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रसहस्राणि जीवति सत्त्वः ३६०००,६ षट्त्रिंशदहोरात्रसहस्राणि जीवन् असुमान् दश मुहूर्त्तलक्षाण्यशीतिमुहूर्त्तसहस्राणि १०८०००० (च) जीवति ७ दशलक्षमुहूर्त्ताण्यशीतिमुहूर्त्तसहस्राणि (च) जीवन् देहधारी चत्वार्युच्छ्वासकोटिशतानि सप्तकोटीः अष्टचत्वारिंशच्छतसहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि च जीवति देहभृत् ४०७४८४०००, ८ चत्वार्युच्छ्वासकोटिशतानि यावच्चत्वारिंशदुच्छ्वाससहस्राणि जीवन् सार्धद्वाविंशतिं तन्दुलवाहान् वक्ष्यमाणस्वरूपान् भुनक्ति। कथम्?–हे आयुष्मन्!–हे सिद्धार्थनन्दन! सार्धद्वाविंशतितन्दुलवाहान् भुनक्ति संसारीति?, हे गौतम! दुर्बलिकया स्त्रिया खण्डितानां बलवत्या रामया छटितानां सूर्पादिना खदिरमुशलप्रत्याहतानामपगततुषकणिकानामखण्डानां–सम्पूर्णावयवानामस्फुटितानां–राजिरहितानां 'फलगसरियाणं'ति फलकविनीतानां कर्करादिकर्षणैनैकैकबीजानां वीननार्थं पृथक् पृथक्कृतानामित्यर्थः, एवंविधानां सार्धद्वादशपलानां तन्दुलानां प्रस्थको भवति, 'णं' वाक्यालङ्कारे, पलमानं यथा–पञ्चभिर्गुञ्जाभिर्माषः षोडशमाषैः कर्षः अशीतिगुञ्जाप्रमाण इत्यर्थः स यदि कनकस्य तदा सुवर्णसंज्ञः नान्यस्य रजतादेरिति, चतुर्भिः कर्षैः पलमिति विंशत्यधिकशतत्रयगुञ्जाप्रमाणमित्यर्थः ३२०, सोऽपि च प्रस्थकः मगधे भवो मागध इत्युच्यते, 'कल्लं'ति श्वः प्रातःकाल इत्यर्थः, प्रस्थो भवति भोजनायेति १ 'साय'मिति सन्ध्यायां प्रस्थो भोजनायेति २। एकस्मिन् मागधके प्रस्थके कति तन्दुला भवन्तीत्याह–'चउसट्ठि०' चतुःषष्टितन्दुलसाहस्रिको मागधः प्रस्थो भवत्येकः, एकः कवलः कतिभिः तन्दुलैः स्यादित्याह–'बिसाहस्सिएणं कवलेणं'ति द्विसाहस्रिकेण तन्दुलेन कवलो भवति, तत्र गुञ्जाः कति भवन्ति?, यथा–एकविंशत्यधिकशतप्रमाणाः किञ्चिन्यूना एका गुञ्जा चेति, अनेन कवलमानेन पुरुषस्य द्वात्रिंशत्क-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

वलरूप आहारो भवति १ स्त्रिया अष्टाविंशतिकवलरूप आहारः २ पण्डकस्य–नपुंसकस्य चतुर्विंशतिकवलरूप आहारः ३ 'एवामेव'त्ति उक्तप्रकारेण वक्ष्यमाणप्रकारेण च हे आयुष्मन्! एतया गणनया एतत्पूर्वोक्तं मानं भवति॥ अथासत्यादि-मानपूर्वकमष्टाविंशतिसहस्राधिकलक्षतन्दुलमानं चतुःषष्टिकवलप्रमाणं एवंविधं प्रस्थद्वयं प्रतिदिनं भुञ्जन् शतवर्षेण कति तन्दुलवाहान् कति तन्दुलांश्च भुनक्तीत्याह–'दो असईउ पसई'इत्यादि, धान्यभृतोऽवाङ्मुखीकृतो हस्तोऽसतीत्युच्यते द्वाभ्यामसतीभ्यां प्रसृतिः १ द्वाभ्यां प्रसृतिभ्यां सेतिका भवति २ चतसृभिः सेतिकाभिः कुडवः ३ चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः ४ चतुर्भिः प्रस्थैराढकः ५ षष्ट्याऽऽढकैर्जघन्यकुम्भः ६ अशीत्याऽऽढकैर्मध्यमकुम्भः ७ आढकशतेनोत्कृष्टः कुम्भः ८, अष्ट-भिराढकशतैर्वाहो भवति ९, अनेन वाहप्रमाणेन सार्धद्वाविंशतिं तन्दुलवाहान् भुनक्ति वर्षशतेनेति।

ते य गणियनिद्दिट्ठा–'चत्तारि य कोडिसया सट्ठिं चेव य हवंति कोडीओ। असीइं च तंदुलसयसहस्सा हवंतित्तिमक्खायं ४६०८०००००॥१॥५५॥तं एवं अद्धतेवीसं तंदुलवाहे भुंजंतो अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजइ, अद्धछट्ठे मुग्गकुंभे भुंजंतो चउवीसं नेहाढगसयाइं भुंजइ, चउवीसं नेहाढगसयाइं भुंजंतो छत्तीसं लवणपल-सहस्साइं भुंजइ, छत्तीसं लवणपलसहस्साइं भुंजंतो छप्पडगसाडगसयाइं नियंसेइ दोमासिएण परियट्टएणं मासिएण वा परियट्टेणं बारस पडसाडगसयाइं नियंसेइ, एवामेव आउसो! वाससयाउयस्स सव्वं गणियं तुलियं मवियं नेहलवणभोयणच्छायणंपि ॥ एयं गणियप्पमाणं दुविहं भणियं महरिसीहिं, जस्सत्थि तस्स गुणिज्जइ जस्स नत्थि तस्स किं गणिज्जइ? ॥

॥ ३१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तांश्च वाहप्रमाणतन्दुलान् गणयित्वा–सङ्ख्यां कृत्वा निर्दिष्टाः–कथिताः,यथा–चत्वारि कोटिशतानि षष्टिश्चैव कोटयः अशीतिस्तन्दुलशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं–कथितं १, कथं, एकेन प्रस्थेन चतुःषष्टितन्दुलसहस्राणि भवन्ति, प्रस्थद्वयेनाष्टाविंशतिसहस्राधिकं लक्षं भवति, प्रतिदिनं द्विर्भोजनेन उक्तप्रमाणान् तन्दुलान् भुंक्ते इति, कथं अष्टाविंशतिसहस्राधिकलक्षं ? वर्षशतस्य षट्त्रिंशदधिकसहस्रमानत्वात् षट्त्रिंशत्सहस्रैर्गुण्यन्ते ४६०८ शून्यानि पञ्च भवन्ति, चत्वारि कोटिशतानि षष्टिः कोटयः अशीतिर्लक्षाणि तन्दुलानामिति । 'तं एवं'ति तदेवं सार्धद्वाविंशतिं तन्दुलवाहान् भुञ्जानः सार्धपञ्चमुद्गकुम्भान् भुंक्ते सार्धपञ्चं मुद्गकुंभान् भुञ्जन् चतुर्विंशतिं स्नेहाढकशतानि भुंक्ते चतुर्विंशतिस्नेहाढकशतानि भुञ्जन् षट्त्रिंशल्लवणपलसहस्राणि भुनक्ति, षट्त्रिंशल्लवणपलसहस्राणि भुञ्जन् षट् पट्टकशाटकशतानि 'नियंसेइ'त्ति परिदधाति, द्वाभ्यां मासाभ्यां 'परियट्टएणं'ति परावर्त्तमानत्वेनेति वा अथवा मासिकेन परावर्त्तनेन द्वादश पट्टशाटकशतानि 'नियंसेइ'त्ति परिदधाति,'एवामेवे'ति उक्तप्रकारेण हे आयुष्मन्! वर्षशतायुषः पुरुषस्य सर्वं गणितं तन्दुलप्रमाणादिना तुलितं पलप्रमाणादिना मवितमसतिप्रसृत्यादिना प्रमाणेन, तत् किमित्याह?–स्नेहलवणभोजनाच्छादनमिति । एतत् पूर्वोक्तं गणितप्रमाणं द्विधा भणितं महर्षिभिः, यस्य जन्तोरस्ति तन्दुलादिकं तस्य गुण्यते, यस्य तु नास्ति तस्य किं गुण्यते?, न किमपीति ।

ववहारगणियदिट्ठं सुहुमं निच्छयगयं मुणेयव्वं । जइ एयं नवि एयं विसमा गणणा मुणेयव्वा ॥ १ ॥ (५६) कालो परमनिरुद्धो अविभज्जो तं तु जाण समयं तु । समया य असंखिज्जा हवंति उस्सास-निस्सासे ॥ २ ॥ (५७) हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो । एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ उच्छवास आदीनां गणना प्रकाश्यते

वुच्चइ ॥ ३ ॥ (५८) सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे। लवाणं सत्तहत्तरीए, एस मुहुत्ते वियाहिए ॥ ४ ॥ (५९) एगमेगस्स णं भंते! मुहुत्तस्स केवइया ऊसासा वियाहिया?, गोयमा!–तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाण तेवत्तरिं च ऊसासा। एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ ५ ॥ (६०) दो नालिया मुहुत्तो सट्ठिं पुण नालिया अहोरत्तो। पन्नरस अहोरत्ता पक्खो पक्खा दुवे मासो ॥ ६ ॥ (६१) दाडिमपुप्फागारा लोहमई नालिया उ कायव्वा। तीसे तलंमि छिद्दं छिद्दपमाणं पुणो वुच्छं ॥ ७ ॥ (६२) छन्नउइपुच्छवाला तिवासजायाएँ गोतिहाणीए। असंवलिया उज्जा य नायव्वं नालियाछिद्दं ॥ ८ ॥ (६३) अहवा उ पुच्छवाला दुवासजायाएँ गयकरेणूए। दो वाला अब्भग्गा नायव्वं नालियाछिद्दं ॥ ९ ॥ (६४) अहवा सुवन्नमासा चत्तारि सुवट्टिया घणा सूई। चउरंगुलप्पमाणा नायव्वं नालियाच्छिद्दं ॥ १० ॥ (६५) उदगस्स नालियाए हवंति दो आढयाओ परिमाणं। उदगं च भाणियव्वं जारिसयं तं पुणो वुच्छं ॥ ११ ॥ (६६) उदगं खलु नायव्वं कायव्वं दूसपट्टपरिपूयं। मेहोदगं पसन्नं सारइयं वा गिरिनईए ॥ १२ ॥ (६७) बारस मासा संवच्छरो य पक्खाउ ते उ चउवीसं। तिन्नेव य सट्ठिसया हवंति राइंदियाणं च ॥ १३ ॥ (६८) एगं च सयसहस्सं तेरस चेव य भवे सहस्साइं। एगं च सयं नउयं हुंति अहोरत्त ऊसासा ॥ १४ ॥ (६९) तित्तीस सयसहस्सा पंचाणउई भवे सहस्साइं। सत्त य सया अणूणा हवंति मासेण ऊसासा ॥ १५ ॥ (७०) चत्तारि य कोडीओ सत्तेव य हुंति सयसहस्साइं। अडयालीससहस्सा चत्तारि सया य वरिसेण ॥ १६ ॥

॥ ३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७१) चत्तारि य कोडिसया सत्त य कोडिओ हुंति अवराओ। अडयाल सयसहस्सा चत्तालीसं सहस्साइं ॥ १७ ॥ (७२) वाससयाउस्सेए उस्सासः इत्तिया मुणेयव्वा । पिच्छह आउस्स खयं अहोनिसं झिज्झमाणस्स ॥ १८ ॥ (७३) राइंदिएण तीसं तु मुहुत्ता नव सयाइं मासेणं । हायंति पमत्ताणं न य णं अवुहा वियाणंति ॥ १९ ॥ (७४) तिन्नि सहस्से सगले छच्च सए उडुवरो हरइ आउं। हेमन्ते गिम्हासु य वासासु य होइ नायव्वं ॥ २० ॥ (७५) वाससयं परमाऊ इत्तो पन्नास हरइ निद्दाए। इत्तो वीसइ हावइ बालत्ते वुड्ढभावे य ॥ २१ ॥ (७६) सीउण्हपंथगमणे खुहापिवासा भयं च सोगे य । नाणाविहा य रोगा हवंति तीसाइ पच्छद्धे ॥ २२ ॥ (७७) एवं पंचासीई नट्ठा पण्णरसमेव जीवंति। जे हुंति वाससइया न य सुलहा वाससयजीवा ॥ २३ ॥ (७८) एवं निस्सारे माणुसत्तणे जीविए अहिवडंते । न करेह चरणधम्मं पच्छा पच्छाणुताहेहा ॥ २४ ॥ (७९) घुट्ठंमि सयं मोहे जिणेहिं वरधम्मतित्थमग्गस्स। अत्ताणं च न याणह इह जाया कम्मभूमीए ॥ २५ ॥ (८०) नइवेगसमं चंचलं जीवियं जुव्वणं च कुसुमसमं । सुक्खं च जमनियत्तं तिन्निवि तुरमाणभुज्जाइं ॥ २६ ॥ (८१) एयं खु जरामरणं परिक्खिवइ वग्गुरा व मयजूहं। न य णं पिच्छह पत्तं संमूढा मोहजालेणं ॥ २७ ॥ (८२)

'ववहार'गाथा, व्यवहारगणितं एतद् दृष्टं–स्थूलन्यायमङ्गीकृत्य कथितं मुनिभिः सूक्ष्मं–सूक्ष्मगणितं निश्चयगतं ज्ञातव्यं, यद्येतन्निश्चयगतं भवति तदैतद् व्यवहारगणितं नास्त्येव, अतो विषमा गणना ज्ञातव्येति ॥ १ ॥ अथ पूर्वोक्तं समयादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूपमाह–'कालो' यः कालः परमनिरुद्धः–अत्यन्तसूक्ष्मः अविभाज्यो–विभागीकर्त्तुमशक्यस्तमेव कालं–समयं जानीहि त्वं, चशब्दादसङ्ख्यसमयात्मिकाऽऽवलिकाऽपि ज्ञेया, एकस्मिन्निःश्वासोच्छ्वासेऽसङ्ख्येयाः समया भवन्ति ॥ २ ॥ 'हट्ठ०' हृष्टस्य–समर्थस्य 'अणवगल्लस्से'ति रोगरहितस्य 'निरुवकिट्ठस्से'ति क्लेशरहितस्य जन्तोः–जीवस्यैको निःश्वासोच्छ्वासः एषः प्राण इत्युच्यते इति ॥ ३ ॥ 'सत्त०' सप्तभिः प्राणैः स स्तोकः कथ्यते, सप्तभिः स्तोकैः स लवः कथ्यते, लवानां सप्तसप्तत्या एष मुहूर्त्तो व्याख्यातः ॥४॥ 'एगमे०' एकैकस्य हे भदन्त ! मुहूर्त्तस्य कियन्त उच्छ्वासा व्याख्याताः ?, हे गौतम ! 'तिन्नि'गाहा, त्रिभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः त्रिसप्तत्योच्छ्वासैः ३७७३ एष मुहूर्त्तो भणितः सर्वैरनन्तज्ञानिभिः ॥ ५ ॥ 'दो नालि०' द्वाभ्यां नालिकाभ्यां–घटिकाभ्यां मुहूर्त्तः स्यात्, षष्ट्या नालिकाभिरहोरात्रः, पञ्चदशभिरहोरात्रैः पक्षः, द्वाभ्यां पक्षाभ्यां मास इति भावार्थः ॥ ६ ॥ अथ उक्तनालिकायाः–स्वरूपमाह–दाडिमे'ति दाडिमपुष्पाकारा लोहमयी नालिका–घटिका कर्त्तव्या भवति, तस्या नालिकायास्तले–अधोभागे छिद्रं–रन्ध्रं कृतं भवति, छिद्रप्रमाणं पुनः वक्ष्ये शिष्यज्ञानायेति ॥ ७ ॥ 'छन्न'त्ति षण्णवतिपुच्छबाला–लाङ्गुलकेशाः, कस्याः–'गोतिहाणीए'त्ति गोवच्छिकायाः, किंभूतायाः ?–'तिवासजायाए'त्ति त्रिवर्षजातायाः, जन्मतो वर्षत्रयाणि जातानीत्यर्थः, किंभूताः केशाः ?–असंवलिताः न खितानखिटिकाकारा जाताः, अत एव ऋजुकाः–सरलाः एषां बालानां घनमेकीभूतानां यादृशं प्रमाणं भवति तादृशं नालिकाच्छिद्रं ज्ञातव्यमिति ॥ ८ ॥ 'अहवा' अथवा पुच्छबालौ द्वौ, कस्याः ?–'गयकरेणूए'त्ति गजकलभिकायाः, किंभूतायाः ?–द्विवर्षजातायाः, किंभूतौ बालौ ?–अभग्नौ, अनेन बालद्वयमानेन नालिकाच्छिद्रं ज्ञातव्यमिति ॥ ९ ॥ 'अह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा सु०' अथवा चतुर्णा स्वर्णमाषाणां सूचिर्भवति, किंभूता सूचिः ?–सु–अतिशयेन वर्त्तिता–वर्तुलीकृता सुवर्त्तिता घना–निबिडा चतुरङ्गुलप्रमाणा, तत्र माषमानं पञ्चगुञ्जाप्रमाणमित्युक्तप्रमाणेन नालिकाच्छिद्रं ज्ञातव्यमिति ॥ १० ॥ इत्युक्तं घटिकाच्छिद्रप्रमाणम् । अथ घट्यां जलप्रमाणमाह–'उदगस्स०'नालिकायां–घटिकायामुदकस्य–जलस्य प्रमाणं द्वावाढकौ भवतः, उदकं यादृशं भणितव्यं भवति तत्तादृशं पुनर्वक्ष्ये इति ॥ १ ॥'जारिसयं' तं उदकं–जलं खलु–निश्चये ज्ञातव्यं कर्त्तव्यं चेति, कीदृशं कर्त्तव्यमित्याह–'दूसपट्ट०' दूष्यपरिपूतं,वस्त्रगलितमित्यर्थः, मेघोदकं प्रसन्नमिति निर्मलं,वा–अथवा 'सारय'ति शरत्कालोद्भवं आश्विनकार्त्तिकोद्भवं यद् गिरिनद्या उदकं ज्ञातव्यं,तच्च स्वभावेन निर्मलं भवतीति ॥ १२ ॥ 'बारस'द्वादशभिर्मासैः संवत्सरस्तस्मिन्संवत्सरे चतुर्विंशतिः पक्षा भवन्ति,तेषु षष्ट्याऽधिकानि त्रीणि शतानि अहोरात्राणि भवन्ति ॥१३॥ 'एगं च' एकं शतसहस्रं–लक्षं त्रयोदश सहस्राणि नवत्यधिकं शतं चाहोरात्रेणैतावन्त उच्छ्वासा भवन्ति ११३१९० इति ॥१४॥ 'तित्तिस०'त्रयस्त्रिंशच्छतसहस्राणि लक्षाणि पञ्चनवतिः सहस्राणि सप्तशतान्यन्यूनान्येतावन्तो मासेनोच्छ्वासा भवन्ति ३३९५७००, इति ॥१५॥ 'चत्तारि०' चतस्रः कोट्यः सप्त लक्षाणि अष्टचत्वारिंशत् सहस्राणि चत्वारि शतानि च ४०७४८४००, इयन्तः वर्षेणोच्छ्वासा भवन्ति ॥ १६ ॥ 'चत्ता०' । 'वासस०' । चत्वारि कोटिशतानि सप्तकोट्यः अपराण्यष्टचत्वारिंशच्छतसहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि च४०७ ४८४०००० ॥१७॥ वर्षशतायुषः एते पूर्वोक्ता उच्छ्वासाः 'इत्तिय'त्ति इयन्तो ज्ञातव्या इति, भो भव्याः ! यूयं पश्यत–ज्ञानचक्षुषा विलोकयत आयुषः क्षयमहोरात्रं क्षीयमाणस्य–समये २ आवीचीमरणेन म्रियमानस्येति॥१८॥'राइ०' अहोरात्रेण त्रिंशन्मुहूर्त्ता भवन्ति,मासेन नव शतानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुहूर्त्तानि, तानि प्रमत्तानां–मद्यादिप्रमादयुक्तानां सुभूमब्रह्मदत्तादीनामिव हीयन्ते, न चाबुधा–मूर्खा विजानन्तीति ॥ १९ ॥ 'तिन्नि०' त्रीणि सहस्राणि षट्शताधिकानि सकलानि–सम्पूर्णानि मूहूर्तानि हेमन्ते–शीतकाले भवन्ति, एतत्प्रमाणमायुर्जीवानां हेमन्ते उडुवरः–सूर्यो हरति, एवं ग्रीष्मे वर्षासु च ज्ञातव्यं भवति, अत्र आर्षत्वेन ग्रीष्मशब्दः स्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च, वर्षशब्दस्तु आवन्तत्वेन स्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च ॥ २० ॥ 'वाससं०' साम्प्रतं जीवानां परमायुः–उत्कृष्टजीवितं वर्षशतं प्रवाहेण ज्ञातव्यम्, इतो–वर्षशतात् पञ्चाशद् वर्षाणि निद्रया हरति–गमयति जीवः, इतः–शेषपञ्चाशद्वर्षतः विंशतिर्वर्षाणि हीयन्ते–यान्ति प्रमादादिना, कथं ?, बालत्वे दशकं वृद्धत्वे च दशकं चेति ॥ २१ ॥ 'सीउ०' शीतोष्णपथगमनानि तथा क्षुत्पिपासा भयं च शोकश्च नानाविधा रोगाश्च भवन्ति, त्रिंशतः पश्चार्धं त्रिंशत्पश्चार्धं पञ्चदशवर्षरूपं तस्मिन्, को भावः ?–शेषत्रिंशतो मध्यात् पञ्चदश वर्षाणि जीवानां शीतोष्णपथगमनादिभिर्मुधा यान्तीति ॥ २२ ॥ 'एवं०' पूर्वोक्तप्रकारेण पञ्चाशीतिवर्षाणि नष्टानि, धर्मं विना विकथानिद्रालस्यवतां मुधा गतानि, कथं ?–निद्रया पञ्चाशद् वर्षाणि ५० बालत्वे दश १० वृद्धभावे दश १० शीतादिभिः पञ्चदश १५, एवं सर्वाणि ८५ इति, ये जीवाः वर्षशतिकाः–वर्षशतप्रमाणा भवन्ति ते जीवाः पञ्चदश वर्षाणि जीवन्ति, अन्येषां वर्षाणां धर्मत्वेनामृतप्रायत्वात्, न च वर्षशतजीविनो जीवाः प्रायः सुलभाः, दुष्प्रापा इत्यर्थः, उक्तं च–'आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं, तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बाल्ये च वृद्धे गतम् । शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते, जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ! ॥ १ ॥ २३ ॥ 'एवं०' एवमुक्तप्रकारेण निःसारे–असारे मानुषत्वे–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुजत्वे तथा जीविते–आयुषि रत्नकोटिकोटिभिरप्यप्राप्येऽधिपतति–समये २ क्षयं गच्छति सतीत्यर्थः न कुरुत यूयं चरण-धर्म–ज्ञानदर्शनपूर्वकं देशसर्वचारित्रं, हा इति महाखेदे, पश्चाद्–आयुःक्षयानन्तरमायुःक्षयचरमक्षणे वा पश्चात्तापं–कायवाङ्मनोभिर्महाखेदं करिष्यथ नरकस्थशशिराजवदिति ॥ २४ ॥ भव्याः प्रश्नयन्ति–कथं वयं नात्मस्वरूपं जानीम इत्युक्ते गुरुराह'–'घुट्ठंमि०' धर्मस्य जिनोक्तरूपस्य तीर्थं–पवित्रकरणस्थानकं तस्य मार्गो ज्ञानदर्शनचारित्ररूपः वरश्चासौ धर्म-तीर्थमार्गश्च स तथा तस्मिन्, प्राकृतत्वात् विभक्तिपरिणामः, जिनैः–रागादिजेतृभिः स्वयं–आत्मना 'घुट्ठंमी'ति कथिते–निरूपिते सति, आत्मानं न यूयं जानीत, क्व सति ?–मोहे सति–तीव्रमिथ्यात्वमिश्रमोहनीयकर्मोदये सतीत्यर्थः, इह कर्मभूमौ जाता अपि, अपेर्गम्यमानत्वादिति, अस्या अर्थो अन्योऽपि सद्गुरुप्रसादात्कार्यः इति ॥ २५ ॥ 'नइ०' नदीवेगसमं चपलं जीवितं–आयुः १ यौवनं कुसुमसमं–पुष्पसदृशं क्षणेन म्लानत्वापत्तेः २ च पुनः यत्सौख्यं तत् 'अनियत्तं'ति अनित्यं ३, एतानि त्रीण्यपि 'तुरमाणभुज्जाइं'ति शीघ्रं भोग्यानि 'भज्जा'इति पाठे तु शीघ्रं भग्नयोग्यानि शीघ्रं भङ्क्त्वा यान्तीत्यर्थः ॥ २६ ॥ 'एयं०' एतज्जरामरणं 'खु' निश्चये जीवलोकं परिक्षिपति–परिवेष्टयति, (व)इवार्थे, यथा वागुरा मृगयूथं परिक्षिपति, न च पश्यत यूयं प्राप्तं जरामरणं मोहजालेन सम्मूढाः–मोहं गताः, श्रीगौतमप्रतिबोधितदेवशर्मद्विजवदिति ॥ २७ ॥ उक्तमायुष्कापेक्षयाऽनित्यत्वं, अथ शरीरापेक्षया दर्शयन्नाह—

आउसो ! जंपिय इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुन्नं मणामं मणभिरामं थिज्जं वेसासियं संमयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं रयणकरंडओविव सुसंगोवियं चेलपेडाविव सुसंपरिवुडं तिल्लपेडाविव सुसंगो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठकरंडक-आदीनाम् गणना प्रकाश्यते

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

वियं मा णं उण्हं मा णं सीयं मा णं वाला मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं चोरा मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाइ यपित्तियसंभियसंनिवाइयविविहा रोगायंका फुसंतुत्तिकट्टु एवंपियाइं अधुवं अनिययं असासयं चयावचइयं विप्पणासधम्मं पच्छा व पुरा व अवस्सविप्पचइयवं ॥ एअस्सवि याइं आउसो ! अणुपुव्वेणं अट्ठारस्स य पिट्ठकरंडगसंधिओ बारस पंसलिया करंडा छप्पंसुलिए कडाहे बिहत्थिया कुच्छी चउरंगुलिया गीवा चउपलिया जिब्भा दुपलियाणि अच्छीणि चउकवालं सिरं बत्तीसं दंता सत्तंगुलिया जीहा अद्धट्ठपलियं हिययं पणवीसं पलाइं कालिज्जं दो अंता पंचवामा पण्णत्ता, तंजहा–थूलंते य १ तणुयंते य २, तत्थ णं जे से थूलंते तेण उच्चारे परिणमइ, तत्थ णं जे से तणुयंते तेणं पासवणे परिणमइ, दो पासा पण्णत्ता, तंजहा–वामे पासे दाहिणपासे य, तत्थ णं जे से वामे पासे से सुहपरिणामे, तत्थ णं जे से दाहिणे पासे से दुहपरिणामे ॥ आउसो ! इमंमि सरीरए सट्ठि संधिसयं सत्तुत्तरं मम्मसयं तिन्नि अट्ठिदामसयाइं नव ण्हारुसयाइं सत्त सिरासयाइं पंच पेसी-सयाइं नव धमणीओ नवनउइं च रोमकूवसयसहस्साइं विणा केसमंसुणा सह केसमंसुणा अद्धट्ठाओ रोमकूवकोडीओ। आउसो! इमंमि सरीरए सट्ठी सिरासयं नाभिप्पभवाणं उड्ढगामिणीणं सिरमुवगयाणं जाओ ? रसहरणीओत्ति वुच्चन्ति जाणंसि निरुवघाएणं चक्खुसोयघाणजीहाबलं च भवइ, जाणं सि उवघाएणं चक्खुसोयघाणजीहाबलं उवहम्मइ ॥ आउसो ! इमंमि सरीरए सट्ठिसिरासयं नाभिप्प-

पृष्ठकरण्ड-कादिगण-ना सू. १६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवाणं अहोगामिणीणं पायतलमुवगयाणं जाणं सि निरुवघाएणं जंघाबलं भवइ, ताणं चेव से उवघाएणं सीसवेयणा अद्धसीसवेयणा मत्थयसूले अच्छीणि अंधिज्जंति । (सूत्रं २४) आउसो ! इमंमि सरीरए सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणं तिरियगामिणीणं हत्थतलमुवगयाणं जाणं सि निरुवघाएणं बाहुबलं हवइ, ताणं चेव से उवग्घाएणं पासवेयणा पुट्ठिवेयणा कुच्छिवेयणा कुच्छिसूले हवइ ॥ आउसो ! इमस्स जंतुस्स सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणां अहोगामिणीणं गुदप्पविट्ठाणं जाणं सि निरुवघाएणं मुत्तपुरीसवाउकम्मं पवत्तइ, ताणं चेव उवघाएणं मुत्तपुरीसवाउनिरोहेणं अरिसा खुब्भंतिपंडु रोगो भवइ आउसो ! इमस्स जंतुस्स पणवीसं सिराओ पित्तधारिणीओ पणवीसं सिराओ सिंभधारिणीओ दस सिराओ सुक्कधारिणीओ सत्त सिरासयाइं पुरिसस्स तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स आउसो ! इमस्स जतुस्स रुहिरस्स आढयं वसाए अद्धाढयं मत्थुलुंगस्स पत्थो मुत्तस्स आढयं पुरिसस्स पत्थो पित्तस्स कुडवो सिंभस्स कुडवो सुक्कस्स अद्धकुडवो, जं जाहे दुट्ठं भवइ तं ताहे अइप्प माणं भवइ, पञ्चकोट्ठे पुरिसे छकोट्ठा इत्थिया नवसोए पुरिसे इक्कारससोया इत्थिया, पञ्च पेसीसयाइं पुरिसस्स तीसूणाइं इत्थियाए वीसूणाइं पंडगस्स (सूत्रं १६)

'आउसो जं०' इत्याद्यालापकरूपं सूत्रं, हे आयुष्मन् ! यदपिच इदं शरीरं–वपुः इष्टं इच्छाविषयत्वात् कान्तं कमनीयत्वात् प्रियं प्रेमनिबन्धनत्वात् मनसा ज्ञायते–उपादीयत इति मनोज्ञं मनसा अम्यते–गम्यते इति मनोऽमं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं. वै. प्र. ॥ ३६ ॥

मनसोऽभिरामं मनोऽभिरामं **सनत्कुमारचक्रिवत्** स्थैर्य–स्थैर्यगुणयोगात् वैश्वासिकं–विश्वासस्थानं संमतं तत्कृतकार्याणां संमतत्वात् बहुमतं बहुष्वपि कार्येषु बहुर्वाऽनल्पतया–अस्तोकतया मतं बहुमतं अनु–विप्रियकरणात् पश्चान्मतमनुमतं भाण्डकरण्डकसमानं–आभरणभाजनतुल्यमादेयमित्यर्थः रत्नकरण्डक इव सुसंगोपितं वस्त्रादिभिः चेलपेटेव–वस्त्रमञ्जूषेव सुष्ठु संपरिवृतं–निरुपद्रवे स्थाने निवेशितं, गृहस्थावस्थास्थशालिभद्रवपुर्वत्, तैलपेटेव–तैलगोलिकेव सुसंगोपितं भङ्गभयात्, 'तेल्लकेला इव सुसंगोविय'त्ति पाठान्तरं तैलकेला–तैलाश्रयो भाजनविशेषः सौराष्ट्रप्रसिद्धः सा च सुष्ठु सङ्गोप्या–सङ्गोपनीया भवति अन्यथा लुठति ततश्च तैलहानिः स्यादिति, **'मा णं०'** माशब्दो निषेधार्थः **'णं'** वाक्यालङ्कारे अथवा 'मा णं'ति मा इदं शरीरमिति व्याख्येयं, ततः सर्वेऽप्युष्णादयो मा स्पृशन्तु **'छुयंतु'** भवन्त्वित्यर्थः, **'तिकट्टु'** इतिकृत्वा, अथवेत्यभिसन्धाय पालितमिति शेषः, तत्रोष्मत्वं–ग्रीष्मादावुष्णत्वं शीतं–शीतकाले शीतत्वं व्यालाः–श्वापदाः सर्पा वा क्षुद्–बुभुक्षा पिपासा–तृषा चौराः–निशाचराः दंशाः मशकाः एते विकलेन्द्रियजन्तुविशेषाः वातिकपैत्तिकश्लेष्मिकसान्निपातिका विविधरोगातङ्काः रोगाः–कालसहा व्याधयः आतङ्काः–त एव सद्योघातिनः **'एवंपि याइ'**न्ति एवमुक्तप्रकारेण अपिचेत्यभ्युच्चये 'आइं'इति वाक्यालङ्कारे, इदं शरीरं न ध्रुवमध्रुवं सूर्योदयवत् न प्रतिनियतकालेऽवश्यंभावि अनियतं–सुरूपादेरपि कुरूपादिदर्शनात् हरितिलकराजसुतविक्रमकुमारशरीरवत् अशाश्वतं–क्षणं क्षणं प्रति विनश्वरत्वात् **सनत्कुमारशरीरवत्** **'चयावचइयं'**ति इष्टाहारोपभोगतया धृत्युपष्टम्भादौदारिकवर्गणापरमाणूपचयाच्चयस्तदभावे तद्विचटनादपचयः चयापचयौ विद्येते यस्य तच्चयापचयिकं पुष्टिगलनस्वभावमित्यर्थः, करकंडुप्रत्येकबुद्धवैराग्यहेतु-

पृष्ठकरण्ड-कादिगण-ना सू. १६

॥ ३६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृषभशरीरवत्, विप्रणाशो–विनश्वरो धर्मः–स्वभावो यस्य तद् विप्रणाशधर्म, 'पच्छा व'त्ति पश्चाद् विवक्षितकालात् परतः 'पुरा व'त्ति विवक्षितकालात् पूर्वं च, यद्वा 'पच्छा पुरा य'त्ति पाठे तु विवक्षितकालस्य पश्चात्पूर्वं च सर्वदैवेत्यर्थः, अवश्यं 'विप्पचइयव्वं'ति विप्रत्यक्तव्यं त्याज्यमित्यर्थः। 'एयस्सवि याइं'ति एतस्य एतस्मिन्नपि च वा वपुषः वपुषि वा 'आइं'ति वाक्यालङ्कारे 'आउसो'त्ति हे आयुष्मन्! आनुपूर्व्या–अनुक्रमेणाष्टादश पृष्ठिकरण्डकस्य–पृष्ठिवंशस्य सन्धयो-ग्रन्थिरूपा भवन्ति, यथा वंशस्य पर्वाणि, तेषु चाष्टादशसु सन्धिषु मध्ये द्वादशभ्यः सन्धिभ्यो द्वादश पांशुलिकाः निर्गत्योभयपार्श्वावावृत्य वक्षःस्थलमध्योर्ध्ववर्त्यस्थिनि लगित्वा पल्लकाकारतया परिणमन्ति, अत आह–'बारस०' शरीरे द्वादश पांशुलिकारूपाः करण्डकाः–वंशका भवन्ति, तथा 'छप्पंसु०' तस्मिन्नेव पृष्ठिवंशे शेषषट्सन्धिभ्यः षट् पांशुलिका निर्गत्य पार्श्वद्वयमावृत्य हृदयस्योभयतो वक्षःपञ्जरादधस्तात् शिथिलकुक्षेस्तूपरिष्टात्परस्परासंमिलितास्ति-ष्ठन्ति, अयं च कटाह इत्युच्यते, द्वे वितस्ती कुक्षिर्भवति, चतुरङ्गुलप्रमाणा ग्रीवा भवति, तौल्येन मगधदेशप्रसिद्धपलेन चत्वारि पलानि जिह्वा भवति, अक्षिमांसगोलकौ द्वे पले भवतः, चतुर्भिः कपालैः–अस्थिखण्डरूपैः शिरो भवति, मुखेऽशुचि-पूर्णे प्रायो द्वात्रिंशद्दन्ता अस्थिखण्डानि भवन्ति, 'सत्तंगु०' जिह्वा–मुखाभ्यन्तरवर्तिमांसखण्डरूपा दैर्घ्येणात्माङ्गुलतः सप्ताङ्गुला भवति 'अद्धट्ठ०' हृदयान्तरवर्ति मांसखण्डं सार्धपलत्रयं भवति, 'पणवी० कालिज्जं' वक्षोऽन्तर्गूढमांसविशे-षरूपं पञ्चविंशतिः पलानि स्युः, द्वे अन्त्रे प्रत्येकं पञ्चपञ्चवामप्रमाणे प्रज्ञप्ते जिनैः, तद्यथा–स्थूलान्त्रं १ तन्वन्त्रं २, तत्र यत् तत् स्थूलान्त्रं तेनोच्चारः परिणमति, तत्र च यत्तन्वन्त्रं तेन प्रस्रवणं–मूत्रं परिणमति, 'दो पा०' द्वे पार्श्वे प्रज्ञप्ते, तद्यथा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वामपार्श्वं १ दक्षिणपार्श्वं २ च, तत्र–तयोर्मध्ये यत्तत् वामपार्श्वं तत् शुभपरिणामं भवति, तत्र च यत्तद्दक्षिणपार्श्वं तद्दुःखपरिणामं भवति । तथा 'आउसो !' हे आयुष्मन् ! अस्मिन् शरीरे षष्टिः सन्धिशतं ज्ञातव्यं, तत्र सन्धयः–अङ्गुल्याद्यस्थिखण्डमेलापकस्थानानि, 'सत्तुत्तरे' सप्तोत्तरं मर्मशतं भवति, तत्र मर्माणि–शङ्खाणिकावियरकादीनि 'तिन्नि०' त्रीण्यस्थिदामशतानि–हड्डुमालाशतानि भवन्ति, 'नव पहारुसयाइं'ति स्नायूनां–अस्थिबन्धनशिराणां नव शतानि, 'सत्त०' सप्त शिराशतानि–स्नसाशतानि, पञ्च पेसीशतानि, 'नव ध०' नव धमन्यो–रसवहनाड्यः 'नव०' नवनवतिः रोमकूपशतसहस्राणि रोम्णां–तनुरुहाणां कूपा इव कूपा रोमकूपाः रोमरन्ध्राणीत्यर्थः तेषां नवनवतिर्लक्षा इति, विना केशश्मश्रुभिः, केशश्मश्रुभिः सह पुनः सार्धास्तिस्रो रोमकूपकोट्यो भवन्ति मनुष्यशरीरे इति ॥ अथ पूर्वोक्तानि शिरासप्तशतानि कथं भवन्तीति सूत्रकार एवाह–'आउसो०' हे आयुष्मन् ! अस्मिन् शरीरे 'सट्ठि' इह पुरुषशरीरेनाभिप्रभवाणि शिराणां–स्नसानां सप्त शतानि भवन्ति, तत्र षष्ट्यधिकं शतं शिराणां नाभिप्रभवाणामूर्ध्वगामिनीनां शिरस्युपागतानां भवन्ति, यास्तु रसहरण्य इत्युच्यन्ते, 'जाणं सि'त्ति यासामूर्ध्वगामिनीनां शिराणां 'से' तस्य जीवस्य निरुपघातेन–अनुग्रहेण चक्षुः१श्रोत्र२घ्राण३जिह्वा४बलं भवति, यासां 'से' तस्योपघातेन–विघातेन चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाबलमुपहन्यते, तथा 'आउसो' हे आयुष्मन् ! अस्मिन् शरीरे षष्ट्यधिकं शतं १६० शिराणां नाभिप्रभवाणां नाभेरुत्पन्नानामित्यर्थः अधोगामिनीनां पादतले उपगतानां–प्राप्तानां भवति, यासां निरुपघातेन जङ्घाबलं भवति, तासां चैव 'से' तस्य जीवस्योपघातेन–विकारप्राप्तेन शीर्षवेदना–सर्वमस्तकपीडा अर्धशीर्षवेदना मस्तकशूलं च भवति,

पृष्ठकरण ड कादिगणना सू. १६

:: ३७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

'अच्छिणि'त्ति अक्षिणी–लोचने 'अंधिज्जंति'त्ति अन्धीभवत इत्यर्थः ॥ २ ॥ तथा 'आउसो०' हे आयुष्मन् ! अस्मिन् प्रत्यक्षे शरीरे षष्ट्यधिकं शतं शिराणां नाभिप्रभवाणां तिर्यग्गामिनीनां हस्ततले उपागतानां भवति, यासां निरुपघातेन–निरुपद्रवेण बाहुबलं भवति, तासां चैव 'से' तस्योपघातेन–उपद्रवेण पार्श्ववेदना पृष्ठिवेदना कुक्षिवेदना कुक्षिशूलं च भवति, तथा 'आउ०' हे आयुष्मन् ! अस्य जन्तोः षष्ट्यधिकं शतं शिराणां नाभिप्रभवाणामधोगामिनीनां गुदप्रविष्टानां भवति, यासां निरुपघातेन–उपद्रवाभावेन मूत्रपुरीषवातकर्म–प्रस्रवणकर्म विष्ठाकर्म वायुकर्म प्रवर्त्तते, मूत्रादिकं सुखेन कर्त्तुं शक्यत इत्यर्थः, तासां चैव गुदप्रविष्टशिराणामुपघातेन मूत्रपुरीषवातनिरोधो भवति, निरोधेनार्शांसि–गुदाङ्कुराः 'हरस' इति लोकोक्तिः क्षुभ्यन्ति–क्षोभं यान्ति, परमपीडाकरं रुधिरं मुञ्चन्तीत्यर्थः, भवभावनोक्तकालर्षिवत् पाण्डुरोगश्च भवति, तथा 'आउसो०' हे आयुष्मन्! अस्य जन्तोः पञ्चविंशतिः शिराः 'सिंभधारिणी'त्ति श्लेष्मधारिण्यो भवन्ति, 'पंच०' पञ्चविंशतिः शिराः पित्तधारिण्यः, दश शिराः शुक्रधारिण्यः, 'सत्त सि०' पुरुषस्योक्तप्रकारेण सप्त शिराशतानि भवन्ति, कथम् ?,शरीरेऊर्ध्वगामिन्यः १६० अधोगामिन्यः १६० तिर्यग्गामिन्यः १६० अधोगामिन्यो गुदप्रविष्टाः १६० श्लेष्मधारिण्यः २५ पित्तधारिण्यः २५ शुक्रधारिण्यः १० एवं सर्वाः ७०० शिराः भवन्ति पुरुषाणां शरीर इति । 'तीसू०' पुरुषोक्ताः यास्तास्त्रिंशदूनाः स्त्रियाः भवन्ति, सप्तत्यधिकानि षट् शतानि भवन्तीत्यर्थः ६७०, 'वीसू०' पुरुषोक्ता यास्ताः विंशत्यूनाः पाण्डकस्याशीत्यधिकानि षट् शतानि भवन्तीत्यर्थः ६८० ॥ अथ शरीरे रुधिरादिमानमाह–'आउसो' हे आयुष्मन् ! अस्य जन्तोः रुधिरस्याढकं भवति, वसाया अर्धाढकं, 'मत्थुलिंगस्से'ति मस्तकभेज्जकस्य फिप्फिसादेर्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१६] + ||५६--८२||

दीप अनुक्रम [७४--१०२]

तं. वै. प्र. ॥ ३८ ॥

प्रस्थः मूत्रस्याढकं पुरीषस्य प्रस्थः पित्तस्य कुडवः श्लेष्मणः कुडवः शुक्रस्यार्धकुडवो भवति, एतच्चाढकप्रस्थादिमानं बाल-कुमारतरुणादीनां 'दो असईओ पसई दो पसईयो य सेइआ होइ चत्तारि सेईया कुलओ चत्तारि कुलओ पत्थो चत्तारि पत्था आढग'मित्यात्मीयरहस्तेनानेतव्यमिति, 'जं जाहे' यद् रुधिरादिकं यदा दुष्टं भवति तत्तदाऽतिप्रमाणं भवति, अयमाशयः–उक्तमानस्य शुक्रशोणितादेर्हीनाऽऽधिक्यं स्यात्तत्तत्र वातादिदूषितत्वेनावसेयमिति। 'पंच०' पञ्चकोष्ठः पुरुषः, पुरुषस्य पञ्च कोष्ठकाः भवन्ति, षट्कोष्ठा स्त्री, कोष्ठकस्वरूपं सम्प्रदायादवगन्तव्यमिति, नवश्रोत्रः पुरुषः, तत्र कर्णद्वय २-चक्षुर्द्वय २ घ्राणद्वय २ मुख ७ पायू ८ पस्थ ९ लक्षणानि इति, एकादशश्रोत्रा स्त्री भवति, पूर्वोक्तानि नव स्तनद्वययुक्तान्ये-कादश श्रोत्राणि स्त्रीणां भवन्तीत्येतन्मानुषीणामुक्तं, गवादीनां तु चतुःस्तनीनां त्रयोदश १३ शूकर्यादीनामष्टस्तनीनां सप्तदश १७ निर्व्याघाते एवं, व्याघाते पुनरेकस्तन्या अजाया दश १०, त्रिस्तन्याश्च गोर्द्वादशेति । 'पंच' पुरुषस्य पञ्च पेसीशतानि भवन्ति ५०० त्रिंशदूनानि स्त्रियाः ४७० विंशत्यूनानि पञ्च पेसीशतानि नपुंसकस्य ४८० ॥ उक्तं शरीरस्वरूपं, अथास्यैवासुन्दरत्वं दर्शयन्नाह—

अब्भिंतरंसि कुणिमं जो परिअत्तेउ बाहिरं कुज्जा । तं असुइं दट्ठूणं सयावि जणणी दुगुंछिज्जा ॥ १ ॥ (८३)
माणुस्सयं सरीरं पूइयमं मंससुक्कहट्टेणं । परिसंठवियं सोहइ अच्छायणगंधमल्लेणं ॥ २ ॥ (८४) इमं चेव य सरीरं सीसघडीमेयमज्जमंसट्ठियमत्थुलुंगसोणियवालुंडयचम्मकोसनासियसिंघाणयधीमलालयं अमणु-न्नगं सीसघडीभंजियं गलंतनयणं कन्नुट्ठगंडतालुयं अवालुयाखिल्लचिक्कणं चिलिचिलियं दंतमलमइलं बीभ-

शरीरासुन्दरता गा. ८३-८४ सू. १७

॥ ३८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरस्य असुन्दरत्वं दर्शयते

प्रत सूत्रांक [१७] + ॥८३--८४॥ दीप अनुक्रम [१०३--१०५]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] “तंदुलवैचारिकं” मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

च्छदरिसणिज्जं अंसलगबाहुलगअंगुलीअंगुट्ठगनहसंधिसंघायसंधियमिणं बहुरसियागारं नालखंधच्छिरा-अणेगण्हारुबहुधमणिसंधिनद्धं पागडउदरकवालं कक्खनिक्खुडं कक्खगकलियं दुरंतं अट्ठिधमणिसंताणसंतयं सव्वओ समंता परिसवंतं च रोमकूवेहिं सयं असुइं सभावओ परमदुग्गंधि कालिज्जयअंतपित्तजरहिययफो-प्फसफेफसपिलिहोदरगुज्झकुणिमनवछिड्डुविविधिवंतहिययं दुरहिपित्तसिंभमुत्तोसहाययणं सव्वओ दुरंतं गुज्झोरुजाणुजंघापायसंघायसंधियं असुइ कुणिमगंधि, एवं चिंतिज्जमाणं बीभच्छदरिसणिज्जं अधुवं अनिययं असासयं सडणपडणविद्धंसणधम्मं पच्छा व पुरा व अवस्स चइयव्वं निच्छयओ सुट्ठु जाण एयं आइनिहणं एरिसं सव्वमणुयाणं देहं एस परमत्थओ सभावो (सूत्रं १७)

‘अब्भिंतर०’ गाथा, ‘अब्भिंतरंसी’ति शरीरमध्यप्रदेशे ‘जो’त्ति यत् ‘कुणिमं’ अपवित्रं मांसं वर्त्तते तन्मांसं ‘परि-यत्तेउ’त्ति परावर्त्य–परावर्तं कृत्वा यदि बहिः–बहिर्भागे कुर्यात् तदा तन्मांसं ‘असुइ’ अशुचि–अपवित्रं दृष्ट्वा स्वका अपि आत्मीया अपि अन्या आस्तां स्वजननी–स्वाम्बा ‘दुगुंछिज्ज’त्ति जुगुप्सां कुर्यात्–हा! किं मयाऽपवित्रं दृष्टमिति ॥ १ ॥ ‘माणुस्सयं’ गाथा, मानुष्यकं–मनुष्यसम्बन्धि शरीरं–वपुः ‘पूइयमं’ति पूतिमत् अपवित्रमित्यर्थः, केन ?–मांसशुक्र-हड्डेन, हड्डुं देश्यमस्थिवाचीति, ‘परिसंठवियं’ति विभूषितं सत् ‘सोहइ’त्ति शोभते, केन ?–आच्छादनगन्धमाल्येन, तत्राच्छादनं–वस्त्रादि गन्धः–कर्पूरादिः माल्यं–पुष्पमालादि, ‘इमं चेव य’इत्यादि गद्यं, इदमेव च मनुजशरीरं–वपुः शीर्षघटीव मस्तकहड्डुं मेदश्च–अस्थिकृत् चतुर्थो धातुरित्यर्थः मज्जा च–शुक्रकरः षष्ठो धातुरित्यर्थः मांसं च–पललं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयो धातुरित्यर्थः, अस्थि च–कुल्यं पञ्चमो धातुरित्यर्थः मस्तुलुङ्गश्च–मस्तकस्नेहः शोणितं च–रुधिरं द्वितीयो धातुरित्यर्थः वालुण्डकश्च–अन्तरशरीरावयवविशेषः चर्मकोशश्च–छविकोपः नासिकासिङ्घानश्च–घ्राणमलविशेषः धिग्जलं च–अन्यदपि शरीरोद्भवं निन्द्यमलं तानि तेषामालयं–गृहमित्यर्थः अमनोज्ञकं–मनोज्ञभाववर्जितं शीर्षघटी–करोटिका तया भञ्जितं–आक्रान्तमित्यर्थः, गलन्नयनं कर्णोष्ठगण्डतालुकं अवालुया इति लोकोक्त्या अवालुखिल्लश्च खील इति जनोक्तिः ताभ्यां चिक्कणं–पिच्छलमित्यर्थः 'चिलिचिलिय'मिति चिगचिगायमानं घर्मावस्थादौ दन्तानां मलं दन्तमलं तेन 'मइल'त्ति मलिनं–मलीमसमित्यर्थः, बीभत्सं–भयङ्करं दर्शनं–आकृतिरवलोकनं वा रोगादिना कृशावस्थायां यस्य वपुषस्तद् बीभत्सदर्शनं, 'अंसलग'त्ति अंसयोः–स्कन्धयोः 'बाहुलग'त्ति बाह्वोः–भुजयोः अङ्गुलीनां–करशाखानां 'अंगुट्ठग'त्ति अङ्गुष्ठयोरङ्गुलयोः नखानां–महाराजानां (करजानां) ये सन्धयस्तेषां सङ्घातेन–समूहेन सन्धितमिदं वपुः 'बहु०' बहुरसिकागारं 'नालखं०' नालेन स्कन्धशिराभिः–अंसधमनीभिः 'अणेगण्हारु'त्ति अनेकस्नायुभिः–अस्थिबन्धनशिराभिः बहुधमनिभिः–अनेकशिराभिः सन्धिभिः–अस्थिमेलापकस्थानैश्च 'नद्धं'ति नियन्त्रितं प्रकटं–सर्वजनदृश्यमानमुदरकपालं–जठरकडहल्लकं यत्र तत्प्रकटोदरकपालं, कक्षैव–दोर्मूलमेव निष्कुटं–कोटरं जीर्णशुष्कवृक्षवद् यत्र तत् कक्षनिष्कुटं कक्षायां गच्छन्तीति कक्षागाः अधिकारात्तद्गतकुत्सितवालास्तैः कलितं–सदा सहितं कक्षागकलितं यद्वा कक्षायां भवाः काक्षिकाः–तद्गतकेशलतास्ताभिः कलितं, 'दुरंतं'ति दुष्टः अन्तो–विनाशः प्रान्तो वा यस्य तद्दुरन्तं–दुष्पूरं, अस्थिधमन्योः सन्तानेन–परम्परया 'संतयं'ति व्याप्तं यत्तदस्थिधमनिसन्तानसन्ततं, सर्वतः–सर्वप्रकारैः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समन्ततः–सर्वत्र रोमकूपै–रोमरन्ध्रैः परिस्रवत्–गलगलत् सर्वत्र सच्छिद्रघटवत् चशब्दादन्यैरपि नासिकादिरन्ध्रैः परिस्रवत् 'सयं'ति स्वयमेवाशुचि–अपवित्रं 'सभावउ'त्ति स्वभावेन परमदुष्टगन्धीति 'कालिज्जयअंतपित्त-जरहिययफोप्फसफेफसपिलिह'त्ति प्लीहा–गुल्म 'उदर'त्ति जलोदरं गुह्यकुणिमं–मांसं नव छिद्राणि यत्र तत् तथा 'थिविथिवंत'त्ति द्रिग्द्रिगायमानं 'हियय'त्ति हृदयं यत्र तत् परमयावत् हृदयं नव छिद्राणि तु नयनद्वयकर्ण-द्वयनासिकाद्वयजिह्वाशिश्नापानलक्षणानि 'दुरहि'त्ति दुर्गन्धानां पित्तसिंभमूत्रलक्षणानामौषधानामायतनं–गृहं सर्वौष-धायतनं, रोगादावस्मिन् सर्वौषधप्रक्षेपात्, सर्वत्र–सर्वभागे दुष्टोऽन्तो–विनाशः प्रान्तो वा यस्य तत् सर्वतोदुरन्तं, 'गुह्यो०' गुह्योरुजानुजङ्घापादसङ्घातसन्धितं–उपस्थसक्थिनलकीलनलकिनीक्रमणपरस्परमीलनसमूहसीवितं, अशुचिकुणिमस्य–अप-वित्रमांसस्य गन्धो यत्र तदशुचिकुणिमगन्धि 'एवं चि०' एवं–पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्त्यमानं बीभत्सदर्शनीयं भयङ्कररूपं 'अधुवं अनिययं असासयं'चेति पदत्रयस्य व्याख्या पूर्ववत्, 'सडण०' शटनपतनविध्वंसनधर्मं, तत्र शटनं–कुष्ठादिनाऽङ्गुल्यादेः पतनं बाह्वादेः खड्गच्छेदादिना विध्वंसनं–सर्वथा क्षयः एते धर्माः–स्वभावा यस्य तत्तथा, 'पच्छा व पुरा व अवस्स चइयव्वं'त्ति पूर्ववत् 'निच्छ०' निश्चयतः सुष्ठु भृशं त्वं 'जाण'त्ति जानीहि एतन्मनुष्यशरीरं 'आइनि-हणं'ति आदिनिधनं सादिसान्तमित्यर्थः, ईदृशं पूर्ववर्णितं वक्ष्यमाणं वा सर्वमनुजानां–समस्तमनुष्याणां देहः–शरीरं एषः पूर्वोक्तः शरीरस्य परमार्थतः–तत्त्वतः स्वभावः ॥ अथ विशेषतः शरीरादेरशुभत्वं दर्शयति—

सुक्कंमि सोणियंमि य संभूओ जणणिकुच्छिमज्झंमि । तं चेव अमिज्झरसं नवमासे घुंटियं संतो ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

प्रत सूत्रांक [१७] + ||८५--८७||

दीप अनुक्रम [१०६--१०८]

तं. वै. प्र. ॥ ४० ॥

(८५) जोणीमुहनिप्फिडिओ थणगच्छीरेण वद्धिओ जाओ। पगईअमिज्झमइओ कह देहो धोइउं सक्को? ॥ २ ॥ (८६) हा असुइसमुप्पन्ना य निग्गया य जेण चेव दारेणं। सत्ता मोहपसत्ता रमंति तत्थेव असुइदारंमि ॥ ३ ॥ (८७)

'सुक्कंमि'इत्यादि यावदस्थिमलो तावत् पद्यं, 'सुक्क०' जननीकुक्षिमध्ये–मातृजठरान्तरे शुक्रे–वीर्ये शोणिते–लोहिते चशब्दादेकत्र मिलिते सति प्रथमं सम्भूतः–उत्पन्नस्तदेवामेध्यरसं–विष्ठारसं 'घुंटियं'ति पिबन् सन् नव मासान् यावत् स्थित इति ॥ १ ॥ 'जोणि०' योनिमुखनिस्फिटितः–स्मरमन्दिरकुण्डनिर्गतः 'थणगं'ति स्तनकक्षीरेण वर्धितः–पयोधरदुग्धेन वृद्धिं गतः, प्रकृत्या अमेध्यमयो जातः, एवंविधो देहः कहं 'धोइउं'ति धौतुं–क्षालयितुं शक्यः ? ॥ २ ॥ 'हा अ०' हा इति खेदे अशुचिसमुत्पन्ना–अपवित्रोत्पन्नाः येनैव द्वारेण निर्गताः चशब्दात् यौवनमापन्नाः सत्त्वा जीवाः मोहप्रसक्ताः–विषयरक्ताः–रमन्ति–क्रीडन्ति तत्रैव अशुचिद्वारे छेदोक्तसमुद्रप्रसूतकुमारवदिति ॥ ३ ॥ एवं शरीराशुचित्वे सति शिष्यः प्रश्नयति—

किह ताव घरकुडीरी कईसहस्सेहिं अपरितंतेहिं। वन्निज्जइ असुइबिलं जघणंति सकज्जमूढेहिं ? ॥४॥ (८८) रागेण न जाणंति वराया कलमलस्स निद्धमणं। ताणं परिणंदंता फुल्लं नीलुप्पलवणं व ॥ ५ ॥ (८९) कित्तियमित्तं वन्ने अमिज्झमइयंमि वच्चसंघाए। रागो हु न कायव्वो विरागमूले सरीरंमि ॥ ६ ॥ (९०) ॥ किमिकुलसयसंकिण्णे असुइमचुक्खे असासयमसारे। सेयमलपुव्वडंमी निव्वेयं वच्चह सरीरे ॥ ७ ॥ (९१)

॥ ४० ॥

शरीरविशेषासुन्दरता गा. ८५-११२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरस्य अशुभत्वं संबंधे शिष्यस्य प्रश्नोत्तर

दंतमलकन्नगूहगसिंघाणमले य लालमलबहुले । एयारिसे बीभच्छे दुगुंछणिज्जंमि को रागो ? ॥ ८ ॥ (९२) को सडणपडणविकिरिणविद्धंसणचयणमरणधम्मंमि । देहंमि अहीलासो कुहियकडिणकट्ठभूयंमि ॥९॥ (९३) कागसुणगाण भक्खे किमिकुलभत्ते य वाहिभत्ते य । देहंमि मच्छभत्ते सुसाणभत्तंमि को रागो ? ॥ १० ॥ (९४) असुई अमिज्झपुन्नं कुणिमकलेवरकुडिं परिसवंति । आगंतुयसंठवियं नवच्छिड्डमसासयं जाणे ॥ ११ ॥ (९५) पिच्छसि मुहं सतिलयं सविसेसं रायएण अहरेणं । सकडक्खं सविआरं तरलच्छिं जुव्वणित्थीए ॥ १२ ॥ (९६) पिच्छसि बाहिरमट्ठं न पिच्छसी उज्जरं कलिमलस्स । मोहेण नच्चयंतो सीसघडीकंजियं पियसि ॥ १३ ॥ (९७) सीसघडीनिग्गालं जं निट्ठुहसी दुगुंछसी जं च । तं चेव रागरत्तो मूढो अइमुच्छिओ पियसि ॥ १४ ॥ (९८) पूइयसीसकवालं पूइयनासं च पूइदेहं च । पूइयछिड्डुविछिड्डुं पूइयचम्मेण य पिनद्धं ॥ १५ ॥ (९९) अंजणगुणसुविसुद्धं ण्हाणुव्वट्टणगुणेहिं सुकुमालं । पुप्फुम्मीसियकेसं जणेइ बालस्स तं रागं ॥ १६ ॥ (१००) जं सीसपूरउत्ति य पुप्फाइं भणंति मंदविन्नाणा । पुप्फाइं चिय ताइं सीसस्स य पूरयं सुणह ॥ १७ ॥ (१०१) मेओ वसा य रसिया खेले सिंघाणए य छुभ एयं । अह सीसपूरओ भे नियगसरीरम्मि साहीणो ॥ १८ ॥ (१०२) सा किर दुप्पडिपूरा वच्चकुडी दुप्पया नवच्छिद्दा । उक्कडगंधविलित्ता बालजणो अइमुच्छियं गिद्धो ॥ १९ ॥ (१०३) जं पेमरागरत्तो अवयासेऊण गूढमुत्तोलिं । दंतमलचिक्कणंगं सीसघडीकंजियं पियसि ॥ २० ॥ (१०४) दंतमुसलेसु गहणं गयाण मंसे य ससयमीयाणं । वालेसुं चम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रीणं चम्मनद्धे दीवियाणं च ॥ २१ ॥ (१०५) पूइयकाए य इहं चवणमुहे निच्चकालवीसत्थो । आइक्खसु सब्भावं किम्मिऽसि गिद्धो तुमं मूढ ! ॥ २२ ॥ (१०६) दंतावि अकज्जकरा वालाविव वड्ढमाण बीभच्छा । चम्मंपि य बीभच्छं भण किं तसि तं गओ रागं ? ॥ २३ ॥ (१०७) सिंभे पित्ते मुत्ते गूहंमि य वसाइ दंतकुंडीसु । भणसु किमत्थं तुज्झं असुइंमि विवड्ढिओ रागो ? ॥ २४ ॥ (१०८) जंघट्ठियासु ऊरु पइट्ठिया तट्ठिया कडीपिट्ठी । कडियट्ठिवेढियाइं अट्ठारस पिट्ठिअट्ठीणि ॥ २५ ॥ (१०९) दो अच्छिअट्ठियाइं सोलस गीवट्ठिया मुणेयव्वा । पिट्ठीपइट्ठियाओ बारस किल पंसुली हुंति ॥ २६ ॥ (११०) अट्ठियकढिणे सिरण्हारुबंधणे मंसचम्मलेवंमि । विट्ठाकोट्ठागारे को वच्चघरोवमे रागो ? ॥ २७ ॥ (१११) जह नाम वच्चकूवो निच्चं भिणिभिणभणंतकायकली । किमिएहिं सुलुसुलायइ सोएहि य पूइयं वहइ ॥ २८ ॥ (११२)

'किह ता०' हे पूज्याः ! कथं तावत् गृहकुड्याः स्त्रीदेहस्येत्यर्थः 'अपरितंते०' अपरितान्तैः– अश्रान्तैः–परिश्रममगणयद्भिः स्वकार्यमूढैः–स्वस्वार्थमौढ्यगतैः कविसहस्रैः 'जघणं'ति स्त्रीकटेरग्रभागं भगरूपमित्यर्थः वर्ण्यते–वचनविस्तरेण विस्तार्यते, किंभूतं जघनं ?–'अशुचिबिलं' परमापवित्रं विवरम्, उक्तं च–"चर्मखण्डं सदाभिन्नं, अपानोद्गारवासितम् । तत्र मूढाः क्षयं यान्ति, प्राणैरपि धनैरपि॥ १ ॥" तत्र प्राणैः सत्यक्यादयः क्षयं गताः धनैर्धम्मिल्लादयः इति ॥४॥ 'रागे०' हे शिष्य ! रागेण–तीव्रकामरागेण न जानन्ति हृदये चशब्दादन्येषां न कथयन्ति वराकाः–तपस्विनः कलमलस्य–अपवित्रमलस्य निर्धमनं खालू इति 'ता णं'ति 'णं' वाक्यालङ्कारे तत्–जघनं 'परिणंदंति'त्ति परमविषयासक्ता वर्णयन्ति,

शरीरविशेषासुन्दरता गा. ८५-११२

॥ ४१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

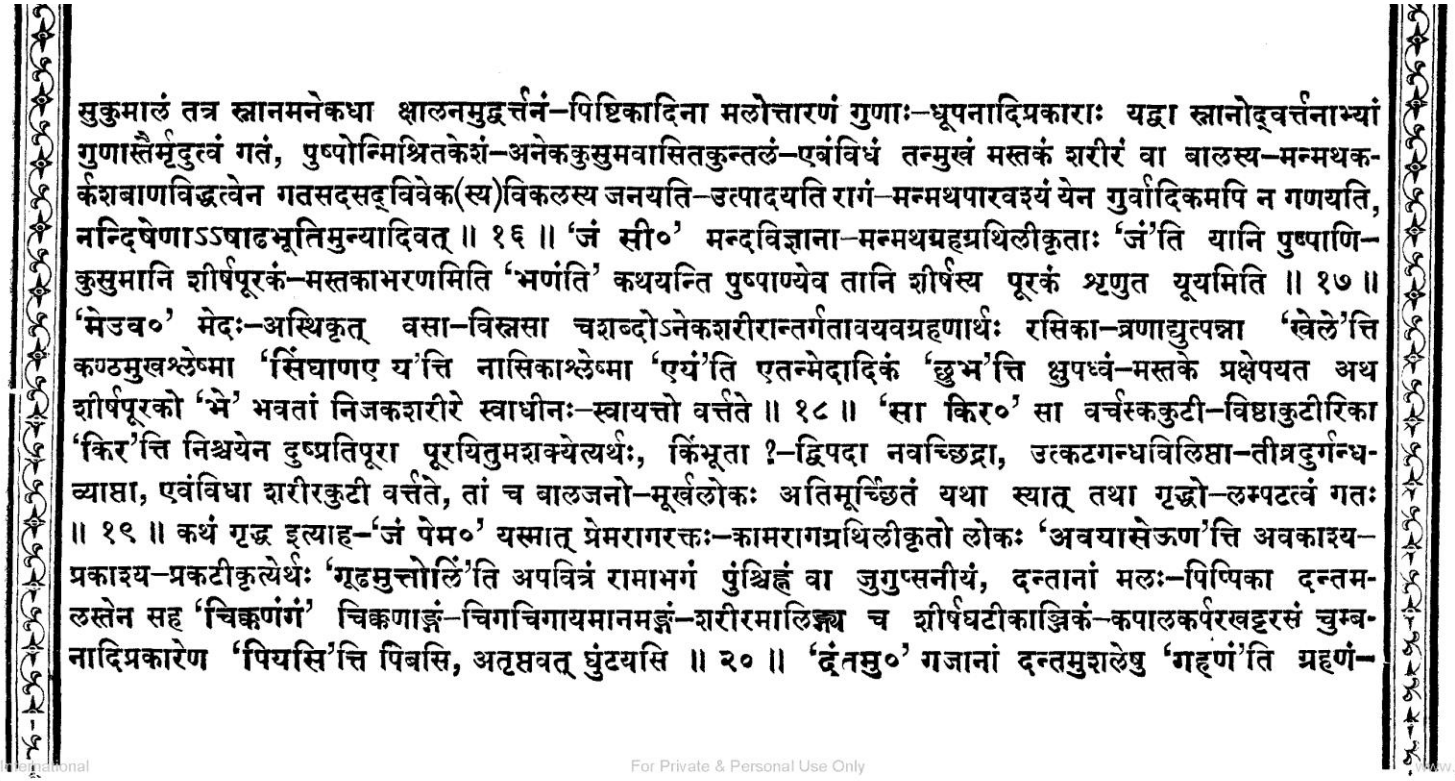
कथम् ?–वकार इवार्थे, इवोत्प्रेक्षते, फुल्लं–प्रफुल्लं विकसितमित्यर्थः नीलोत्पलवनं–इन्दीवरकाननम् ॥ ५ ॥ 'कित्तिय०' कियन्मात्रं–कियत्प्रमाणं 'वन्ने'त्ति वर्णयामि शरीरे–वपुषि, किंभूते ?–अमेध्यं प्रचुरमस्मिन्नित्यमेध्यमये–गूथात्मके इत्यर्थः, वर्चस्कसङ्घाते–परमापवित्रविष्ठासमूहे 'विरागमूले'त्ति विरुद्धो रागः विरागः मनोजराग इत्यर्थः तस्य मूलं–कारणं कामासक्तानामङ्गारवतीरूपदर्शने चन्द्रप्रद्योतनस्येव, यद्वा विगतो–गतो रागो–मन्मथभावो यस्मात्स विरागः वैराग्यमित्यर्थः तस्य मूलं–कारणं, काष्ठश्रेष्ठेरिव (श्रेष्ठिन इव) तस्मिन् विरागमूले हु यस्मादेवं तस्माद्रागो न कर्त्तव्यः, स्थूलभद्रवज्रस्वामिजम्बूस्वाम्यादिवत् ॥ ६ ॥ 'किमि०' कृमिकुलशतसङ्कीर्णे 'असुइमचुक्खे'त्ति अशुचिके–अपवित्रमलव्याप्ते अचुक्षे–अशुद्धे सर्वथा पवित्रीकर्तुमशक्यत्वात्, अशाश्वते क्षणं क्षणं प्रति विनश्वरत्वात्, असारे–सारवर्जिते 'सेयमलपुव्वडंमि'त्ति दुर्गन्धस्वेदमलचिगचिगायमाने, एवंविधे शरीरे हे जीवाः ! यूयं निर्वेदं–वैराग्यं व्रजत–गच्छत, विक्रमयशोनृपस्येवेति ॥ ७ ॥ 'दंतम०' दन्तमलकर्णमलगूथकसिंघानमले चशब्दः शरीरगतानेकप्रकारमलग्रहणसूचनार्थः लालामलबहुले एतादृशे बीभत्से–जुगुप्सनीये सर्वथा निन्द्ये वपुषि को रागः ? ॥ ८ ॥ 'को सड०' देहे–शरीरे कः अभिलाषः–वाञ्छा ?, किंभूते ?–शटनपतनविकिरणविध्वंसनच्यवनमरणधर्मे, तत्र शटनं कुष्ठादिनाऽङ्गुल्यादेः पतनं बाह्वादेः खड्गच्छेदादिना विकिरणं–विनश्वरत्वं विध्वंसनं–रोगज्वरादिना जर्जरीकरणं च्यवनं–हस्तपादादेर्देशक्षयः मरणं–सर्वथा क्षयः, पुनः किंभूते ?–कुथितकठिनकाष्ठभूते–विनष्टकर्कशदारुतुल्ये ॥ ९ ॥ 'कागसु०' देहे को रागः ?, किंभूते ?–काकश्वानयोः–घूकारिभषणयोः भक्ष्ये–खाद्ये कृमिकुलभक्ते च व्याधिभक्ते च मत्स्यभक्ते च क्वचिन्मच्चु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

भक्तेत्ति मृत्युभक्तमिति श्मशानभक्ते ॥ १० ॥ 'असुइ' अशुचि–सदाऽविशुद्धममेध्यपूर्णं–विष्ठाभूतं कुणिमकलेवरकुडिं–मांसशरीरहड्डुयोर्गृहं 'परिसवंति'त्ति परिस्रवत्–सर्वतो गलत्, आगन्तुकसंस्थापितं–मातापित्रोः शोणितपुद्गलैर्निष्पादितं नवच्छिद्रं–नवरन्ध्रोपेतमशाश्वतं–अस्थिरं एवंविधं वपुस्त्वं जानोहीति ॥ ११ ॥ 'पिच्छसि' 'जुवणित्थीए'त्ति यौवनस्त्रियाः–तरुण्याः मुखं–तुण्डं त्वं पश्यसि नन्दिषेणशिष्य १ अर्हन्नक २ स्थूलभद्रसतीर्थ्यक३वत्, किंभूतं ?–सतिलकं–सपुण्ड्रं सविशेषं–कुङ्कुमकज्जलादिविशेषसहितं, केन सह?–रागेण–ताम्बूलादिरागवताऽधरेण–ओष्ठेन सह सकटाक्षं–अर्धवीक्षणसहितं सविकारं–भ्रूचेष्टासहितं, यथा तपस्विनामपि मन्मथविकारजनकं, तरले–चपले काकलोचनवत् अक्षिणी यत्र तत्तरलाक्षि इति ॥१२॥ 'पिच्छ०' एवं त्वं बहिर्मृष्टं–बहिर्भागमठारितं पश्यसि–सरागदृष्ट्याऽवलोकयसि, न पश्यसि–अन्धवन्न विलोकयसि 'उज्जरं'ति मध्यगतं कलिमलं–अपवित्रं यद्वा न पश्यसि कलिमलस्य–अपवित्रस्य 'उज्जरं'ति निर्जरणं मोहेन–रतिमोहोदयेन नृत्यन्–भूतावेष्टित इव चेष्टां कुर्वन् 'सीसघडीकंजियं पियसि'त्ति मस्तकघटीरसमपवित्रं पिबसि–पानं करोषि चुम्बनादिप्रकारेणेति ॥१३॥ 'सीस०' मस्तकोद्भवापवित्ररसं यन्निष्ठीवयसि–थूत्करोषि जुगुप्ससे–कुत्सां करोषीत्यर्थः यच्च त्वं तदेव 'रागरत्तो' विषयासक्तः मूढो–महामोहं गतः अतिमूर्च्छितः–तीव्रगृद्धिं गतः पिबसि ॥ १४ ॥ 'पूइय०' पूतिकशीर्षकपालं–दुर्गन्धिमस्तककर्परं पूतिकनासं–अपवित्रनासिकं पूतिदेहं–दुर्गन्धिगात्रं पूतिकच्छिद्रबिवृद्धं–अपवित्रलघुविवरवृद्धविवरं पूतिकचर्मणा–अशुभाजिनेन पिनद्धं–नियन्त्रितम् ॥ १५ ॥ 'अंजण०' अञ्जनगुणसुविशुद्धं–तत्राञ्जनं–लोचने कज्जलं गुणा–नाडकगोफणकराखडिकादयः तैः सुष्ठु विशुद्धं–अत्यर्थं शोभायमानं स्नानोद्वर्तनगुणैः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



सुकुमालं तत्र स्नानमनेकधा क्षालनमुद्वर्त्तनं–पिष्टिकादिना मलोत्तारणं गुणाः–धूपनादिप्रकाराः यद्वा स्नानोद्वर्त्तनाभ्यां गुणास्तैर्मृदुत्वं गतं, पुष्पोन्मिश्रितकेशं–अनेककुसुमवासितकुन्तलं–एवंविधं तन्मुखं मस्तकं शरीरं वा बालस्य–मन्मथकर्कशबाणविद्धत्वेन गतसदसद्विवेक(स्य)विकलस्य जनयति–उत्पादयति रागं–मन्मथपारवश्यं येन गुर्वादिकमपि न गणयति, नन्दिषेणाऽऽषाढभूतिमुन्यादिवत् ॥ १६ ॥ 'जं सी०' मन्दविज्ञाना–मन्मथग्रहग्रथिलीकृताः 'जं'ति यानि पुष्पाणि–कुसुमानि शीर्षपूरकं–मस्तकाभरणमिति 'भणंति' कथयन्ति पुष्पाण्येव तानि शीर्षस्य पूरकं शृणुत यूयमिति ॥ १७ ॥ 'मेउव०' मेदः–अस्थिकृत् वसा–विस्रसा चशब्दोऽनेकशरीरान्तर्गतावयवग्रहणार्थः रसिका–व्रणाद्युत्पन्ना 'खेले'त्ति कण्ठमुखश्लेष्मा 'सिंघाणए य'त्ति नासिकाश्लेष्मा 'एयं'ति एतन्मेदादिकं 'छुभ'त्ति क्षुपध्वं–मस्तके प्रक्षेपयत अथ शीर्षपूरको 'मे' भवतां निजकशरीरे स्वाधीनः–स्वायत्तो वर्त्तते ॥ १८ ॥ 'सा किर०' सा वर्चस्ककुटी–विष्ठाकुटीरिका 'किर'त्ति निश्चयेन दुष्प्रतिपूरा पूरयितुमशक्येत्यर्थः, किंभूता ?–द्विपदा नवच्छिद्रा, उत्कटगन्धविलिप्ता–तीव्रदुर्गन्धव्याप्ता, एवंविधा शरीरकुटी वर्त्तते, तां च बालजनो–मूर्खलोकः अतिमूर्च्छितं यथा स्यात् तथा गृद्धो–लम्पटत्वं गतः ॥ १९ ॥ कथं गृद्ध इत्याह–'जं पेम०' यस्मात् प्रेमरागरक्तः–कामरागग्रथिलीकृतो लोकः 'अवयासेऊण'त्ति अवकाश्य–प्रकाश्य–प्रकटीकृत्येर्थः 'गूढमुत्तोलिं'ति अपवित्रं रामाभगं पुंश्चिह्नं वा जुगुप्सनीयं, दन्तानां मलः–पिप्पिका दन्तमलस्तेन सह 'चिक्कणंगं' चिक्कणाङ्गं–चिगचिगायमानमङ्गं–शरीरमालिङ्ग्य च शीर्षघटीकाङ्गिकं–कपालकर्परखट्टरसं चुम्बनादिप्रकारेण 'पियसि'त्ति पिबसि, अतृप्तवत् घुंटयसि ॥ २० ॥ 'दंतमु०' गजानां दन्तमुशलेषु 'गहणं'ति ग्रहणं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं वै. प्र. ॥ ४३ ॥

आदानं लोकानां वर्त्तते मांसे चशब्दात् स्नसाश्रृङ्गादौ शशकमृगाणां ग्रहणं वर्त्तते, चमरीणां वालेषु ग्रहणं, द्वीपिकानां–चित्रकव्याघ्रादीनां चर्मनखेषु ग्रहणं, चशब्दादनेकतिरश्चामवयवग्रहणं वर्त्तते। को भावः ?–यथा गजादीनां तिरश्चां दन्तादिकं सर्वेषां भोगाय भवति तथा मनुष्यावयवो न भोगाय भवति पश्चादतः कथ्यतेऽनेनादौ जिनधर्मो विधेय इति ॥२१॥ 'पूइ०' इह पूतिकाये–अपवित्रवपुषि च्यवनमुखे–मरणसम्मुखे नित्यकालविश्वस्तः–सदा विश्वासं गतः 'आइक्खसु०'आख्याहि–कथय सद्भावं–हार्दं 'किम्हिऽसि'त्ति कस्मादसि गृद्धस्त्वं मूढो–मूर्खः, यद्वा हे मूढ !–मूर्ख ब्रह्मदत्तदशमुखादिवत् ॥२२॥ 'दंता०'दन्ता अप्यकार्यकराः वाला अपि विवर्धमानाः सर्पवद् बीभत्सा भयङ्कराः चर्मापि बीभत्सं भण–कथय किं 'तसि०'ति तस्मिन् शरीरे 'त'मिति त्वं रागं गतः॥ २३ ॥ 'सिंभे'त्ति० कफे पित्ते–मायुषि मूत्रे–प्रस्रवणे गूथे–विष्ठायां 'वसाइ'त्ति वसायां स्नसायां 'दंतकुंडीसु'त्ति हड्डभाजने, यद्वाऽनुस्वारोऽलाक्षणिकः दन्तकुड्यां, यद्वा 'दंतकुंडीसु'त्ति दंष्ट्रासु भण–कथय किमर्थं तवाशुचावपि वर्धितो रागः ? ॥ २४ ॥ 'जंघ०' 'जंघट्ठियासु ऊरू'त्ति जङ्घास्थिकयो-रूरू प्रतिष्ठितौ 'पइट्ठिया तट्ठिया कडीपिट्ठी'त्ति अत्रायं पदसम्बन्धः–तयोरूर्वोः स्थिता तत्स्थिता कटिः–श्रो-णिर्भवति, कट्यां प्रतिष्ठिता स्थिता 'पिट्ठी'त्ति पृष्ठिर्भवति कट्यस्थिवेष्टितान्यष्टादश १८ पृष्ठ्यस्थीनि भवन्ति शरीरे इति ॥ २५ ॥ 'दो अ०' द्वे अक्ष्यस्थिनी भवतः, षोडश ग्रीवास्थीनि ज्ञातव्यानि, पृष्ठिप्रतिष्ठिताः द्वादश किलेति प्रसिद्धे पंशुल्यो भवन्ति ॥ २६ ॥ 'अट्ठिय०' अस्थिभिः 'कढिणे' कठिनेऽस्थिकठिने यद्वा–कठिनान्यस्थिकानि यत्र तत्तथा तस्मिन्, शिरास्नसानां लघ्वितराणां बन्धनं यत्र तत्तथा तस्मिन्, मांसचर्मलेपे विष्ठाकोष्ठागारे–वर्चस्कगृहोपमे

शरीरविशे-षासुन्दरता गा. ८५-११२

॥ ४३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलेवरे हे जीव! तव को रागः? ॥ २७ ॥ 'जह' यथेति दृष्टान्तोपदर्शने नामेति कोमलामन्त्रणे सम्भावने वा 'वच्चकूवो'त्ति वर्चस्ककूपो विष्ठाभृतकूपो भवति, किंभूतः?–'भिणिभिणी'त्ति शब्दं 'भणंत'त्ति भणतां–भृशं कथयतां काकानां कलिः–वायसानां सङ्घामो यत्र स भिणिभिणिभणत्काककलिः, कृमिकैः–विष्ठानीलंगुभिः सुलुसुलेत्येवंशब्दं करोतीति-सुलुसुलायते, स्रोतोभिश्च–रेलकैः पूतिकं–परमदुर्गन्धं वहति–स्रवतीत्यर्थः विष्ठाकूपः, तथेदमपि शरीरं ज्ञातव्यं मृतावस्थायां रोगाद्यवस्थायां वेति ॥२८॥ अथ शरीरस्य शवावस्थां दर्शयति गाथात्रयेण–

उद्धियनयणं खगमुहविकट्टियं विप्पइन्नबाहुलयं । अंतविकट्टियमालं सीसघडीपागडीघोरं ॥ २९ ॥ (११३) भिणिभिणिभणंतसद्दं विसप्पियं सुलुसुलिंतमंसोडं । मिसिमिसिमिसिमिसंतकिमियं थिविथिविथिविअंतबीभच्छं ॥ ३० ॥ (११४) पागडियपंसुलीयं विगरालं सुक्कसंधिसंघायं । पडियं निच्चेयणयं सरीरमेयारिसं जाण ॥ ३१ ॥ (११५) वच्चाउ असुइतरं नवहिं सोएहिं परिगलंतेहिं । आमगमल्लगरूवे निच्चेयं वच्चह सरीरे ॥ ३२ ॥ (११६) दो हत्था दो पाया सीसं उच्चंपियं कबंधंमि । कलमलकोट्ठागारं परिवहसि दुयादुयं वच्चं ॥ ३३ ॥ (११७) तं च किर रूववंतं वच्चंतं रायमग्गमोइण्णं । परगंधेहिं सुगंधय मन्नंतो अप्पणो गंधं ॥ ३४ ॥ (११८) पाडलचंपयमल्लियअगरुयचन्दणतुरुक्कवामीसं । गंधं समोयरंतं मन्नंतो अप्पणो गंधं ॥३५॥ (११९) सुहवाससुरहिगंधं वायसुहं अगरुगंधियं अंगं । केसा एहाणसुगंधा कयरो ते अप्पणो गंधो? ॥३६॥ (१२०) अच्छिमलो कन्नमलो खेलो सिंघाणओ य पूओ अ । असुईमुत्तपुरीसो एसो ते अप्पणो गंधो ॥३७॥ (१२१) (सूत्रं १८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरस्य शव-अवस्थां दर्शयते

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

'उद्धि० भिणि० पाग०' उद्धृते–निष्कासिते काकादिभिर्नयने–लोचने यस्य यस्मिन् यस्माद्वा तदुद्धृतनयनं, खगमुखैः–विहगतुण्डैः 'विकट्टियं'ति विकर्त्तितं–विशेषेण स्थाने स्थाने पाटितं खगमुखविकर्त्तितं, विप्रकीर्णौ–अवकीर्णौ विरलाविति यावत् 'बाहुलयं'ति बाहू–प्रवेष्टौ यस्य शवस्य तद् विप्रकीर्णबाहु 'अंतविकट्टियमालं'ति विकर्षितान्त्रमालं शृगालादिभिरिति 'सीसघडीपागडी'त्ति प्रकटया शीर्षघटिकया–तुम्बलिकया घोरं–रौद्रं ॥ २९ ॥ 'भिणि०' 'भिणिभिणिभणंत'त्ति धातूनामनेकार्थत्वादुत्पद्यमानः शब्दो यत्र तत् भिणिभिणभणच्छब्दं मक्षिकादिभिर्गणगणायमानमित्यर्थः, विसर्पद्–अङ्गादिशिथिलत्वेन विस्तारं व्रजत् 'सुलुसुलिंतमंसोडं'ति सुलुसुलायमानमांसपुटं 'मिसिमिसिमिसिंतकिमियं'ति मिसिमिसित्ति–मिसन्तः शब्दं कुर्वन्तः कृमयो यत्र तत् मिसिमिसिमिसत्कृमिकं 'थिविथिविथिविअंतबीभच्छं'ति छवछवायमानैरन्त्रैर्बीभत्सं–रौद्रमित्यर्थः ॥ ३० ॥ 'पग०' प्रकटिताः–प्रकटत्वं प्राप्ताः पांशुलिका यत्र तत्प्रकटितपांशुलिकं, विकरालं–भयोत्पादकं, शुष्काश्च ताः सन्धयश्च शुष्कसन्धयस्तासां सङ्घातः–समुदायो यत्र तच्छुष्कसन्धिसङ्घातं, पतितं गर्त्तादौ निश्चेतनकं–चैतन्यविवर्जितं शरीरं–वपुः एतादृशं–पूर्वोक्तधर्मयुक्तं त्वं 'जाण'त्ति जानीहि, 'जाणे'इति पाठे तु निश्चेतनकं शरीरमहमीदृशं जानामीति ॥ ३१ ॥ 'वच्चाउ०' नवभिः स्रोतोभिः परिगलद्भिः वर्चस्कात्–गूथात् अशुचितरं–अपवित्रतमं 'आमगमल्लगरूवे'त्ति अपक्वशरावतुल्ये शरीरे निर्वेदं–वैराग्यं व्रजत, विष्णुश्रीशरीरे विक्रमयशोराजस्येव ॥३२॥ 'दो हत्था०' द्वे हस्ते द्वे पादे 'सीसं उच्चंपियं'ति शीर्षमुत्–प्राबल्येन चम्पितं यत्र तच्छीर्षोच्चम्पितं तस्मिन् , यद्वा–शीर्षेणोत्–प्राबल्येन चम्पितं–आक्रमितं यत्तत् तथा तस्मिन् ,प्राकृतत्वाद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

नुस्वारः, कलमलकोष्ठागारे एवंविधे कबन्धे 'दुयादुयं'ति शीघ्रं शीघ्रं किं वर्चस्कं परिवहसि त्वमिति, अत्र यथायोगं विभक्तिपरिणामो ज्ञेय इति ॥३३॥ 'तं च कि०' च पुनस्तच्छरीरं 'किर'त्ति सम्भावनायां रूपवत् व्रजत् राजमार्गं 'ओइन्नं'ति प्राप्तं, तत्र परगन्धैः–पाटलचम्पकादिभिः सुगन्धकं जातं, तत्र च त्वमात्मनो गन्धं 'मन्नंतो'त्ति जानन् हर्षयसीति ॥३४॥ परगन्धं दर्शयति–'पाड०' पाटलचम्पकमल्लिकाऽगुरुकचन्दनतुरुष्कमिश्रं वा–अथवा मिश्रं–संयोगोत्पन्नं यक्षकर्दमादिकं गंधं कस्तूर्यादिकं किं भूतं?–'समोयरंतं'ति सर्वतो विस्तरत्, एवंविधं परगन्धमात्मनो गन्धमिति 'मन्नंतो'त्ति जानन् हर्षयसीति ॥ ३५ ॥ 'सुहवा०' शुभवासैः–सुन्दरचूर्णैः सुरभिगन्धो–सुष्ठुगन्धो यत्र तत् शुभवाससुरभिगन्धं वातैः शीतलादिभिः सुखं शुभं वा यत्र तत् वातसुखं, अगुरुगन्धो धूपनादिप्रकारेण जातोऽस्येति अगुरुगन्धि, तत् एवंविधं अङ्गं–गात्रं वर्त्तते 'केसा ण्हाणसुगंध'त्ति ये च केशाः–कचास्ते स्नानेन–सवनेन सुगन्धा वर्त्तन्ते, अथ कथय त्वं कतरः–कतमस्ते–तव आत्मनो गन्ध इति ? ॥ ३६ ॥ आत्मगन्धं दर्शयति यथा–'अच्छि०' अक्षिमलो–दूषिकादिः कर्णमलः श्लेष्मा–कण्ठमुखश्लेष्मा 'सिंघाणउ'त्ति नासिकाश्लेष्मा चशब्दादन्योऽपि जिह्वामलगुह्यमलकक्षामलादिः, किंभूतः ?–'पूईओ य'त्ति पूतिको–दुर्गन्धस्तथाऽशुचि–सर्वप्रकारैरशुभं मूत्रपुरीषं–प्रस्रावगूथं एषः–अनन्तरोक्तस्ते–तवात्मनो गन्धः ॥ ३७ ॥ अथ वैराग्योत्पादनार्थं स्त्रीचरित्रं दर्शयति, यथा–

जाओ चिय इमाओ इत्थियाओ अणेगेहिं कइवरसहस्सेहिं विविहपासपडिबद्धेहिं कामरागमोहेहिं वन्नियाओ ताओऽवि एरिसाओ, तंजहा–पगइविसमाओ १ पियवयणवल्लरीओ २ कइयवपेमगिरितडीओ ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ स्त्री-स्वरुपम् दर्शयते

अवराहसहस्सघरणीओ ४ पभवो सोगस्स ५ विणासो बलस्स ६ सूणा पुरिसाणं ७ नासो लज्जाए ८ संकरो अविणयस्स ९ निलयो नियडीणं १० खणी वइरस्स ११ सरीरं सोगस्स १२ भेओ मज्जायाणं १३ आसाओ रागस्स १४ निलओ दुच्चरियाणं १५ माईए संमोहो १६ खलणा नाणस्स १७ चलणं सीलस्स १८ विग्घो धम्मस्स १९ अरी साहूणं २० दूसणं आयारपत्ताणं २१ आरामो कम्मरयस्स २२ फलिहो सुखमग्गस्स २३ भवणं दरिद्दस्स २४ अवियाओ इमाओ आसीविसोविव कुवियाओ २५ मत्त गओ विव मयणपरवसाओ २६ वग्घीविव दुट्ठहिययाओ २७ तणच्छन्नकूवोविव अप्पगासहिययाओ २८ मायाकारओ विव उवयारसयबंधणपउत्तीओ २९ आयरियसविधपिव बहुगिज्झसब्भावाओ ३० फुंफुयाविव अंतोदहणसीलाओ ३१ नग्गयमग्गो विव अणवट्ठियचित्ताओ ३२ अंतो दुट्ठवणो विव कुहियहिययाओ ३३ किण्हसप्पोविव अविस्ससणिज्जाओ ३४ संघारोविव छन्नमायाओ ३५ संज्झब्भरागोविव मुहुत्तरागाओ ३६ समुद्दवीचिविव चलस्सभावाओ ३७ मच्छोविव दुप्परियत्तणसीलाओ ३८ वानरोविव चलचित्ताओ ३९ मच्छूविव निव्विसेसाओ ४० कालोविव निरणुकंपाओ ४१ वरुणो विव पासहत्थाओ ४२ सलिलमिव निन्नगामिणीओ ४३ किवणोविव उत्ताणहत्थाओ ४४ नरओविव उत्तासणिज्जाओ ४५ खरोविव दुस्सीलाओ ४६ दुट्ठस्सोविव दुद्दमाओ ४७ बालो इव मुहुत्तहिययाओ ४८ अंधयारमिव दुप्पवेसाओ ४९ विसवल्लीविव अणल्लियणिज्जाओ ५० दुट्ठग्गाहा इव वापी अणवगाहाओ ५१ ठाणभट्ठोविव इस्सरो अप्पसंसणिज्जाओ ५२

॥ ४५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किंपागफलमिव मुहमहुराओ ५३ रित्तमुट्ठीविव बाललोभणिज्जाओ ५४ मंसपेसीगहणमिव सोवद्दवाओ ५५ जलियचुडिलीविव असुचमाणदहणसीलाओ ५६ अरिट्ठमिव दुल्लंघणिज्जाओ ५७ कूडकरिसावणो विव कालविसंवायणसीलाओ ५८ चंडसीलोविव दुक्खरक्खियाओ ५९ अइविसाओ ६० दुगुंछियाओ ६१ दुरुवचाराओ ६२ अगंभीराओ ६३ अविस्ससणिज्जाओ ६४ अणवत्थियाओ ६५ दुक्खरक्खियाओ ६६ दुक्खपालियाओ ६७ अरइकराओ ६८ कक्कसाओ ६९ दढवेराओ ७० रूवसोहग्गमओमत्ताओ ७१ भुयगगइकुडिलहिययाओ ७२ कंतारगइट्ठाणभूयाओ ७३ कुलसयणमित्तभेयणकारिकाओ ७४ परदोसपरगासियाओ ७५ कयग्घाओ ७६ बलसोहियाओ ७७ एगंतहरणकोलाओ ७९ चंचलाओ ७९ जोइभंडोवरागो विव मुहरागविरागाओ ८० अवियाइं ताओ अंतरंगभंगसयं ८१ अरज्जुओ पासो ८२ अदारुया अडवी ८३ अणलस्स निलओ ८४ अइक्खा वेयरणी ८५ अणामिया वाही ८६ अविओगो विप्पलाओ ८७ अरु उवसगो ८८ रइवंतो चित्तविब्भमो ८९ सवंगओ दाहो ९० अणब्भया वज्जासणी ९१ असलिलप्पवाहो ९२ समुद्दरओ ९३

'जाओ चिय इमाओ' इत आरभ्य 'असिव्व छिज्जिउं जे'इति पर्यन्तं गद्यं, या एव इमाः–वक्ष्यमाणाः स्त्रियः अनेकैः कविवरसहस्रैः विविधपाशप्रतिबद्धैः कामरागमोहैः–मन्मथरागमूढैः 'वन्नियाउ'त्ति वर्णिताः शृङ्गारादिवर्णनप्रकारेणेति 'ताओवि'त्ति ता अपि ईदृश्यः–वक्ष्यमाणस्वरूपा ज्ञातव्याः, तद्यथा–'पगइविसमाओ'त्ति प्रकृत्या–स्वभावेन विषमा–वक्रभावयुक्ताः, आवश्यकोक्तपतिमारिकादिवत् १ 'पिय०' प्रियवचनवल्गर्यः–मिष्टवाणीमञ्जर्यः ज्ञातो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्तजिनपालितजिनरक्षितोपसर्गकारिणीरत्नद्वीपदेवीवत् २ 'कइ०' कैतवप्रेमगिरिनद्यः, कुशिष्यकूलवालुकपातिकामागधिकागणिकावत् ३ 'अवरा०' अपराधसहस्रगृहरूपाः, ब्रह्मदत्तमातृचुलनीवत् ४ 'पभवो०' अयं स्त्रीरूपो वस्तुस्वभावः प्रभवः–उत्पत्तिस्थानं, कस्य ?–शोकस्य, सीतागमने रामस्येव ५ 'विणा०' विनाशो बलस्य—पुरुषबलस्य, क्षयहेतुत्वाद्, उक्तञ्च–"दर्शने हरते चित्तं, स्पर्शने हरते बलम् । सङ्गमे हरते वीर्यं, नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥ १ ॥" यद्वा–विनाशः–क्षयः, कस्य ?–बलस्य–सैन्यस्य कूणिकस्त्रीपद्मावतीवत् ६ 'सूणा०' पुरुषाणां शुना–वधस्थानं सूरीकान्ताराज्ञीवत् ७ नाशो लज्जायाः, लज्जारहितत्वात्, लक्ष्मणप्रार्थनकारिकासूर्पणखावत्, यद्वा लज्जानाशः अस्याः सङ्गे पुरुषस्य लज्जानाशो भवति, गोविन्दद्विजपुत्रवत्, यद्वा नाशः–क्षयः 'लज्जाए'त्ति लज्जायाः–संयमस्याषाढभूतियतिचारित्ररत्नलुण्टिकानटपुत्रिकावत् ८ 'संक०' शंकरः–अवकरः उकरडो इति जनोक्तिः, कस्य ?–अविनयस्य, श्वेताङ्गुल्यादिपुरुषाणां भार्यावत् ९ 'निल०' निलयो–गृहं, कासां ?–निकृतीनां–आन्तरदम्भानामित्यर्थः,चण्डप्रद्योतप्रेषिताभयकुमारवञ्चिकावेश्यावत् १० 'खणी०'ति खनिः–आकरः, कस्य ?–वैरस्य, जमदग्नितापसस्त्रीरेणुकावत् ११ शरीरं शोकस्य वीरककान्दविकस्त्रीवनमालावत् १२ भेदो–नाशः मर्यादायाः–कुलरूपायाः श्रीपतिश्रेष्ठिपुत्रीवत् यद्वा मर्यादायाः संयमलक्षणायाः विनाशः, आर्द्रकुमारसंयमस्य आर्द्रकुमारपूर्वभवस्त्रीवत् १३ 'आसाउ०'त्ति आशा–वाञ्छा रागस्य–कामरागस्य तद्धेतुकत्वात्, यद्वा आश्रयः–स्थानं रागस्य, उपलक्षणत्वात् द्वेषस्यापि, आर्षत्वादाकारः, यद्वा आ–ईषदपि अ इति निस्वादः आ अस्वादः, कस्य ?–रागस्येति–धर्मरागस्य १४ 'निल०' निलयो–गेहं, केषां ?–दुश्चरित्राणां भूयङ्गमचौरभ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिनीवीरमतीवत् १५ 'माई०' मातृकायाः समूहः कमलश्रेष्ठिसुतापद्मिनीवत् १६ 'ख०' स्खलना–खण्डना ज्ञानस्य–श्रुतज्ञानादेः, उपलक्षणाच्चारित्रादेः, रण्डाकुरण्डामुण्डिकादिवहुप्रसङ्गे तदभावत्वादर्हन्नकक्षुल्लकवत् १७ 'चल०' चलनं शीलस्य–ब्रह्मव्रतस्य, ब्रह्मचारिणां तस्याः सङ्गे तन्न तिष्ठतीतिभावः १८ 'विग्घो०'त्ति विघ्नः–अन्तरायः धर्मस्य–श्रुतचारित्रादेः १९ 'अरि०' अरिः–निर्दयो रिपुः, केषां ?–साधूनां–मोक्षपथसाधकानां, चारित्रप्राणविनाशहेतुत्वात् महानरककारागृहप्रक्षेपकत्वाच्च कूलवालुकस्य मागधिकावेश्यावत् २० 'दूष०' दूषणं–कलङ्कः, केषां?–'आया०' ब्रह्मव्रताद्याचारोपपन्नानां २१ आरामः–कृत्रिमवनं, कस्य ?–कर्मरजसः–कर्मपरागस्य, यद्वाकर्म च–निबिडमोहनीयादि रश्च–कामः चश्च–चौरः कर्मरचं तस्यारामो–वाटिका २२ 'फलिहो'त्ति अर्गला यद्वा झंपकः मोक्षमार्गस्य–शिवपथस्य २३ भवनं–गृहं दारिद्र्यस्य कृतपुण्यकाश्रितवेश्यावत् २४ 'अवि याओ इमाओ'त्ति अपि च इमा–वक्ष्यमाणाः स्त्रियः एवंविधाः भवन्ति, 'आसीविसो विव कु०' वियशब्दो इवार्थे, आशीविषवत्–दंष्ट्राविषभुजङ्गमवत् कुपिताः–कोपं गताः भवन्ति २५ मत्तगज–उन्मत्तमतंगज इव मदनपरवशा मन्मथविह्वला भवन्ति, अभयाराज्ञावत् २६ 'वग्घी०' व्याघ्रीवत् दुष्टहृदयाः–दुष्टचित्ताः, पालगोपालापरमातामहालक्ष्मीवत् २७ 'तण०' तृणछन्नकूप इव–तृणसमूहाच्छादितान्धुवत् अप्रकाशहृदयाः, शतकश्रावकभार्यारेवतीवत् २८ 'माया' मायाकारक इव–परवञ्चकमृगादिबन्धक इवोपचारशतेन बन्धनशतप्रयोक्रयः, तत्रोपचारशतानि–औपचारिकवचनचेष्टादिशतानि बन्धनानि रज्जुस्नेहादिबन्धनशतानीव तेषां 'पउत्तीउ'त्ति-कर्त्र्यः २८ 'आयरि०' अत्रापि विवशब्द इवार्थे, आचार्यसविधमिव–अनुयोगकृत्समीपमिव बहुभिः–अनेकप्रकारैरने-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपुरुषैर्वा ग्राह्यः–ग्रहीतुं शक्यः यद्वाऽऽर्षत्वात् 'अगिज्झु'त्ति अग्राह्यः सर्वथा ग्रहीतुमशक्यः सद्भावः–आन्तरचित्ताभिप्रायो यासां ताः बहुग्राह्यसद्भावाः बहुअग्राह्यसद्भावा वा २९ 'फुंफुं०'फुंफुकः–करीषाग्निः कोउ इतिजनोक्तिस्तद्वत् अन्तो दहनशीलाः पुरुषाणामन्तो दुःखाग्निज्वालनात्, उक्तञ्च–"पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या, शठं च मित्रं चपलं कलत्रम् । विलासकालेऽपि दरिद्रता च, विनाऽग्निना पञ्च दहन्ति देहम् ॥ १ ॥" ३० 'नग्ग०' विषमपर्वतमार्गवत् अनवस्थितचित्ताः नैकत्रस्थापितान्तःकरणा इत्यर्थः, अनङ्गसेनसुवर्णकारजीवस्त्रीवत्, यद्वा नग्नकमार्गवत्–जिनकल्पिपन्थवत् नैकत्रचित्ताः यद्वा नग्नकमार्गवत्–भूतावेष्टिताचारवत् नैकत्रचित्ताः ३१ 'अंतोदु०' अन्तर्दुष्टव्रणवत् कुथितहृदयाः, तिलभटोन्मत्तरामावत् ३२ 'किण्ह०' कृष्णसर्पवत् 'अवि०' विश्वासं कर्त्तुमयोग्या इत्यर्थः ३३ 'संघा०' संहारवत्–बहुजन्तुक्षयवत् 'छन्नमाया०' प्रच्छन्नमातृकाः ३४ 'संझ०' सन्ध्याभ्रारागवत् मुहूर्त्तरागाः तथाविधदुष्टवेश्यावत् ३५ 'समुद्द०' समुद्रवीचिवत्–सागरतरङ्गवत् चलस्वभावाः–चञ्चलस्वाभिप्रायाः ३६ 'मच्छो०' मत्स्यवत् दुष्परिवर्त्तनशीलाः महता कष्टेन परिवर्त्तनं–पश्चाद् वालयितुं शीलं–स्वभावो यासां तास्तथा ३७ 'वान०' वानरवत् चलचित्ताः–चञ्चलाभिप्रायाः ३८ 'मच्चु०' मृत्युवत्–मरणवत् निर्विशेषाः–विशेषवर्जिताः ३९ 'कालो'त्ति दुर्भिक्षकालः एकान्तदुष्षमाकालो वा यद्वा लोकोक्तौ दुष्टसर्पः तद्वन्निरनुकम्पाः–दयांशवर्जिताः, कीर्त्तिधरराजभार्यासुकोसलजननीवत् ४० 'वरु०' वरुणवत् पाशहस्ताः पुरुषाणामालिङ्गनादिभिः कामपाशबन्धनहेतुहस्तत्वात् ४१ 'सलिल०' सलिलमिव–जलमिव प्रायो नीचगामिन्यः स्वकान्तनृपनदीप्रक्षेपिकाधमपङ्कुकामुकीराज्ञीवत् ४२ 'किव०' कृपणवत् उत्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहस्ताः सर्वेभ्यो मातापितृबन्धुकुटुम्बादिभ्यो विवाहादावादानहेतुत्वात् ४३ 'नरउ०' नरकवत् उत्रासनीयाः,दुष्टकर्मकारित्वात् महाभयङ्कराः लक्षणासाध्वीजीववेश्यादासीघातिकाकुलपुत्रभार्यावत् ४४ 'खरो०' खरवत्–विष्ठाभक्षकगर्दभवत् दुःशीलाः–दुष्टाचाराः, निर्लज्जत्वेन यत्र तत्र ग्रामनगरारण्यमार्गक्षेत्रगृहोपाश्रयचैत्यगृहगर्त्तावाटिकादौ पुरुषाणां वाञ्छाकारित्वात्, तथाविधवेश्यादुष्टदासीरण्डिकामुण्डिकादीनामिव ४५ 'दुट्ठस्सो०' दुष्टाश्ववत्–कुलक्षणघोटकवत् दुर्दमाः सर्वप्रकारैर्निर्लज्जीकृताः, अपि–पुनः पुरुषसंयोगे स्वकामाभिप्रायकर्षणहेतुत्वात् ४६ 'बालो' बालवत्–शिशुवत् मुहूर्त्तहृदयाः, मुहूर्त्तानन्तरं प्रायोऽन्यत्र रागधारकत्वात्, कपिलब्राह्मणासक्तदासीवत् ४७ 'अंधका०' कृष्णभूतेष्टादिभवमन्धकारं अरुणवरसमुद्रोद्भवतमस्कायं वा तद्वद् दुष्प्रवेशा मायामहान्धकारगहनत्वेन देवानामपि दुष्प्रवेशत्वात् ४८ 'विस०' विषवल्लीवत्–हालाहलविषलतावत् 'अण०' अनाश्रयणीयाः–सर्वथा सङ्गादिकर्त्तुमयोग्याः, तत्कालप्राणप्रयाणहेतुत्वात्, पर्वतकराज्ञो नंदपुत्रीविषकन्यावत् ४९ 'दुट्ठ०' दुष्टग्राहा–निर्दयमहामकरादिजलजन्तुसेवितवापीवत् अनवगाह्याः–महता कष्टेनापि अप्रवेशयोग्याः सुदर्शनश्रेष्ठिवत् ५० 'ठाण०' स्थानभ्रष्टः ईश्वरो–ग्रामनगरादिनायकस्तद्वत् यद्वा स्थानं–चारित्रगुरुकुलवासादिकं तस्मात् भ्रष्टः ईश्वरः–चारित्रनायकः साधुरित्यर्थः तद्वत्, यद्वा स्थानं–सिद्धान्तव्याख्यानरूपं तस्मात् भ्रष्टः, उत्सूत्रप्ररूपणेन, ईश्वरो–गणनायक आचार्य इत्यर्थः तद्वत्, यद्वा स्थानभ्रष्टो–दुष्टाचारे रक्त इत्यर्थः, ईश्वरः–सत्यकीविद्याधरस्तद्वत्, अप्रशंसनीयाः–साधुजनैः प्रशंसां कर्त्तुं योग्या नेत्यर्थः ५१ 'किंपाग०' किंपाकफलमिव–विषवृक्षफलमिव मुखे–आदौ मधुराः महाकामरसोत्पादकाः परं पश्चाद्विपाकदारुणाः ब्रह्मदत्तचक्रि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

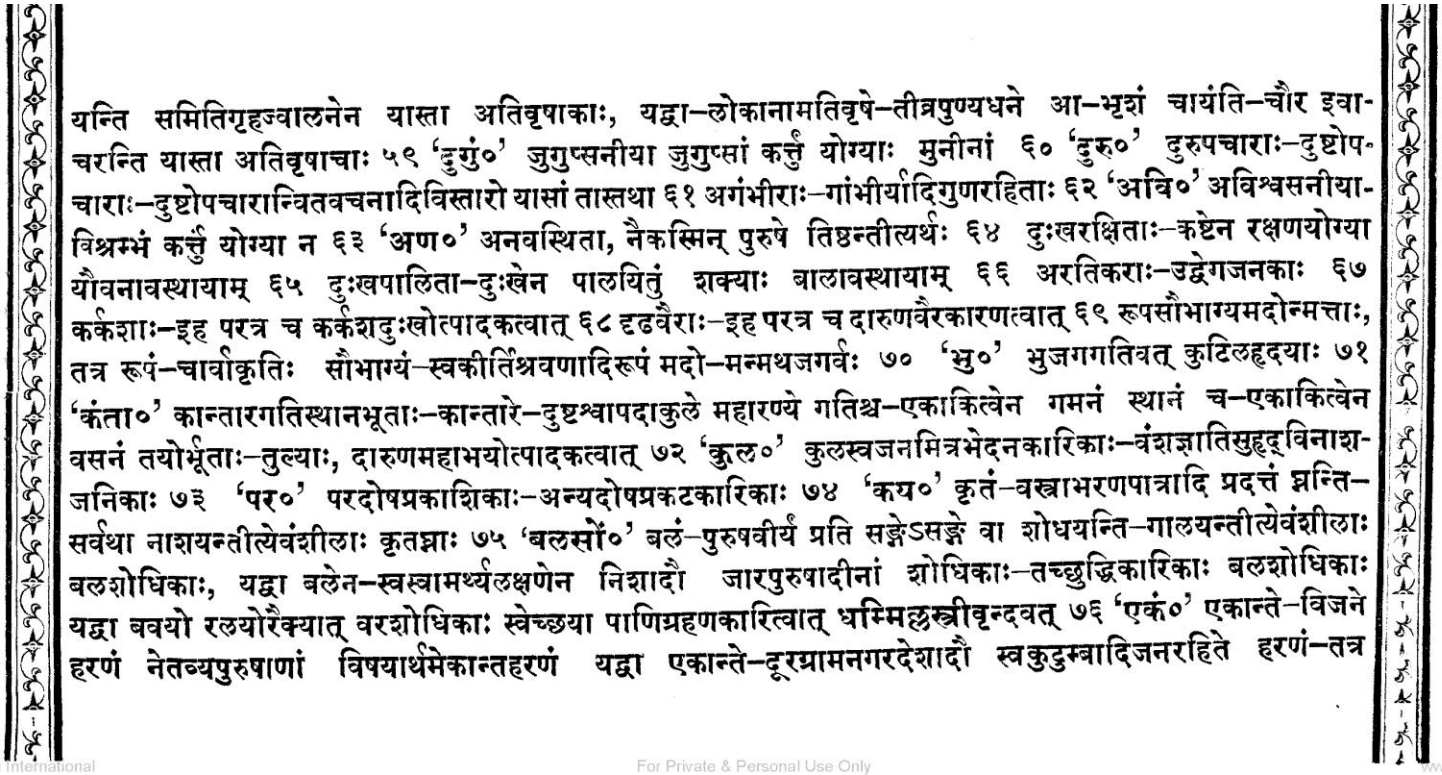
तं. वै. प्र. ॥ ४८ ॥

वत् ५२ 'रित्तमुट्ठी०' रिक्तमुष्टिवत्–पोल्लकमुष्टिवत् बाललोभनीयाः–अव्यक्तजनभोलनयोग्याः वल्कलचीरितापसवत् ५३ 'मंस०' मांसपेसीग्रहणमिव सोपद्रवाः, यथा केनापि सामान्यपक्षिणा कुतश्चित्स्थानात् मांसपेसी प्राप्ता तस्यान्य-दुष्टपक्षिकृताः अनेके शरीरपीडाकारिण उपद्रवा भवन्ति तथा रामाग्रहणेऽनेके इहभवे परभवे च दारुणा उपद्रवा जायन्ते, यद्वा यथा मत्स्यानां मांसपेसीग्रहणं सोपद्रवं तथा नराणामपि स्त्रीग्रहणमित्यर्थः ५४ 'जलि०' अमुञ्चन्ती–अत्यज्यमाना 'जलियचुडिलीविव' प्रदीप्ततृणपूलिकेव 'दहनसीला' ज्वालनस्वभावा ५५ 'अरि०' अरिष्टमिव निबिडपापमिव दुर्लङ्घनीयाः ५६ 'कूड०' कूटकार्षापण इव असत्यनाणकविशेष इव कालविसंवादनशीलाः–कालवि-घटनस्वभावाः अकालचारिण्य इत्यर्थः ५७ 'चंड०' चण्डशील इव–तीव्रकोपीव दुःखरक्षिताः ५८ 'अतिविसाउ'त्ति अतिविषादाः दारुणविषादहेतुत्वात्, यद्वा 'अती'ति अतिक्रान्तो गतोऽकार्यकरणे विषादः–खेदो यासां तास्तथा, यद्वा अतीति—भृशं विषं अतिविषं अतिविषं आ–समन्तात् ददति पुरुषाणां सूरीकान्तावत् यास्ताः अतिविषादाः, यद्वा अतीति भृशं 'वी'ति नानाविधः स्वादो–विषयलाम्पट्यं यासां ता अतिविस्वादाः, अथवा अतिविषयात्–प्रबल-पञ्चेन्द्रियलाम्पट्यात् षष्ठीं नरकभूमिं यावत् सुसढमातृवत् गच्छन्ति यास्ता अतिविषयगाः, प्राकृतत्वाद्यकारलोपे सन्धिः, यद्वा स्वेन्द्रियविषयाप्राप्तौ अतिविषादः–तीव्रखेदो यासां ताः अतिविषादाः, यद्वा अतिकोपात् अतिविषं–तीव्रविषमदन्ति–भक्षयन्तीति अतिविषादा इति, यद्वा अतिवृषं–तीव्रं पुण्यं येषां ते अतिवृषा–मुनयस्तेषामा–समन्तात् वसत्यन्तो बहिश्च 'कायंते' यमायंते यम इवाचरंति चारित्रप्राणकर्षणत्वेन यास्ता अतिवृषाकाः, यद्वा–'कायंति' अग्न-

स्त्रीस्वरूपं सू. १९

॥ ४८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



यन्ति समितिगृहज्वालनेन यास्ता अतिवृषाकाः, यद्वा–लोकानामतिवृषे–तीव्रपुण्यधने आ–भृशं चायंति–चौर इवाचरन्ति यास्ता अतिवृषाचाः ५९ 'दुगुं०' जुगुप्सनीया जुगुप्सां कर्त्तुं योग्याः मुनीनां ६० 'दुरु०' दुरुपचाराः–दुष्टोपचाराः–दुष्टोपचारान्वितवचनादिविस्तारो यासां तास्तथा ६१ अगंभीराः–गांभीर्यादिगुणरहिताः ६२ 'अवि०' अविश्वसनीया-विश्रम्भं कर्त्तुं योग्या न ६३ 'अण०' अनवस्थिता, नैकस्मिन् पुरुषे तिष्ठन्तीत्यर्थः ६४ दुःखरक्षिताः–कष्टेन रक्षणयोग्या यौवनावस्थायाम् ६५ दुःखपालिता–दुःखेन पालयितुं शक्याः बालावस्थायाम् ६६ अरतिकराः–उद्वेगजनकाः ६७ कर्कशाः–इह परत्र च कर्कशदुःखोत्पादकत्वात् ६८ दृढवैराः–इह परत्र च दारुणवैरकारणत्वात् ६९ रूपसौभाग्यमदोन्मत्ताः, तत्र रूपं–चार्वाकृतिः सौभाग्यं–स्वकीर्तिश्रवणादिरूपं मदो–मन्मथजगर्वः ७० 'भु०' भुजगगतिवत् कुटिलहृदयाः ७१ 'कंता०' कान्तारगतिस्थानभूताः–कान्तारे–दुष्टश्वापदाकुले महारण्ये गतिश्च–एकाकित्वेन गमनं स्थानं च–एकाकित्वेन वसनं तयोर्भूताः–तुल्याः, दारुणमहाभयोत्पादकत्वात् ७२ 'कुल०' कुलस्वजनमित्रभेदनकारिकाः–वंशज्ञातिसुहृद्विनाशजनिकाः ७३ 'पर०' परदोषप्रकाशिकाः–अन्यदोषप्रकटकारिकाः ७४ 'कय०' कृतं–वस्त्राभरणपात्रादि प्रदत्तं घ्नन्ति–सर्वथा नाशयन्तीत्येवंशीलाः कृतघ्नाः ७५ 'बलसो०' बलं–पुरुषवीर्यं प्रति सङ्गेऽसङ्गे वा शोधयन्ति–गालयन्तीत्येवंशीलाः बलशोधिकाः, यद्वा बलेन–स्वस्वामर्थ्यलक्षणेन निशादौ जारपुरुषादीनां शोधिकाः–तच्छुद्धिकारिकाः बलशोधिकाः यद्वा बवयो रलयोरैक्यात् वरशोधिकाः स्वेच्छया पाणिग्रहणकारित्वात् धम्मिल्लस्त्रीवृन्दवत् ७६ 'एकं०' एकान्ते–विजने हरणं नेतव्यपुरुषाणां विषयार्थमेकान्तहरणं यद्वा एकान्ते–दूरग्रामनगरदेशादौ स्वकुटुम्बादिजनरहिते हरणं–तत्र

तं.वै.प्र.९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषाणां विषयार्थं लात्वा गमनमित्यर्थः, तत्र कोलाः–वनशूकरतुल्याः, यथा शूकरः कमपि सारं कन्दादिकं भक्ष्यं प्राप्य विजने गत्वा भक्षयति तथेमाः ७७ चञ्चलाः–चपलाः ७८ 'जोइभंडोवरागो विव मुहरागविरागाओ'त्ति ज्योतिर्भाण्डोपरागवत्–अग्निभाजनसमीपरागवत् मुखरागविरागाः यथाऽग्निभाजनसमीपं मुखं रागवत् भवति अन्ते विरागं तथेमाः यद्वा 'जोइभंडो विव रागाओत्ति०' पाठे तु ज्योतिर्भाण्डस्येवोपरागाः, यथा ज्योतिर्भाण्डं–अग्निभाजनं उप–समीपे रागवत् भवति तथेमा वस्त्रादिभिरुप–समीपे रागवत्यो भवन्तीत्यर्थः ७९ 'अवि याइंति०' अपिचेत्यभ्युच्चये 'आइं'ति वाक्यालङ्कारे 'ताओ' ताः स्त्रियः 'अंतरं' अन्तरङ्गभङ्गशतं–अभ्यन्तरविघटनशतमस्याः पक्षपाते पुरुषस्य परस्परं मैत्र्यादिविनाशहेतुत्वात्, यद्वा अन्तः–मध्ये 'रंग०'ति पुरुषाणां ब्रह्मव्रतचारित्रादिरागस्तस्य भङ्गशतं तस्य विघ्नहेतुत्वात् ८० अरज्जुकः पाशः रज्जुकं विना बन्धनमित्यर्थः ८१ 'अदारुय'त्ति अदारुका–काष्ठादिरहिता अटवी–कान्तारं, यथा अदारुकाऽटवी मृगतृष्णाहेतुर्भवति तथेमाः यद्वा काष्ठादिरहिताऽटवी कदापि न ज्वलति तथेमाः पापं कृत्वा न ज्वलन्ति, न पश्चात्तापं कुर्वन्तीत्यर्थः, वृषभकलङ्कदात्रीश्रावकभार्यावत् ८२ 'अणाल०' न आलस्यं–अनुत्साहोऽनालस्यं तस्य निलयः, अकार्यादौ सादरं प्रवृत्तिहेतुत्वात् ८३ 'अइक्ख०' ईक्ष दर्शनाङ्कनयो'रितिवचनात् अनीक्ष्यवैतरणी–अदृश्यवैतरणी परमाधार्मिकविकुर्वितनरकनदी तत्सङ्गे तदवाप्तिहेतुत्वात्, अतीक्ष्णवैतरणी वा ८४ 'अणा०' अनामिको–नामरहितो

१ 'जाइअभंडोवगारोविव मुहरागविरागाओ' इत्यपि पाठः व्याख्या च तत्र—जात्यभाण्डोपकारवत् मुखरागविरागाः यथा जातिभाण्डस्य उपकारावसरे स्तुतिकरणरूपो मुखरागो भवति अन्तश्च विरागो—रागाभावः एवं स्त्रीजनस्यापीतिभावः, युक्तश्चायं पाठः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याधिः–असाध्यरोगः इह परत्र च तत्कारणत्वात् ८५ 'अविओ०' न विद्यते वियोगः–पुत्रमित्रादिविरहो यत्र सः अवियोगः एवंविधो विप्रलापः–परिदेवनं ८६ 'अरु०' अरुक्–रोगरहितः उपसर्गः, यद्वाऽर्षत्वाद् वकारलोपे अरूपो–रूपरहितः उपसर्गः–उपपातः ८७ 'रइ' रतिः–कामप्रिया विद्यते अस्येति रतिमान् कन्दर्पोऽयमिति चित्तभ्रमः चित्तभ्रमकारणत्वात्, यद्वा रतिमान्–सुखदायी मनोभ्रमो–मनोविकारः ८८ 'सव्वंग०' सर्वाङ्गः–सर्वशरीरव्यापी दाहः ८९ 'अणब्भया वज्जासणी'ति अनभ्रका–अभ्रकरहिता वज्राशनिः–विद्युत्, यद्वा इयं–स्त्री 'असणी'त्ति अशनिः–विद्युत्, किंभूता ?–अनभ्रका–आकाशरहिता मेघरहिता वा, पुनः किंभूता ?–वज्रा–वज्रतुल्येत्यर्थः, दारुणविपाकहेतुत्वात्, 'अपसूया वज्जासणी'ति पाठे अप्रसूता–अपत्यजन्मरहिता वज्रेति वर्या–सुन्दराकारा एवंविधा रामा असणीति–अशनिः–विद्युत्, बालानां नरकादौ दारुणदहनहेतुत्वात् 'अप्पसूया वज्जासुणी'त्ति पाठे तु अप्रसूता–नवयौवना परिणीता अपरिणीता वा सालङ्कारा अनलङ्कारा वा मुण्डा अमुण्डा वा एवंविधा रामा 'सुणी'ति हडुक्किलाशुनीवत्–मण्डलीवत् 'वज्जे'ति वर्ज्या सर्वथा साधुभिर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ब्रह्मचारिभिश्च–चतुर्थव्रतरक्षाकाङ्क्षिभिः वर्जनीयेत्यर्थः कायवाङ्मनोभिरिति ९० 'असलि०' अजलप्रवाहः 'असलिलप्पलावो'त्ति पाठान्तरं अजलप्लावः–जलं विना रेल्लिरित्यर्थः ९१ 'समुद्दरउ'त्ति समुद्रवेगः केनापि धर्त्तुमशक्यत्वात् 'समद्धरउ'त्ति पाठे तु सम्यक् अर्धं यस्मात् स समर्धः, एवंविधः 'रउ'त्ति वेगः परमस्नेहवतां बान्धवानां परस्परं स्त्रीकलहे सति गृहाद्यर्धकरणहेतुत्वात्, भद्रातिभद्राख्यौ श्रेष्ठिपुत्राविव ९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१९] + ||१२१.||

दीप अनुक्रम [१४३]

अवि याइं तासिं इत्थियाणं अणेगाणि नामनिरुत्ताणि पुरिसे कामरागपडिबद्धे नाणाविहेहिं उवायसयसहस्सेहिं वहबंधणमाणयंति पुरिसाणं नो अन्नो एरिसो अरी अत्थित्ति नारीओ, तंजहा–नारीसमा न नराणं अरीओ नारीओ, नाणाविहेहिं कम्मेहिं सिप्पियाईहिं पुरिसे मोहंतित्ति महिलाओ, पुरिसे मत्ते करंतित्ति पमयाओ, महंतं कलिं जणयंतित्ति महिलियाओ, पुरिसे हावभावमाईहिं रमंतित्ति रामाओ, पुरिसे अंगाणुराए करंतित्ति अंगणाओ, नाणाविहेसु जुद्धभंडणसंगामाडवीसु सुहाणगिण्हणसीउण्हदुक्खकिलेसमाईसु पुरिसे लालंतित्ति ललणाओ, पुरिसे जोगनिओएहिं वसे ठावंतित्ति जोसियाओ, पुरिसे नाणाविहेहिं भावेहिं वण्णंतित्ति वणियाओ, काई पमत्तभावं काई पणयं सविब्भमं काई ससद्दं सासिव्व ववहरंति काई सत्तुव्व रोरो इव काई पयएसु पणमंति काई उवणएसु उवणमंति काई कोउयनमंति काई सुकडक्खनिरिक्खिएहिं सविलासमहुरेहिं उवहसिएहिं उवग्गहिएहिं उवसद्देहिं गुरुगदरिसणेहिं भूमिलिहणविलिहणेहिं च आरुहणनत्तणेहिं च बालयउवगूहणेहिं च अंगुलिफोडणथणपीलणकडितडजायणाहिं तज्जणाहिं च अवि याइं ताओ पासो व ववसिउं जे पंकुव्व खुप्पिउं जे मच्चुव्व मरिउं जे अगणिव्व डहिउं जे असिव्व छिज्जिउं जे (सूत्रं १९)

'अवि याइं'ति पूर्ववत् 'तासिं इ०' तासामुक्तवक्ष्यमाणानां स्त्रीणामधमाधमानां दासीकुरण्डादीनामनेकानि–विविधप्रकाराणि नामनिरुक्तानि–नामपदभञ्जनानि भवंति, 'पुरिसे' इत्यादि यावत् 'नारीउ'त्ति 'नारीओ'त्ति खण्डयति,

विशेषतो नारीस्वरूपं सू. १९

॥ ५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथम्?–ना आ अरी इति, ना इति नानाविधैरुपायशतसहस्रैः कामरागप्रतिबद्धान् पुरुषान् वधबन्धनं प्रति आ इति–आणयंति–प्रापयन्ति अरीति पुरुषाणां च नान्य ईदृशः अरिः–शत्रुः अस्तीति नार्यः, 'तंजह'त्ति तत्पूर्वोक्तं यथेति-दर्शयति–'नारी०' नारीणां समा न नराणामरयः सन्तीति नार्यः १ नानाविधैः कर्मभिः–कृषिवाणिज्यादिभिः शिल्पकादिभिश्च–कुम्भकार १ लोहकार २ तन्तुवाय ३ चित्रकार ४ नापित ५ विज्ञानैः पुरुषान्मोहयन्तीति–मोहं प्रापयन्तीति धातूनामनेकार्थत्वात् विडम्बयंतीत्यर्थः इति महिलाः, यद्वा नानाविधैः कर्मभिः–मैथुनसेवादिभिः शल्यादिभिश्च मस्तकादौ कबर्यादिविज्ञानैः पुरुषान्–बालनरान् मोहयन्तीति–आत्मसात्कुर्वन्तीति स्वस्वार्थपूरणायेति महिलाः २ 'पुरि०' पुरुषान् मत्तान्–उन्मत्तान् मुक्तगुरुजनकजननीबान्धवभगिनीमित्रादिलज्जादीन् कुर्वन्तीति प्रमदाः ३ महान्तं कलिं–राटिं जनयन्ति–उत्पादयन्तीति महिलिकाः ४ 'पुरि०' पुरुषान् हावभावादिभिः मकारोऽलाक्षणिकः रमयन्ति–क्रीडयन्तीति रामाः, श्रीअरिष्टनेमिना सह गोविंदनितम्बिनीवत्, तत्र हावाः–कामविकाराः भावाः–भावसूचका अभिप्रायाः आदिशब्दात् विलासा नेत्रविकारादयः ५ 'पुरि०' पुरुषान्, किंभूतान् ?–अङ्गे–स्वशरीरे पयोधरनितम्बजघनस्मरकूपिकादिरूपे अनुरागो येषां ते अनुरागास्तानङ्गानुरागान् कुर्वन्तीत्यङ्गनाः ६ 'नाणा०' नानाविधेषु युद्धभण्डनसङ्ग्रामाटवीषु मुधार्णग्रहणशीतोष्णदुःखक्लेशादिषु पुरुषान् लालयन्ति–विविधं कदर्थयन्तीति ललनाः, तत्र युद्धं–मुष्ट्यादिना परस्परताडनं, भण्डनं–वाक्कलहः, सङ्ग्रामः–कुन्तादिना महाजनसमक्षकलहः, अटवी–अरण्यं तत्र भ्रामणादिकारापणेन मुधा–निष्फलं ऋणं–उद्धारस्तत्कारापणेन यद्वा मुधा–निष्फलं 'अण'मिति शब्दकरणगाल्यादिप्रदानं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेन 'गिण्हणन्ति' कामातुरादिप्रकारेण पुरुषग्रहणं तेन शीतेन कोपाटोपात् माघमासादौ वस्त्रोद्दालनगृहबहिःकर्षणादिना उष्णेन–स्वकार्यकारापणेनातपादौ भ्रामयन्ति दुःखेनापत्यादिभरणादिपीडादर्शनेन क्लेशेन–रामाद्विज्यादियोगे सति परस्परकलहोत्पादनेन, आदिशब्दादन्यैरप्यनाचारसेवाद्यनर्थोत्पादनैः पुरुषान् पीडयन्तीति ललनाः ७ 'पुरि०' पुरुषान् योगाः–बाह्याः स्ववाक्कायोद्भवव्यापाराः हास्यकरणाङ्गविक्षेपादयः नियोगाः–आन्तराः स्वमनसि भवाः कामविकारादयस्तैर्योगनियोगैः वशे–स्ववशे स्थापयन्ति–रक्षयन्तीति योषितः, यद्वा पुरुषान् योगनियोगैः–कार्मणवशीकरणादिप्रकारैः स्ववशे स्थापयन्तीति योषितः 'पुरि०' पुरुषान् नानाविधैः भावैः–अभिप्रायविलासादिभिर्वर्णयन्ति कामोद्दीपनगुणान् विस्तारयन्तीति वनिताः ९ 'काई पमत्तभावं०'ति काश्चित् कामिन्यः प्रकर्षेण मत्तभावं–उन्मत्तभावं व्यवहरन्ति—प्रवर्त्तयन्ति पुरुषाणां पातनार्थं 'काई०' काश्चित् प्रकर्षेण जनं नम्रत्वं–प्रणतं कुर्वन्ति, किंभूतं ?–सहविभ्रमेण–सविलासेन वर्त्तते यत्तत्सविभ्रमं पुरुषाणां पाशबन्धनार्थं 'काई०' 'ससद्दं सासिव्व ववहरंति'त्ति काश्चित् सशब्दं यथा स्यात्तथा व्यवहरन्ति–स्वचेष्टां दर्शयन्तीत्यर्थः, क इव ?–'सासिव्व' श्वासोच्छ्वासरोगिवत्, पुरुषाणां स्नेहभावोत्पादनार्थं, 'काई०' काश्चित् शत्रुवत् प्रवर्त्तयन्ति मारणार्थं मर्मस्थानग्रहणेन, यद्वा स्वभर्त्रादीनां भयोत्पादनार्थं रिपुवत् प्रवर्त्तयन्ति, 'रोरो इव का०' काश्चित्कामतृष्णातृषिता रोर इव–रङ्क इव रंकपुरुषाणामपि पादयोः पादान् वा प्रणमन्ति–लगन्तीत्यर्थः, 'काई०' काश्चिदुपनतैः नृत्यप्रकारैरुपनमन्ति सकलाङ्गादिदर्शनार्थं, 'काई कोउ०' काश्चित् कौतुकं–वचननयनादिभावं कृत्वा-

१ काश्चित् सेविता लासं प्रणयं स्नेहं व्यवहरन्ति पुरुषाणां पाशबन्धनार्थं इत्यपि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधाय नमन्ति नराणां हास्याद्युत्पादनार्थं, 'काइ'इति पदमग्रेऽपि योज्यम् 'सुकडनिरिक्खिएहिं'ति काश्चित् सुकटाक्षनिरीक्षितैः–सुष्ठुनेत्रविकारनिरीक्षणैः बालान् पातयन्तीति शेषः, 'सविलासमहुरेहिं'ति सविलासानि च–विलाससहितानि मधुराणि च सविलासमधुराणि एवंविधानि गीतानि वचनानि चेति शेषस्तैः काश्चित् पुरुषान् मोहयन्तीति, 'उपहसिएहि'न्ति उपहसितैः काश्चित् हास्यचेष्टाकरणैः कामिनां हास्यमुत्पादयन्तीति, 'उवग्गहिएहिं'ति उपगृहितानि–पुरुषस्यालिङ्गनलिङ्गग्रहणकरग्रहणादीनि तैः काश्चित् नराणां स्वप्रेमभावं दर्शयन्तीति, 'उवसद्देहिं'ति उपशब्दानि–सुरतावस्थायां वलवलायमानादीनि प्रच्छन्नसमीपशब्दकरणानि वा तैः काश्चित् कामिनां कामरागं प्रकटयन्तीति, 'गुरुगदरिसणेहिं'त्ति गुरुकाणि च प्रौढानि–पयोधरनितम्बादीनि स्थूलोच्चत्वात् सुन्दराणि वा यानि दर्शनानि च—आकृतयस्तानि गुरुकदर्शनानि तैर्दूरस्था एव काश्चित् कामिनः स्ववशे कुर्वन्तीति १ यद्वा 'गु'इति गुह्यप्रकाशनेन पुरुषं पातयन्ति, यद्वा गु–इति गुरुं स्वजनकभर्त्रादिकमपि विप्रतार्याकार्ये प्रवर्त्तयन्ति, 'रु'इति रुदनकरणेन पुरुषं सस्नेहं कुर्वन्ति २ 'ग०'इति स्वपितुर्गृहगमनादिप्रस्तावे पुरुषमत्यन्तं रागवन्तं कुर्वन्तीति ३ 'द'इति दर्शनेन रक्तकृष्णादिदन्तदर्शनेन कामिनो मोहयन्तीति ४ 'रि'इति सम्भाषणे रे मां मुञ्च रे ! मां मा कदर्थयेत्यादिकथनेन कुरामाः पुरुषं सकामं कुर्वन्तीति आर्षत्वात् 'रि'इति यद्वा अरि इति रतिकलहे–अरे मया सह मा कुरूपहासमित्यादिरतिकलहकरणेन पुरुषं क्रीडयन्तीति आर्षत्वात् अरि इति ५ 'स'इति अन्योक्तश्रृङ्गारगीतादिशब्दकरणेन साधूनपि सकामान् कुर्वन्तीति ६ 'ण'इति सकज्जलसविकारसजलाभ्यां नेत्राभ्यां पुरुषं सकामं स्ववशं सगद्गदं स्वकार्यकर्त्तारमपराधमोक्तारं कुर्वन्तीति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुगदरिसणेहिं । 'भूमिलिहणविलिहणेहिं चे'ति भूमिलिखनानि–भूमौ पादादिनाऽक्षरलेखनानि विलिखनानि–विशेषतो रेखास्वस्तिकादिकरणानि तैः स्वगुह्यं पुरुषाणां ज्ञापयन्ति इति भूमि(लेखनवि)लेखनैरिति चकारौ अत्र समुच्चयार्थौ 'आरुहणनट्टणेहिं च'त्ति आरुहणानि–वंशाग्रादिचटनानि नर्तनानि–भूमौ नृत्यकरणानि तैः आरुहणनर्त्तनैः पुरुषादिकमाश्चर्यवन्तं कुर्वन्तीति, 'वालयउवगूहणेहिंचे'ति बालकाः–मूर्खाः कामिन इत्यर्थः तेषामुपगूहनानि–प्रच्छन्नरक्षणादीनि तैर्बालकोपगूहनैः कुरण्डाः स्वकामेच्छां पूरयन्तीति, यद्वा वालकाः–केशकलापास्तेषामुपगूहनानि–रचनास्वच्छवस्त्राच्छादितादीनि तैर्मन्मथग्रस्तानधमाधमान् स्ववशे कृत्वा बलिवर्दवत् वाहयन्तीति, चशब्दात् कपिवत् भ्रामयन्ति, अश्ववारयन्त्रेणिकभार्याधनश्रीराज्ञीवत्, स्वार्थाप्राप्तौ प्राणत्यागमपि कुर्वन्तीति, 'अंगुलि०' अङ्गुलिस्फोटनानि–कडिक्काकरणानि यद्वा अङ्गुलीनां परस्परं 'ताडनानि' स्तनपीडनानि–कराभ्यां पयोधरचम्पनानि हस्ताभ्यां कुचमर्दनानि वा कटितटयातनानि–श्रोणिभागपीडनानि कराभ्यां वक्रगत्या वा तैः कामिनां चित्तान्यान्दोलयन्तीति, 'तज्जणाहिं चे'ति तर्जनानि–अङ्गुलिमस्तकतृणादिचालनानि तैर्मन्मथपीडामुत्पादयन्ति कामिनां, चशब्दादुद्भटनेपथ्यकरणैराभरणशब्दोत्पादनैः सविलासगत्या चतुष्पथादौ प्रवर्त्तनैरित्याद्यनेकप्रकारैर्नरान् बइल्लतुल्यान् कुर्वन्त्यतः संयमार्थिभिः साधुभिरासां सङ्गस्त्याज्यः सर्वथा सर्वदैव इति । तथा 'अवि याइं'ति पूर्ववत् 'ताओ पासो व ववसिउं जे'इति 'जे'इतिप्राकृतत्वात् लिङ्गव्यत्ययः याः कुरण्डादयः स्त्रियः सन्ति जगति 'ताउ'त्ति ताः पुरुषान् पाशवत्–नागपाशवागुरादिबन्धनवत् 'ववसितुं०' धातूनामनेकार्थत्वात् बन्धितुं वर्त्तन्ते, इह परभवे नराणां बन्धनकारणत्वात्, 'पंकुव खुप्पि-

विशेषतो नारीस्व-रूप सू. १९

॥ ५२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उं जे'त्ति 'ताउ'त्ति अग्रेऽप्यनुवर्त्तते, याः कुलटादयः सन्ति विश्वे ताः नरान् पङ्कवत्–अगाधार्द्रबहुलसमुद्रादिकर्दमवत् 'खुप्पिउं०' क्षेप्तुं खूचयितुं वर्त्तन्ते, 'मच्चुव्व मरिउं जे'त्ति याः स्वैरिण्यादयः सन्ति ताः नरान् मृत्युवत्–कृतान्तवत् 'मर्त्तुं' मारणार्थमित्यर्थः मारयितुं प्रवर्त्तन्ते, 'अगणिव्व डहिउं जे'त्ति या जगति गणिकादयः सन्ति ताः कामिनः अग्निवत् दग्धुं–ज्वालयितुं परिभ्रमन्ति, 'असिव्व छिज्जिउं जे'त्ति याः तरुणीपरिव्राजिकादयः सन्ति ताः कौटिल्यकरण्डाः साधूनप्यसिवत्–खड्गवत् छेत्तुं–द्विधाकर्त्तुमुत्सहन्ते। अथ स्त्रीवर्णनं पद्येन वर्णयति यथा—

असिमसिसारच्छीणं कंतारकवाडचारयसमाणं। घोरनिउरंबकंदरचलंतबीभच्छभावाणं ॥ १ ॥ (१२२) दोससयगागरीणं अजससयविसप्पमाणहिययाणं। कइयवपन्नत्तीणं ताणं अन्नायसीलाणं ॥ २ ॥ (१२३) अन्नं रयंति अन्नं रमंति अन्नस्स दिंति उल्लावं। अन्नो कडअंतरिओ अन्नो पडयंतरे ठविओ ॥ ३ ॥ (१२४) गंगाएँ वालुयाए सायरे जलं हिमवओ य परिमाणं। उग्गस्स तवस्स गइं गब्भुप्पत्तिं च विलयाए ॥ ४ ॥ (१२५) सीहे कुडंबुयारस्स पुट्ठलं कुक्कुहाईयं अस्से। जाणंति बुद्धिमंता महिलाहिययं न जाणंति ॥ ५ ॥ (१२६) एरिसगुणजुत्ताणं ताणं कइयवसंठियमणाणं। न हु भे वीससियव्वं महिलाणं जीवलोगंमि ॥ ६ ॥ (१२७) निद्धन्नयं च खलयं पुप्फेहिं विवज्जियं व आरामं। निद्दुद्धियं च धेणुं लोएवि अतिच्छियं पिंडं ॥ ७ ॥ (१२८) जेणंतरेणं निमिसंति लोयणा तक्खणं च विगसंति। तेणंतरेवि हिययं चित्तसहस्साउलं होई ॥ ८ ॥ (१२९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'असिमसि०' नारीणां सर्वथा विश्वासो न विधेयः, किंभूतानाम् ?–असिमषीसदृक्षीणां–करवालकज्जलतुल्यानां, अयमाशयः–यथा खड्गः पण्डितेतरान् नरान् निर्दयतया छेदयति तथाऽनार्या नार्योऽपि नरानिह परत्र दारुणदुःखोत्पादनेन छेदयन्ति, यथा च कज्जलं स्वभावेन कृष्णं अस्य श्वेतपत्रादिसङ्गमे सति तस्य कृष्णत्वं जनयति तथोन्मत्तनारी स्वभावेन कृष्णा दुष्टान्तःकरणत्वात् तत्सङ्गमे उत्तमकुलोत्पन्नानामुत्तमानामपि कृष्णत्वमुत्पादयति यशोधनक्षयराजविटम्बनादिहेतुत्वात्, पुनः किंभूतानां ?–कान्तारकपाटचारकसमानां–अरण्यकपाटकारागृहतुल्यानाम्, अयमाशयः–यथा गहनवनं व्याघ्राद्याकुलं जीवानां भयोत्पादकं भवति तथा नराणां नार्योऽपि भयं जनयन्ति, धनजीवितादिविनाशहेतुत्वेनेति, यथा प्रतोल्यां कपाटे दत्ते केनापि गन्तुं न शक्यते तथा हृदयप्रतोल्यां नारीरूपे कपाटे दत्ते सति केनापि कुत्रापि धर्मवनादौ गन्तुं न शक्यते, यथा च जीवानां कारागृहं दुःखोत्पादकं भवति तथा नराणां नार्योऽपीति, पुन किंभूतानां ?–'घोरनि०' घोरो–रौद्रः प्राणनाशहेतुत्वात् निकुरम्बं–घनमगाधमित्यर्थः यत्कमिति–जलं तस्मादिव दरो–भयं यस्मात् भावात् साङ्केतपुराधिपदेवरतिराजस्येव स निकुरम्बकन्दरः कमित्यव्ययशब्दः उदकवाचकः, चलन्–पुरुषं पुरुषं प्रति भ्रमन् बीभत्सो–भयङ्करः, इह परत्र महाभयोत्पादकत्वात्, एवंविधो भावः–आन्तरमायावक्रस्वभावो यासां ताः घोरनिकुरम्बकन्दरचलद्बीभत्सभावास्तासां घोरभावानाम् १ 'दोससय०' दोषशतगर्गरिकाणां दोषाः–परस्परकलहमत्सरगालिप्रदानमर्मोद्घाटनकलङ्कप्रदानाजल्प्यजल्पनशापप्रदानस्वपरप्राणघातचिन्तनादयस्तेषां शतानि तेषां गर्गरिकाः—भाजनविशेषास्तासां दोषशतगर्गरिकाणां, 'अजस०' यशसः शतानि यशःशतानि न यशःशतान्ययशःशतानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषु विसर्पत्–विस्तारं गच्छत् हृदयं–मानसं यासां ता अयशःशतविसर्पद्हृदयास्तासां तथा 'कइयव'त्ति कैतवानि कपटानि नेपथ्यभाषामार्गगृहपरावर्त्तादीनि 'पन्नत्ती'ति प्रज्ञाप्यन्ते–प्ररूप्यन्ते याभिस्ताः कैतवप्रज्ञप्तयः, यद्वा कैतवानां-दम्भानां प्रकृष्टाः ज्ञप्तयो–ज्ञानानि कमलश्रेष्ठिसुतापद्मिनीवत् यासु ताः कैतवप्रज्ञप्तयः, यद्वा कैतवेषु प्रज्ञाया—बुद्धेराप्तिः–आदानं यासां ताः कैतवप्रज्ञाप्तयस्तासां कैतवप्रज्ञप्तीनां २ कैतवप्रज्ञाप्तीनां वा, तथा 'ताणं'ति तासां नारी-णामज्ञातशीलानां–पण्डितैरप्यज्ञातस्वभावानां, यदुक्तं–'देवाण दाणवाणं मंतं मंतंति मंतनिउणा जे । इत्थीचरियंमि पुणो ताणवि मंता कहं नट्ठा ? ॥१॥ जालंधरेहिं भूमीहरेहिं विविहाहिं अंगरक्खेहिं । निवरक्खियावि लोए रमणी दीसइ पभट्ठमज्जाया ॥२॥ मच्छपयं जलमज्झे आगासे पंखियाण पयपंती । महिलाण हिययमग्गो तिन्निवि लोए न दीसंति ॥३॥" इति, यद्वा न ज्ञातं–नाङ्कीकृतं शीलं–ब्रह्मस्वरूपं याभिस्ताः अज्ञातशीलास्तासां, यद्वा नञः कुत्सार्थत्वात् कुत्सितं ज्ञातं शीलं साध्वीनां याभिः परिव्राजिकाभिः योगिन्यादिभिस्ता अज्ञातशीलास्तासां मुनिवरैः प्रसङ्गैकान्तजल्पनैकत्र-वासविश्वाससहचलनादिव्यापारो वर्जनीय इति २ 'अन्नं रयंति०' द्वित्र्यादिपुरुषसम्भवेऽन्यं–स्वभावसमीपस्थं नरं रजंति–अर्थवीक्षणादिना कामरागवन्तं कुर्वन्तीत्यर्थः, पल्लीपतिलघुभ्रातरं प्रति अगडदत्तस्त्रीमदनमञ्जरीवत्, यद्वा स्वकुशीलत्वे केनापि ज्ञाते सति 'अन्नं रयंति'त्ति अन्यद्–विषभक्षणकाष्ठभक्षणादिकं रचयन्ति–कपटेन निष्पादयन्ति यद्वा जारस्य स्वान्तःकरणज्ञापनाय 'अन्नं रयन्ति'त्ति अन्यदात्मव्यतिरिक्तं–तृणतन्तुदंडादि रदन्ति–उत्पाटनं कुर्वन्ती-त्यर्थः, 'रद विलेखने'इति विलेखनमुत्पाटनमिति, 'अन्नं रमंति'त्ति अन्यं–स्वकान्तव्यतिरिक्तं नरं रमन्ति–मैथुनतत्पराः

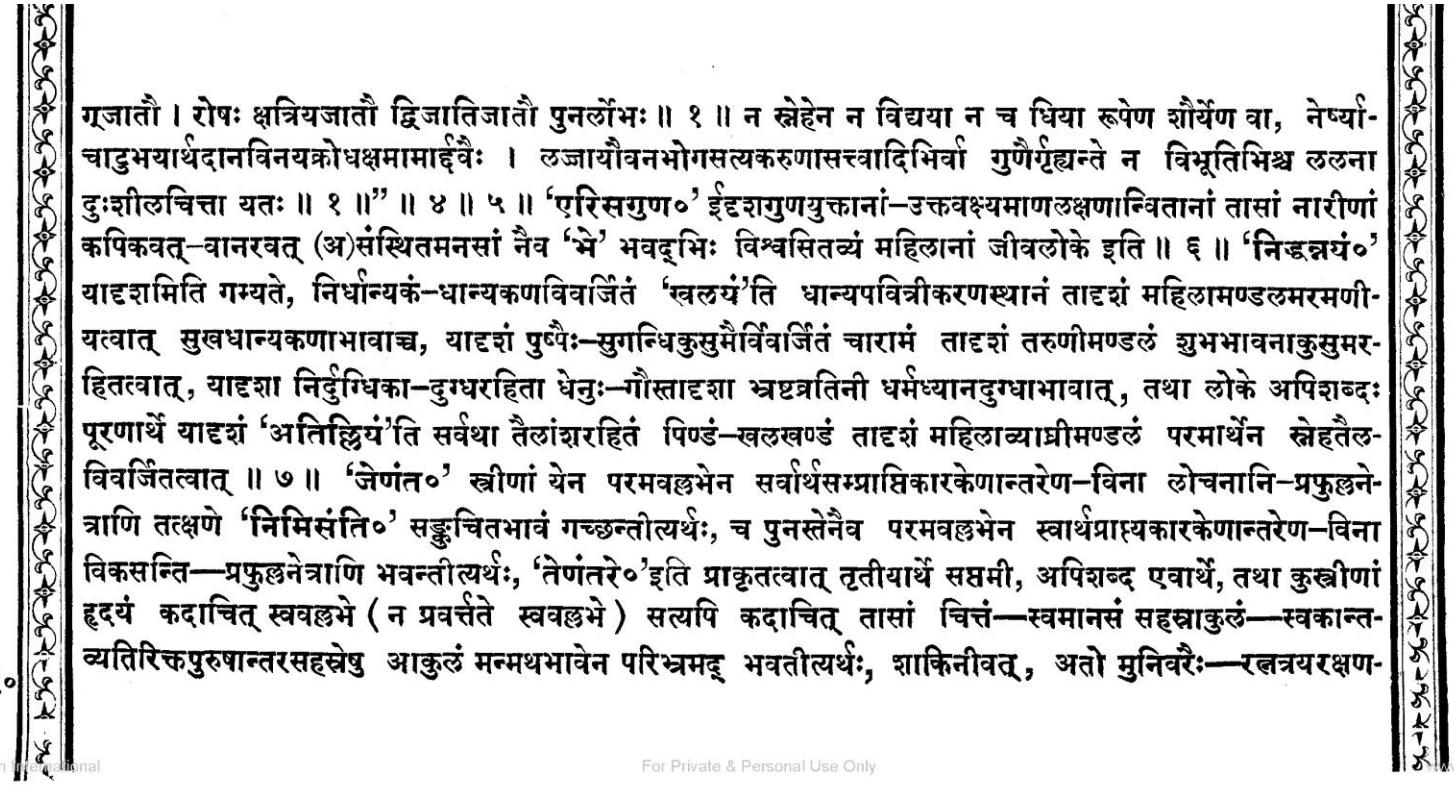
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रीडन्तीत्यर्थः, पातालसुन्दरीवत्, यद्वा 'अन्नं रयंति'त्ति अन्यं–स्वकान्तव्यतिरिक्तं पुत्रभातृकान्तमित्रादिकं प्रति रामा—अधमकामाः रयि गतौ रबु गतौ च रयते रम्वन्ति वा गच्छन्ति तथा द्यूतादिप्रकारेण क्रीडयन्ति वा 'अन्नस्स दिंति उल्लावं'ति अन्यस्य—उक्तव्यतिरिक्तस्य ददति—प्रयच्छन्ति 'उल्लावं'ति वचनं–बोलरूपं यद्वा अनेकनरपरिवृता अप्यन्यस्य नरस्य मार्गादि गच्छतः स्थितस्य वोत्–प्राबल्येनोल्लापं–मन्मथोद्दीपनशब्दं ददतीति, 'उल्लायं'ति पाठे तु कामिनरद्वित्र्यादिसम्भवे सति उन्मत्ताः कुरामाः अन्यस्य ददति उल्लातं–प्रबलपादप्रहारमित्यर्थः, तथा अन्यः कश्चिद् बलिवर्दरूपः कटान्तरितः–कटान्तर्वर्त्तीं प्रच्छन्नरक्षितो भवतीति, तथा अन्यस्तत्कटाक्षबाणसमूहेन ग्लानीकृतः पटकान्तरे–वस्त्रविशेषान्तरे स्थापितो भवेत् ग्लानवदिति ॥ ३ ॥ 'गंगाए० सीहे कु०' अनयोर्व्याख्या—गङ्गायां वालुकां–वेलुकणान् सागरे–समुद्रे जलं–जलपरिमाणमित्यर्थः हिमवतो–महाहिमवन्नगस्य परिमाणम्–ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्परिधिप्रतरघनमानं, उग्रस्य–तीव्रस्य तपसो गतिं–फलप्राप्तिरूपां गर्भोत्पत्तिं च 'विलयाए'त्ति वनिताया–नार्याः सिंहे कुण्डबुकारमिति रूढिगम्यं पुट्टलं–निजजठरोद्भवं 'कुक्कुहाइयं'ति गतिकाले शब्दविशेषं अश्वे—घोटके जानन्ति—अवगच्छन्ति बुद्धिमन्तः–प्रज्ञावन्तः महिलायाः कूटकपटद्रोहपरवञ्चनपरायाः प्रबलमन्मथाग्निधगधगायमानायाः अतर्कितातुच्छोच्छलितकलकण्ठोद्गीयमानमधुरगेयध्वनिमृगीकृतमुनिवरायाः ललाटपट्टतटघटितघनश्रीखण्डतिलकचन्द्रचकोरीकृतचतुरायाः पीनपयोधरपीठलुठन्निर्मलामलकस्थूलमुक्ताफलहारश्वेतदृग्विषभुजङ्गमगतविवेकचैतन्यकृतानेकपण्डितायाः हृदयं–गूढान्तःकरणं न जानन्ति—न सम्यगवगच्छन्तीति, उक्तञ्च—"स्त्री जातौ दाम्भिकता भीरुकता भूयसी वणि-

स्त्रीस्वरूप पद्यानि १२२–९

॥ ५४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



गृजातौ । रोषः क्षत्रियजातौ द्विजातिजातौ पुनर्लोभः ॥ १ ॥ न स्नेहेन न विद्यया न च धिया रूपेण शौर्येण वा, नेर्ष्या-चाटुभयार्थदानविनयक्रोधक्षमामार्दवैः । लज्जायौवनभोगसत्यकरुणासत्त्वादिभिर्वा गुणैर्गृह्यन्ते न विभूतिभिश्च ललना दुःशीलचित्ता यतः ॥ १ ॥" ॥ ४ ॥ ५ ॥ 'एरिसगुण०' ईदृशगुणयुक्तानां–उक्तवक्ष्यमाणलक्षणान्वितानां तासां नारीणां कपिकवत्–वानरवत् (अ)संस्थितमनसां नैव 'भे' भवद्भिः विश्वसितव्यं महिलानां जीवलोके इति ॥ ६ ॥ 'निद्धन्नयं०' यादृशमिति गम्यते, निर्धान्यकं–धान्यकणविवर्जितं 'खलयं'ति धान्यपवित्रीकरणस्थानं तादृशं महिलामण्डलमरमणीयत्वात् सुखधान्यकणाभावाच्च, यादृशं पुष्पैः–सुगन्धिकुसुमैर्विवर्जितं चारामं तादृशं तरुणीमण्डलं शुभभावनाकुसुमरहितत्वात्, यादृशा निर्दुग्धिका–दुग्धरहिता धेनुः–गौस्तादृशा भ्रष्टव्रतिनी धर्मध्यानदुग्धाभावात्, तथा लोके अपिशब्दः पूरणार्थे यादृशं 'अतिल्लियं'ति सर्वथा तैलांशरहितं पिण्डं–खलखण्डं तादृशं महिलाव्याघ्रीमण्डलं परमार्थेन स्नेहतैलविवर्जितत्वात् ॥ ७ ॥ 'जेणंत०' स्त्रीणां येन परमवल्लभेन सर्वार्थसम्प्राप्तिकारकेणान्तरेण–विना लोचनानि–प्रफुल्लनेत्राणि तत्क्षणे 'निमिसंति०' सङ्कुचितभावं गच्छन्तीत्यर्थः, च पुनस्तेनैव परमवल्लभेन स्वार्थप्राप्त्यकारकेणान्तरेण–विना विकसन्ति—प्रफुल्लनेत्राणि भवन्तीत्यर्थः, 'तेणंतरे०'इति प्राकृतत्वात् तृतीयार्थे सप्तमी, अपिशब्द एवार्थे, तथा कुस्त्रीणां हृदयं कदाचित् स्ववल्लभे (न प्रवर्त्तते स्ववल्लभे) सत्यपि कदाचित् तासां चित्तं—स्वमानसं सहस्राकुलं—स्वकान्तव्यतिरिक्तपुरुषान्तरसहस्रेषु आकुलं मन्मथभावेन परिभ्रमद् भवतीत्यर्थः, शाकिनीवत्, अतो मुनिवरैः—रत्नत्रयरक्षण-

तं.वै.प्र.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[२८-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[५] "तंदुलवैचारिकं" मूलं एवं विजयविमल गणि कृता अवचूर्णि:

परैर्मुक्तगृहारम्भभरैरासां कुरण्डामुण्डीदासीयोगिन्यादीनां यथा कथञ्चित् परिचयो न कार्य इति । अस्या अन्यदपि व्याख्यान्तरं सद्गुरुप्रसादात् कार्यमिति ॥ ८ ॥ अथोपदेशान्तरं ददर्दाह—

जड्डाणं वड्डाणं निव्विन्नाणं च निव्विसेसाणं । संसारसूयराणं कहियंपि निरत्थयं होइ ॥ ९ ॥ (१३०) किं पुत्तेहिं पियाहिं वा अत्थेणवि पिंडिएण बहुएणं । जो मरणदेसकाले न होइ आलंबणं किंचि ॥ १० ॥ (१३१) पुत्ता चयंति मित्ता चयंति भज्जावि णं मयं चयइ । तं मरणदेसकाले न चयइ सुविअज्जिओ धम्मो ॥११॥ (१३२)

'जड्डाणं व०' जड्डानां–द्रव्यभावमूर्खाणां वड्डानां–केषांचित् मठपारापतसदृशानां वृद्धानां निर्विज्ञानानां–विशिष्टज्ञानरहितानां निर्विशेषाणां–अपवादोत्सर्गज्येष्ठेतरादिविशेषरहितानां संसारशूकराणां एवंविधानां गृहस्थानां साध्वाभासानामपि कथितमपि–उक्तं वक्ष्यमाणं निरर्थकं भवति, ब्रह्मदत्तोदाईनृपमारकादिवत् ॥९॥ 'किं पुत्ते०' पुत्रैः–अङ्गजैः किं ?, न किञ्चित्, पितृभिर्वा किं ?, अर्थेनापि पिण्डितेन मीलितेन बहुकेन–प्रभूतेन किं ?, नन्दमम्मणादीनामिव योऽङ्गजादिकलापः मरणदेशकाले–मरणप्रस्तावे न भवत्यालम्बनं–आधाररूपं किञ्चिदिति ॥ १० ॥ 'पुत्ता च०' मातापितरौ पुत्रास्त्यजन्ति 'मित्तं' मित्राणि त्यजन्ति, सहजमित्रपर्वमित्रवत्, भार्याऽपीमं–प्रत्यक्षं जीवन्तमित्यर्थः मृतं वा स्वकान्तं त्यजति, यद्वा भार्याऽपि णमिति वाक्यालङ्कारे आर्षत्वादकारविश्लेषेऽमयमिति अमृतं–जीवन्तं त्यजति जीवन्तमेव स्वकान्तं मुक्त्वाऽन्यत्–पुरुषान्तरं भर्तृत्वेन प्रतिपद्यते वनमालावत्, यस्मिन् प्रस्तावे ते पुत्रादयस्त्यजन्ति 'त'मिति तस्मिन् प्रस्तावे मरण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ उपदेश-गाथा: कथयते

देशकाले च न त्यजति 'सु'इति जिनाज्ञापूर्वकदृढभावेन 'वी'ति विशेषेण निरन्तरकरणेनार्जितो धर्मः–श्रुतचारित्ररूप इति ॥ १२ ॥ अथ गाथाचतुष्टयेन धर्ममाहात्म्यं वर्णयन्नाह—

धम्मो त्ताणं धम्मो सरणं धम्मो गई पइट्ठा य। धम्मेण सुचरिएण य गम्मइ अजरामरं ठाणं ॥ १२ ॥ (१३३) पीइकरो वन्नकरो भासकरो जसकरो य अभयकरो। निव्वुइकरो य सययं पारित्तबिइज्जओ धम्मो ॥ १३ ॥ (१३४) अमरवरेसु अणोवमरूवं भोगोवभोगरिद्धी य। विन्नाणनाणमेव य लब्भइ सुकएण धम्मेण ॥ १४ ॥ (१३५) देविंदचक्कवट्टित्तणाइ रज्जाइं इच्छिया भोगा। एयाइं धम्मलाभा फलाइं जं चावि निव्वाणं ॥ १५ ॥ (१३६)

'धम्मो त्ता०' धर्मः–सम्यग्ज्ञानदर्शनचरणात्मकः त्राणं–अनर्थप्रतिहन्ता अर्थसम्पादकश्च तद्धेतुत्वात् धर्मः शरणं–रागाद्यरिभयभीरुकजनपरिरक्षणं, धर्मो गम्यते–दुःस्थितैः सुस्थितार्थमाश्रीयते इति गतिः, धर्मः प्रतिष्ठा–संसारगर्त्तापतत्प्राणिवर्गस्याधारः, धर्मेण सुचरितेन—सुष्ठु सेवितेन चशब्दादनुमोदनेन साहाय्यदानादिना गम्यते–अवश्यं प्राप्यते अजरामरं स्थानं–मोक्षलक्षणमित्यर्थः देवकुमारवत् ॥ ११ ॥ 'पीइकरो०' प्रीतिकरः–परमप्रीत्युत्पादकः वर्णकरः–एकदिग्व्यापिकीर्त्तिकरः यद्वा वपुषि गौरत्वादिवर्णकरः यद्वा शुद्धाक्षरात्मकज्ञानकरः भाकरः–कान्तिकरः यद्वा भाषाकरः–वचनपटुत्वमाधुर्यादिगुणकर इत्यर्थः, यशःकरः–सर्वदिग्व्यापिकीर्त्तिकरः, चशब्दाच्श्लाघाशब्दकरः, तत्र श्लाघा–तत्स्थान एव साधुवादः शब्दः–अर्धदिग्व्यापीति, अभयकरो–निर्भयकरः निर्वृत्तिकरः–सर्वकर्मक्षयकरः 'पारित्तवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ धर्म-माहात्म्य वर्णयते

तं. वै. प्र. ॥ ५६ ॥

इज्ज०'त्ति परत्रद्वितीयः, जीवानां परलोके द्वितीय इत्यर्थः ॥ १३ ॥ 'अमरवर०' अमरवरेषु–महामहर्धिकदेवेषु–अनुपमरूपं भोगोपभोगऋद्धयश्च विज्ञानं ज्ञानमेव च लभ्यते सुकृतेन धर्मेण प्रदेशिराजमेघकुमारधन्यानगारानन्दादीनामिव, तत्र भोगाः–गन्धरसस्पर्शाः, यद्वा सकृद् भोज्या अन्नादयः उपभोगाः–शब्दरूपविषयाः यद्वा सकृद् भोगाः पुनः पुनः उपभोगाः ते च वस्त्रपात्रादयः ऋद्धयो–देवदेव्यादिपरिवारभूताः, विज्ञानं—अनेकप्रकाररूपादिकरणं, ज्ञानं–मतिश्रुतावधिरूपं, यद्वा देवेषु रूपादयः प्राप्यन्ते, इह च 'विन्नाण'त्ति केवलज्ञानं 'नाणं'ति ज्ञानचतुष्कं त्रिकं द्विकं चेति ॥ १५ ॥ 'देविंद०' देवेन्द्रचक्रवर्त्तित्वानि राज्यानि गजाश्वरथपदातिभाण्डागारकोष्ठागारवप्रलक्षणानि, यद्वा स्वाम्य १ मात्य २ जनपद ३ दुर्ग ४ बल ५ शस्त्र ६ मित्राणीति ७, इष्टिता भोगाः, एतानि धर्मलाभात् फलानि भवन्ति, यच्चापि निर्वाणमिति ॥ १५ ॥ अथात्रोक्तं निरुपयति–

धर्ममहिमा १३३-६ उपसंहारः १३७-९

आहारो १ उच्छासो २ संधि ३ सिराओ य ४ रोमकूवाइं ५। पित्तं ६ रुहिरं ७ सुक्कं ८ गणियं गणियप्पहाणेहिं ॥ १६ ॥ (१३७) एयं सोउं सरीरस्स वासाणं गणियप्पागडमहत्थं। मुक्खपउमस्स ईहह सम्मत्तसहस्सपत्तस्स ॥ १७ ॥ (१३८) एयं सगडसरीरं जाइजरामरणवेयणाबहुलं । तह घत्तह काउं जे जह मुचह सव्वदुक्खाणं ॥ १८ ॥ (१३९)

इति 'तन्दुलवेयालियं' समाप्तम् ।

॥ ५६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

‘आहारो०’ अत्र–प्रकीर्णके जीवानां गर्भे आहारस्वरूपं १ गर्भे उच्छ्वासपरिमाणं २ शरीरे सन्धिस्वरूपं ३ शरीरे शिराप्रमाणं ४ वपुषि रोमकूपानि ५ पित्तं ६ रुधिरं ७ शुक्रं ८ चशब्दान्मुहूर्त्तादिकमेतत्पूर्वोक्तं गणितं–सङ्ख्या प्रमाणतो निरूपितं, कैः ?–गणितप्रधानैः–तीर्थकरगणधरादिभिः ॥ १६ ॥ ‘एयं सोउं०’ एतत्पूर्वोक्तं श्रुत्वा–आकर्ण्य शरीरस्य तथा वर्षाणां गणितं प्रकटं श्रुत्वा, किंभूतं ?–महान् अर्थो–ज्ञानवैराग्यादिको यस्मात् स महार्थस्तत् यूयं मोक्षपद्धमीहत–वाञ्छत, किंभूतं ?–‘सम्मत्त’त्ति अनन्तज्ञानपर्यायानन्तदर्शनपर्यायानन्तागुरुलघुपर्यायादिसहस्रपत्राणि यत्र तत्सम्यक्त्वसहस्रपत्रं, अत्र कर्मणि षष्ठी ॥ १७ ॥ ‘एयं स०’ एतच्छरीरशकटं जातिजरामरणवेदनाबहुलं ‘तह घत्तह’त्ति तथा यतध्वं–तथा यत्नं कुरुतेत्यर्थः, यद्वा तथा खेटयत ‘काउं’ कृत्वा–विधाय तपःसंयमादिकमिति शेषः, ‘जे’इति पादपूरणे, यथा मुच्चत, केभ्यः?–सर्वदुःखेभ्यः, बलसारराजर्षिवदिति ॥ १८ ॥

इति श्रीहीरविजयसूरिसेवितचरणेन्दीवरे श्रीविजयदानसूरीश्वरे विजयमाने वैराग्यशिरोमणीनां मुक्तशिथिलाचाराणां घनभावघनभव्यशिलीमुखसेवितक्रमणबिसप्रसूनानां श्रीआनन्दविमलसूरीश्वराणां शिष्याणुशिष्येण विजयविमलाख्येन पण्डितश्रीगुणसौभाग्यगणिप्राप्ततन्दुलवैचारिकज्ञानांशेन श्रीतन्दुलवैचारिकस्येयमवचूरिः समर्थिता। अत्र मया मूर्खशिरोमणिना जिनाज्ञाविरुद्धं यद् व्याख्यातं लिखितं च तन्मयि रङ्के परमदयां कृत्वाऽऽगमज्ञैः संशोध्यमिति भद्रम्।

इति तन्दुलवेयालियं विवृत्तितः समाप्तम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३०-वृ] श्री गच्छाचार (प्रकीर्णक)सूत्रम्

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"गच्छाचार" मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं एवं वानर्षिगणि विवृत्ता वृत्ति:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-40

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] “गच्छाचार” मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

॥ अर्हं ॥

गच्छायारपइण्णयं ।

मङ्गलाभिधेयादि गा. १

श्रीपार्श्वजिनमानम्य, तीर्थाधीशं वरप्रदम् । गच्छाचारे गुरोर्ज्ञातां, वक्ष्ये व्याख्यां यथाऽऽगमम् ॥ १ ॥

शास्त्रस्यादौ प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धमङ्गलान्यभिधातव्यानि, तत्र प्रयोजनमनन्तरपरम्परभेदाद् द्विधा, पुनरेकैकं कर्तृश्रोतृभेदाद् द्विधा, तत्र गच्छाचारप्रकीर्णककर्त्तुरनन्तरप्रयोजनं शिष्यावबोधः, परम्परं त्वपवर्गप्राप्तिः, श्रोतुरप्यनन्तरं तदर्थावगमः, परम्परं तु मुक्तिपदप्राप्तिः १, अभिधेयं तु गच्छाचारः, तस्यैव भणिष्यमाणत्वात् २, सम्बन्धश्चोपायोपेयभावलक्षणः, तत्र वचनरूपापन्नमिदमेव गच्छाचारप्रकीर्णकमुपायः, उपेयं तु तदर्थपरिज्ञानम् ३, मङ्गलं द्विधा द्रव्यभावभेदात्, तत्र द्रव्यमङ्गलं पूर्णकलशादि, तद् अनैकान्तिकत्वात् मुक्त्वा भावमङ्गलं तु शास्त्रकर्त्तुरनन्तरोपकारित्वादभीष्टदैवतस्य वर्द्धमानस्वामिनो नमस्कारद्वारेणाह—

नमिऊण महावीरं तियसिंदनमंसियं महाभागं । गच्छायारं किंची उद्धरिमो सुयसमुद्दाओ ॥ १ ॥

गच्छा. १

‘नत्वा’ प्रणम्य, कं ?–महांश्चासौ वीरश्च महावीरस्तं महावीरं, किंविशिष्टम् ?–त्रिदशाः–सुमनसस्तेषामिन्द्रैः-

	भगवन् महावीर वंदना एवं ‘गच्छाचार’ उद्धरण-कथनं

प्रत सूत्रांक ॥१॥ दीप अनुक्रम [१]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

ईशैर्नमस्यितं–नमस्कृतं 'महाभागं' विश्वविख्यातचतुस्त्रिंशन्महाऽतिशयविराजमानं अचिन्त्यशक्त्यन्वितं वा, गच्छस्य–भावमुनिवृन्दस्याचारो–ज्ञानाचारादिः गणमर्यादारूपो वा तं गच्छाचारं 'किञ्चित्' स्वल्पमुद्धरामो वयं, श्रुतमेव–द्वादशाङ्गीलक्षणमेव समुद्रः–सागरः श्रुतसागरस्तस्मात्–श्रुतसमुद्रात् ॥ १ ॥ अथ प्रथमं तावदुन्मार्गस्थिते गच्छे वसतां फलं दर्शयति—

अत्थेगे गोयमा ! पाणी, जे उम्मग्गपइट्ठिए । गच्छंमि संवसित्ताणं, भमई भवपरंपरं ॥ २ ॥

अत्थे० ॥ अस्तीत्यव्ययं बहुवचनार्थे 'अस्ति' सन्ति विद्यन्त इत्यर्थः 'एके' केचित्–वैराग्यवन्तः 'प्राणिनो' जीवाः हे गौतम ! 'ये' जीवाः अज्ञानत्वेन पण्डितंमन्यत्वेन च मार्गदूषणपूर्वकमुत्सूत्रप्ररूपणा यत्र स उन्मार्गः अथवा यत्र पञ्चाश्रवप्रवृत्तिः स उन्मार्गस्तस्मिन् प्रतिष्ठिते–प्रकर्षेण स्थिते एवंविधे 'गच्छे' साध्वाभासगणे 'संवसित्ताणं' ति उषित्वा 'भ्रमन्ति' परिभ्रमणं कुर्वन्तीत्यर्थः, कां ?–भवस्य–चतुर्गतिलक्षणस्य परम्परा–परिपाटी तां भवपरम्पराम् ॥ २ ॥ अथ किञ्चित्प्रमादवतामपि सन्मार्गस्थिते गच्छे वसतां गाथापञ्चकेन फलं दर्शयति—

जामद्ध-जाम-दिण-पक्खं, मासं संवच्छरंपि वा । सम्मग्गपट्ठिए गच्छे, संवसमाणस्स गोयमा ! ॥ ३ ॥
लीला अलसमाणस्स, निरुच्छाहस्स वीमणं । पिक्खविक्खाइ अण्णेसिं, महाणुभागाण साहूणं ॥ ४ ॥
उज्जमं सव्वथामेसु, घोरवीरतवाइयं । लज्जं संकं अइक्कम्म, तस्स विरियं समुच्छले ॥ ५ ॥
वीरिएणं तु जीवस्स, समुच्छलिएण गोयमा ! । जम्मंतरकए पावे, पाणी मुहुत्तेण निद्दहे ॥ ६ ॥

॥ १ ॥

	अथ उन्मार्ग-सन्मार्ग गच्छवास फ़लम् कथयते

तम्हा निउणं निहालेउं, गच्छं सम्मग्गपट्ठियं । वसिज्ज तत्थ आजम्मं, गोयमा ! संजए मुणी ॥ ७ ॥ सद्गच्छफलं

'जामे'त्यादिगाथापञ्चकम् ॥ 'यामार्द्धं' प्रहरार्द्धं 'यामं' प्रहरं 'दिनं' अहोरात्रं 'पक्षं' मासार्द्धं 'मासं' पक्षद्वयं 'संवत्सरं' प्रतीतं, अपिशब्दाद् वर्षद्वयादिकं यावत् ,वाशब्दो विकल्पार्थः, 'सन्मार्गप्रतिष्ठिते' जिनोक्तवचने यथाशक्ति स्थिते 'गच्छे' सत्साधुगणे 'संवसमानस्य' निवासं कुर्वाणस्य साधोर्वक्ष्यमाणलक्षणस्येतिशेषः हे गौतम !॥ २ ॥ किंभूतस्य ?–लीलया–सुख- ५
त्वेन 'अलसमाणस्स'त्ति आलस्यं कुर्वाणस्य 'निरुत्साहस्य' निरुद्यमस्य 'वीमणं'ति षष्ठ्यर्थे द्वितीया 'विमनस्कस्य' शून्यचि-
त्तस्य 'पिक्खविक्खाइ'त्ति पश्यतः साधूनां 'महानुभागानां' प्रौढप्रभावाणाम् ॥४॥ 'उद्यमं' अनालस्यं 'सर्वस्थामसु' सर्वक्रि-
यासु, किंभूतमुद्यमं ?–'घोरवीरतवाइअं'ति घोरं–दारुणमल्पसत्त्वैर्दुरनुचरत्वात् 'वीर'न्ति वीरे–कर्मरिपुविदारणसमर्थे भवं
वैरं, एवंविधं तप आदिर्यत्र तम् , आदिशब्दाद्दुष्करगुर्वादिवैयावृत्त्यं, 'लज्जां' व्रीडां 'शङ्कां' जिनोक्ते गुरुवचने च संशयरूपां
'अतिक्रम्य' सर्वथा परित्यज्य 'तस्य' सुखशीलादिदोषयुक्तस्यापि साधोः 'वीर्यं' जीवोत्साहरूपं समुच्छलेत् , अहमपि जिनोक्त- १०
क्रियां करोमि येन दुष्टदुःखसागरान्मुञ्चामीत्यर्थः, षष्ठाङ्गोक्तशेलकाचार्यवत् ॥५॥ वीर्योच्छलने फलमाह–वीर्येण तु जीवस्य
समुच्छलितेन हे गौतम ! 'जन्मान्तरकृतानि' बहुभवोपार्जितानि 'पापानि' ज्ञानावरणादिदुष्कर्माणि 'प्राणी' आसन्नमो-
क्षकः 'मुहूर्त्तेन' अन्तर्मुहूर्तमात्रेण 'निर्दहेत्' भस्मसात्कुर्यादित्यर्थः, स्कन्धकाचार्यशिष्यदृढप्रहारिमरुदेव्यादिवदिति
॥ ६ ॥ यस्मादालस्यवतामपि सद्गणे एते गुणास्तस्मात् 'निपुणं' आत्ममोक्षकरं यथा स्यात्तथा 'निभाल्य' ज्ञानचक्षुषाऽ- १४
वलोक्य 'गच्छं' गणं 'सन्मार्गप्रस्थितं' जिनोक्तमार्गव्यवस्थितं 'वसेत्' गुर्वाज्ञापूर्वकं निवासं कुर्यादित्यर्थः, 'तत्र' सद्गणे

जन्म मर्यादीकृत्य 'आजन्म' यावज्जीवमित्यर्थः 'हे गौतम!' 'संयतः' षड्जीवपालनतत्परः 'मुनिः' गुर्वभिप्रायागमवेत्ता ॥७॥

अथ सद्गुणः सदाचार्येणैव भवत्यतः सदाचार्यलक्षणमाह—

मेढी आलंबणं खंभं, दिट्ठी जाणं सुउत्तिमं । सूरी जं होइ गच्छस्स, तम्हा तं तु परिक्खए ॥ ८ ॥

मेढी० ॥ 'मेढी'त्ति मेढिः–पशुबन्धार्थं खलमध्ये स्थूणा, यथा तया बद्धानि बलीवर्दादिवृन्दानि मर्यादया प्रवर्त्तन्ते, 'आलम्बनं' यथा गर्त्तादौ पतज्जन्तोर्हस्ताद्याधार आलम्बनं तथा भवगर्त्तायां पततां भव्यानामाचार्य आलम्बनं, कामातुरस्वशिष्यं प्रति नन्दिषेणवत्, 'खंभं' यथा स्तम्भो गृहाधारो भवति तथाऽऽचार्यः साधुसंयमगृहाधारः मेघसंयमगृहं प्रति श्रीवीरवत्,'दिट्ठी'ति नेत्रं यथा नेत्रेण हेयोपादेयं विलोक्यते तथाऽऽचार्यरूपनेत्रेण हेयोपादेयं ज्ञायते प्रदेशिवत्, 'यानं' यानपात्रं यथा अच्छिद्रं यानपात्रं सत्संयोगे तीरं प्रापयति तथाऽऽचार्योऽपि भवतीरं प्रापयति, जम्बूस्वामिनं प्रति श्रीसुधर्मस्वामिवत्,'सुउत्तिम'मिति सुष्ठु–अत्यर्थं दृढा गुप्तिः–नवब्रह्मचर्यरूपा अस्यास्तीति सुगुप्तिमान्,यद्वा सुष्ठु–अतिशायिनी कुमतकर्कशप्रस्तरटङ्कणायमाना सद्भूपद्मचन्द्रायमाना युक्तिरस्यास्तीति सुयुक्तिमान्, अथवा 'सुउत्तम'मिति पाठे तु सुष्ठु–अतिशयेनाचार्यगुणैरुत्तमः 'यत्' यस्मात् एवंविधः 'सूरिः' आचार्यो भवति 'गच्छस्य' गणस्य योग्यस्तस्मात् 'तं' आचार्यं 'परिक्खए'त्ति तस्य परीक्षां कुर्यादित्यर्थः॥८॥ सन्मार्गस्थिताचार्यस्वरूपं किञ्चिदर्शितं, अथैतद्विपरीतस्वरूपं प्रश्नयन्नाह—

भयवं! केहिं लिंगेहिं, सूरिं उम्मग्गपट्ठियं । वियाणिज्जा छउमत्थे, मुणी ! तं मे निसामय ॥ ९ ॥

भय० ॥ 'हे भगवन्!' हे पूज्य! कैः 'लिङ्गैः' लक्षणैः सूरिं 'उन्मार्गप्रस्थितं' विरुद्धमार्गव्यवस्थितं विजानीयात्

अथ आचार्यस्य लक्षणं प्रदर्शयते

'छद्मस्थः' केवलज्ञानकेवलदर्शनशून्यः ?, इति परप्रश्ने सति गुरुराह–'हे मुने' हे भिक्षो ! 'तत्' उन्मार्गप्रस्थिताचार्यचिह्नं 'मे' मम कथयतस्त्वं 'निसामय'त्ति शृणु–आकर्णय ॥ ९ ॥

सच्छंदयारिं दुस्सीलं, आरंभेसु पवत्तयं । पीढयाइपडिबद्धं, आउक्कायविहिंसगं ॥ १० ॥

मूलुत्तरगुणब्भट्ठं, सामायारीविराहयं । अदिण्णालोयणं निचं, निचं विगहपरायणं ॥ ११ ॥

उन्मार्गगामिसूरिचिह्नं गा. १०–११

सच्छन्द० मूलु० ॥ स्वच्छन्देन–स्वाभिप्रायेण न तु जिनवचनेन चरति स्वपूजार्थं मुग्धकुमतिपातनार्थं च यः स स्वच्छन्दचारी तं स्वच्छन्दचारिणं दुष्टं–जिनगुर्वाज्ञाभञ्जकत्वेन शीलम्–आचारः पञ्चाचारलक्षणो यस्य स दुःशीलस्तं दुःशीलं, अथवा दुरिति कुत्सितः–परवञ्चनाऽनाचारसेवनादिलक्षणः शीलं–स्वभावो यस्य स दुःशीलस्तं दुःशीलं, 'आरंभेसु'त्ति बहुवचनात्संरम्भसमारम्भयोर्ग्रहणं, तत्रारम्भः–पृथिव्यादिजीवोपघातः १ संरम्भो–वधसङ्कल्पः २ समारम्भः–परितापः ३ तेषु प्रवर्त्तकं, वर्षाकालं विनेति शेषः, पीठम्–आसनमुपवेशनार्थं, आदिशब्दात्पट्टिकादयस्तेषु प्रतिबद्धं कारणं विना सेवनतत्परमित्यर्थः, आपो–जलमेव कायः–शरीरं यस्य सोऽप्कायः–अप्रासुकजलं तस्य विविधं–अनेकधा पदक्षालनपात्रक्षालनादिप्रकारेण हिंसकं–घातकं अप्कायविहिंसकम् ॥ १० ॥ मूलु० ॥ चारित्रकल्पवृक्षस्य मूलकल्पा गुणाः–प्राणातिपातविरमणादयो मूलगुणाः, मूलगुणापेक्षया उत्तरभूता गुणाः–पिण्डविशुद्ध्यादयो वृक्षस्य शाखा इवोत्तरगुणास्तेभ्यो भ्रष्टं–सर्वथा तत्राप्रवर्त्तकं, 'सामायारीविराहयं'ति त्रिधा सामाचारी–ओघनिर्युक्तिजल्पितं सर्वमोघसामाचारी, सा च नवमपूर्वात्तृतीयाद्वस्तुन आचाराभिधानात् तत्रापि विंशतितमात् प्राभृतात् तत्राप्योघप्राभृतान्निर्व्यू- १४

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ ३ ॥

ढेति १, पदविभागसामाचारी जीतकल्पकनिशीथादिच्छेदग्रन्थोक्ता, साऽपि नवमपूर्वादेव २, चक्रवालसामाचारी तु अभ्यर्थनैव तावत्साधूनां न कल्पते, कारणे तु यद्यभ्यर्थयेत् परं तत्रेच्छाकारः कार्यः, यद्वा तस्य कुर्वतः किञ्चित् कश्चिन्निर्जरार्थी ब्रूते, यथा–तव कार्यमहं विधास्ये, तत्रापीच्छाकारो न बलात्कारः, दुर्विनीते बलात्कारोऽपि १, कल्पाकल्पे ज्ञाननिष्ठां प्राप्तस्य संयमतपोभ्यामाढ्यस्य गुरोर्निर्विकल्पं वाचनादौ यद्यूयं वदत तत्तथेति वाच्यं २, संयमयोगेऽन्यथाऽऽचरिते सति मिथ्याकारः ३, ज्ञानाद्यर्थमवश्यं गमने आवश्यिकी कार्या ४, वसतिचैत्यादौ प्रविशन्नैषेधिकीं कुर्यात् ५, कार्योत्पत्तौ गुरोरापृच्छनं ६, गुरुणा पूर्वनिषिद्धेनावश्यंकार्यत्वात्प्रतिपृच्छा, पूर्वनिरूपितेन वा करणकाले पुनः प्रतिपृच्छा ७, पूर्वगृहीतेनाशनादिना छन्दनम्–आह्वानं साधूनां कार्यम् ८, अटनार्थं गच्छता निमन्त्रणं ९, ज्ञानाद्यर्थमन्यगुरोराश्रयणमुपसंपत् १०–३ । अन्या वा निशीथोक्ता दशधा सामाचारी, यथा प्रातःप्रभृति क्रमशः प्रतिलेखना उपधेः १, ततः प्रमार्जना वसतेः २, भिक्षा कार्या ३, आगतैरीर्या प्रतिक्रम्या ४, आलोचनं कार्यं गृहानीतानां ५, असुरसुरंतिभोक्तव्यं ६, कल्पत्रयेण पात्रकाणां धावनं कार्यं ७, विचारः सञ्ज्ञोत्सर्गार्थं बहिर्यानं ८, स्थण्डिलानि 'बारस २ तिन्नि य'त्ति २७ कार्याणि ९ प्रतिक्रमणं कार्यं १० इत्यादि, विशेषतस्तु पञ्चवस्तुकद्वितीयद्वारे ज्ञेया, तस्या विराधको–भञ्जकस्तं सामाचारीविराधकं, नित्यं यावज्जीवमित्यर्थः, दत्ता–अर्पिता आलोचना–स्वपापप्रकाशनरूपा येन स दत्तालोचनो न दत्तालोचनः अदत्तालोचनस्तमदत्तालोचनं स्वपापाप्रकाशकमित्यर्थः, महानिशीथोक्तरूपीसाध्वीवत्, आलोचनाग्रहणं किञ्चिद् यथा–प्रथमं स्वकीयाचार्यपार्श्वे आलोचयितव्यं १ तदभावे स्वोपाध्याये २ तदभावे स्वप्रवर्त्तके ३ तदभावे स्वस्थविरे ४ तदभावे गणाव-

उन्मार्गगामिसूरिचिह्नं गा. १०-११

२०

२५

॥ ३ ॥

२८

च्छेदिनि ५, अथ स्वगच्छे पञ्चानामप्यभावे परगच्छे सांभोगिके आचार्यादिक्रमेणालोचयितव्यं, सांभोगिके गच्छे पञ्चानामप्यभावे संविग्नेऽसांभोगिके पञ्चाचार्यादिक्रमेणालोचयितव्यं, संविग्नासाम्भोगिकानामप्यभाव गीतार्थपार्श्वस्थसमीपे तदभावे सारूपिके संयतवेषगृहस्थे तदभावे गीतार्थपश्चात्कृते त्यक्तचारित्रवेषगृहस्थे तदभावे सम्यक्त्वभावितदेवतायां, यतो देवता महाविदेहादौ जिनानापृच्छ्य कथयत्यतः, तदभावे जिनप्रतिमापुरतः, तदभावे पूर्वाद्यभिमुखोऽर्हतः सिद्धानभि समीक्ष्य जानन् प्रायश्चित्तविधिं स्वयमेव प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते, एवं प्रतिपद्यमानः शुद्ध एवेति, तथा नित्यं–सदा सर्वत्र विरुद्धा कथा विकथा, तत्र स्त्रीकथा १ भक्तकथा २ देशकथा ३ राजकथा ४ मृदुकारुणिकाकथा ५ दर्शनभेदिनीकथा ६ चारित्रभेदिनीकथा ७ रूपा सप्तधा, आद्याश्चतस्रः कण्ठ्याः, श्रोतृहृदयमार्दवजननान्मृद्वी सा चासौ पुत्रादिप्रलापप्रधानत्वात्कारुण्यवती मृदुकारुणिका, यथा–"हा पुत्त ! २ हा वच्छ ! २ मुक्काऽसि कहमणाहाऽहं । एवं कलुणपलावा जलंतजलणेऽज्ज सा पडिया ॥ १ ॥" दर्शनभेदिनी ज्ञानाद्यतिशयतः कुतीर्थिकनिह्नवप्रशंसारूपा ६ यस्यां कथायां कथ्यमानायां कृतचारित्रमनसः प्रतिपन्नव्रतस्य वा चारित्रं प्रति भेदो भवति ७ अथवा विविधरूपा परपरिवादादिलक्षणा कथा विकथा तस्यां 'परायणं'ति भृशं तत्परमित्यर्थः, भुवनभानुकेवलिपूर्वभवरोहिणीश्राविकावत् । यद्वा कथा चतुर्धा यथा–आक्षिप्यते–मोहात्तत्त्वं प्रत्याकृष्यते श्रोता यया साऽऽक्षेपणी १, विक्षिप्यते–कुमार्गविमुखो विधीयते श्रोता यया सा विक्षेपणी २ संवेद्यते–मोक्षसुखाभिलाषी विधीयते यया सा संवेदनी ३, निर्वेद्यते–संसारनिर्विण्णो विधीयते यया सा निर्वेदिनी ४, तद्विपरीता विकथा तस्यां तत्परस्त्वं, हे सौम्य ! एवंविधं सूरिमुन्मार्गगा-

उन्मार्गगामिसूरिचिह्नं गा. १०-११

५

१०

१४

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१०--११॥

दीप अनुक्रम [१०-११]

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ ४ ॥

मिनं जानीहीति ॥ ११ ॥ पूर्वं दोषवतामदत्तालोचनानां दोषवत्त्वमुक्तम्, अथ किं गुणवतामालोचनास्वरूपवेत्तॄणां सा गृहीता विलोक्यते न वा? इत्याह—

छत्तीसगुणसमण्णागएण तेणवि अवस्स कायव्वा । परसक्खिया विसोही सुट्ठुवि ववहारकुसलेण ॥ १२ ॥

छत्ती० ॥ देशकुलादयः षट्त्रिंशद्गुणा यथा—आर्यदेशोत्पन्नः सुखावबोधवाक्यः स्यात् १, पैतृकं कुलं, सुकुलोद्भवो यथोक्षिप्तभारोद्वहने न श्राम्यति २, मातृकी जातिस्तत्संपन्नो विनयान्वितः स्यात् ३, रूपवान् आदेयवाक्यः स्याद् आकृतौ गुणा वसन्तीति ४, संहननयुतो व्याख्यानादिषु न श्राम्यति ५, धृतिः—चित्तावष्टम्भस्तद्युतो गहनेष्वप्यर्थेषु न भ्रमं याति ६, अनाशंसी न श्रोतृभ्यो वस्त्राद्याकाङ्क्षते ७, अविकत्थनो न बहुभाषी स्यात् ८, अमायी—शाठ्यत्यक्तः ९, स्थिरपरिपाटिः, तस्य हि सूत्रमर्थश्च न गलति १०, गृहीतवाक्योऽप्रतिघातवचनः स्यात् ११, जितपर्षत् परप्रवादिक्षोभ्यो न स्यात् १२, जितनिद्रोऽल्पनिद्रः १३, मध्यस्थः सर्वशिष्येषु समचित्तः १४, देश १५ काल १६ भाव १७ ज्ञः सुखेन विहरति १७ आसन्नलब्धप्रतिभः परतीर्थिकादीनामुत्तरदाने समर्थः १८, नानाविधदेशभाषाज्ञो नानादेशजविनेयान् सुखेन शास्त्राणि ग्राहयति १९, पञ्चविधाचारयुतः श्रद्धेयवचनः स्यात् २४, सूत्रार्थोभयज्ञः सम्यगुत्सर्गापवादप्ररूपकः स्यात् २५, आहरणं-दृष्टान्तः २६, हेतुर्द्विधा—कारको ज्ञापकश्च, तत्र कारको यथा घटस्य कर्त्ता कुम्भकारः, ज्ञापको यथा तमसि घटादीनामभिव्यञ्जकः प्रदीपः २७, उपनयः—उपसंहारो दृष्टान्तदृष्टस्यार्थस्य प्रकृते योजनमिति भावः, क्वचित् कारणं—निमित्तं २८, नया—नैगमादयस्तेषु निपुणः २९, स हि श्रोतारमपेक्ष्य तत्प्रतिपत्त्यनुरोधतः क्वचिद् दृष्टान्तोपन्यासं २६ क्वचिद्धेतूपन्यासं

परसाक्षिक्यालोचना गा.१२

२५ ॥ ४ ॥ २८

आलोचना स्वरुपवेत्तानाम् ३६ गुणानाम् कथनं

प्रत सूत्रांक ॥१२॥

दीप अनुक्रम [१२]

२७ क्वचिदधिकृतमर्थमुपसंहरति २८, नयप्रस्तावे नयानवतारयति २९, ग्राहणाकुशलः प्रतिपादनशक्तियुक्तः ३०, स्वसमयं परसमयं वेत्ति, परेणाक्षिप्त उभयं निर्वाहयति ३१ । ३२ । गम्भीरः–अतुच्छस्वभावः ३३, दीप्तिमान् परवादिनामक्षोभ्यः ३४, शिवो–मारिरोगाद्युपद्रवविघातकृत् ३५, सौम्यः शान्तदृष्टितया प्रीत्युत्पादकः ३६, तैः समन्वागतेन–संयुक्तेन तेनापि, अन्य आस्ताम्, अवश्यं–निश्चयेन कर्त्तव्या, का ?–परेषामाचार्याणां साक्षिकी परसाक्षिकी विशेषेण–निर्मायत्वेन शुद्धिः–दोषमलकर्षणं विशुद्धिरालोचनेत्यर्थः, पुनः किंविशिष्टेन तेन ?–सुष्ठ्वपि ज्ञानक्रियाव्यवहारकुशलेन–सुविहितेनेति, यद्वा सुष्ठ्वपि व्यवहारेषु पञ्चप्रकारेषु आगम १ श्रुता २ ज्ञा ३ धारणा ४ जीतलक्षणेषु ५ कुशलो–निपुणस्तेन, तत्राऽऽगम्यन्ते–परिच्छिद्यन्ते पदार्था अनेनेत्यागमः स च केवलिमनःपर्यायज्ञान्यवधिज्ञानिचतुर्दशपूर्विदशपूर्विनवपूर्विणां भवति, तत्र यदि केवली प्राप्यते तदा तस्यैवालोचना दीयते तदभावे परेषां १, निशीथकल्पव्यवहारदशाश्रुतस्कन्धप्रमुखं सर्वमपि श्रुतव्यवहारः २, देशान्तरस्थिते गुरौ शिष्यो गूढपदानि लिखित्वा प्रेषयति तदाऽसौ आज्ञारूपव्यवहारः, यद्वा देशान्तरस्थितयोर्द्वयोर्गीतार्थयोर्गूढपदैरालोचना–जातातीचारनिवेदनमाज्ञाव्यवहारः, कोऽर्थः ?–यदा द्वावप्याचार्यावासेवितसूत्रार्थतयाऽतिगीतार्थौ क्षीणजङ्घाबलौ विहारक्रमानुरोधतो दूरदेशान्तरव्यवस्थितावतं एव परस्परस्य समीपे गन्तुमसमर्थावभूतां तदाऽन्यतरः प्रायश्चित्ते समापतिते सति तथाविधयोग्यगीतार्थशिष्याभावे सति धारणाकुशलमगीतार्थमपि शिष्यं समयभाषया गूढार्थान्यतीचारासेवनपदानि कथयित्वा प्रेषयति, तेन च गत्वा गूढपदेषु कथितेषु स आचार्यो द्रव्यक्षेत्रकालभावसंहननधृतिबलादिकं परिभाव्य स्वयं तत्रागमनं करोति, शिष्यं वा तथाविधं योग्यं गीतार्थं प्रज्ञाप्य प्रेषयति,

परसाक्षिक्यालोचना गा. १२

१४

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ ५ ॥

तदभावे तस्यैव प्रेषितस्य गूढार्थामतिचारशुद्धिं कथयतीति ३, इह केनचिद्गीतार्थसंविग्नेन गुरुणा कस्यापि शिष्यस्य क्वचिदपराधे या शुद्धिः प्रदत्ता तां तथैवावधार्य सोऽपि शिष्यस्तथैवापराधे प्रयुङ्क्ते तदाऽसौ धारणाव्यवहारः, उद्धृतपदधरणरूपा वा, कश्चित्साधुर्गच्छोपकारी अप्यशेषच्छेदग्रन्थयोग्यो न भवति गुरुस्तस्योद्धृतपदानि ददाति, तेषां पदानां धरणं धारणाव्यवहारः ४, द्रव्यादि विचिन्त्य संहननादीनां हानिं ज्ञात्वा चोचितेन केनचित्तपःप्रकारेण यां गीतार्थाः शुद्धिं दिशन्ति तत्समयभाषया जीतमुच्यते, यद्वा यत्प्रायश्चित्तं यस्याचार्यस्य गच्छे सूत्रातिरिक्तं कारणतः प्रवर्त्तितं अन्यैश्च बहुभिरनुवर्त्तितं तत्तत्र रूढं जीतमुच्यते, तदेवमेतेषां पञ्चानां व्यवहाराणामन्यतरेणापि व्यवहारेण युक्त एव प्रायश्चित्तप्रदाने गीतार्थो गुरुरधिक्रियते न चागीतार्थोऽनेकदोषसम्भवादिति, अपिशब्दादनेकमध्यानां विधिना दत्तालोचनस्तेनापीति ॥ १२ ॥ अथालोचनायां दृष्टान्तमाह—

जह सुकुसलोऽवि विज्जो अण्णस्स कहेइ अत्तणो वाहिं । विज्जुवएसं सुच्चा पच्छा सो कम्ममायरइ ॥ १३ ॥

जह सु० ॥ यथा सुष्ठु कुशलोऽपि–भिषक्शास्त्रे निपुणोऽपि, अपिशब्दाद्वयःप्राप्तोऽपि, 'वैद्यः' चिकित्साकर्त्ता 'आत्मनः' स्वस्य 'व्याधिं' रोगोत्पत्तिं 'अन्यस्य' परवैद्यस्य 'कथयति' यथास्थितं निरूपयति, 'वैद्योपदेशं' वैद्यनिरूपितं 'श्रुत्वा' आकर्ण्य 'पश्चात्' परवैद्यकथनानन्तरं सः–वैद्यस्तद्वैद्योक्तं 'कर्म्म' प्रतीकाररूपं 'आचरति' करोतीत्यर्थः, एवमालोचनास्वरूपज्ञाता आलोचकोऽपि सद्गुरूक्तं तपो यथाऽर्पितं करोतीति ॥ १३ ॥ अथाचार्यकृत्यं किञ्चिदाह—

देसं खित्तं तु जाणित्ता, वत्थं पत्तं उवस्सयं । संगहे साहुवग्गं च, सुत्तत्थं च निहालई १४ ॥

आलोचनादृष्टान्तः आचार्यकृत्यं गा. १३-१४ २० २५ ॥ ५ ॥ २८

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१४॥

दीप अनुक्रम [१४]

देसं० ॥ 'देशं' मालवकादिकं 'क्षेत्रं' रूक्षारूक्षभावितादिरूपं तुशब्दाद् गुरुग्लानबालवृद्धप्राघूर्णादियोग्यं द्रव्यं दुर्भिक्षादिकालं च ज्ञात्वा 'वस्त्रं' आचाराङ्गाद्युक्तविधिना चीवरं 'पात्रं' पतद्ग्रहादिकं 'उपाश्रयं' स्त्रीपशुपण्डकवर्जितमुनियोग्यालयं संगृह्णीत, तथा चोक्तं स्थानाङ्गसप्तमस्थानके–आचार्योऽनुत्पन्नान्युपकरणानि सम्यगुत्पादयिता भवति, पूर्वोत्पन्नान्युपकरणानि सम्यक् संरक्षयिता उपायेन चौरादिभ्यः संगोपयिता अल्पसागरिककरणेन मलिनतारक्षणेन चेति, तथा साधूनां वर्गो–वृन्दं साधुवर्गस्तं, चशब्दात्साध्वीवर्गं च नतु हीनाचारवर्गं, तथा सूत्रं–गणधरादिबद्धं तस्यार्थो–निर्युक्तिभाष्यचूर्णिसङ्ग्रहणिवृत्तिटिप्पनादिरूपः सूत्रं चार्थश्च सूत्रार्थं 'निभालयति' जिनोपदेशेन चिन्तयतीत्यर्थः, चशब्दात्सुविनीतविनेयवर्गं जिनगणधराज्ञया पाठयति, अविनीतविनेयं प्रति नार्पयति प्रायश्चित्तापत्तेः, एवंविध आचार्यो मोक्षमार्गवाहकः कथितः ॥ १४ ॥ अथ मोक्षमार्गभञ्जकः कथ्यते— मोक्षभञ्जकः गा. १५-१६

संगहोवग्गहं विहिणा, न करेइ अ जो गणी । समणं समणिं तु दिक्खित्ता, सामायारिं न गाहए ॥ १५ ॥
बालाणं जो उ सीसाणं, जीहाए उवलिंपए । न सम्ममग्गं गाहेइ, सो सूरी जाण वेरिओ ॥ १६ ॥

संग० ॥ सङ्ग्रहं–ज्ञानादीनां सच्छिष्याणां वा संग्रहणं, उपग्रहं च–तेषामेव भक्तश्रुतादिदानेनोपष्टम्भनं 'विधिना' उत्सर्गापवादप्रकारेण न करोति स्वयं प्रमादमदिराग्रस्तत्वेन चशब्दान्न कारयति कुर्वन्तमन्यं द्वेषयति यः कश्चित् 'गणी' आचार्याभासः, तथा श्रमणं च श्रमणीं 'दीक्षित्वा' व्रतारोपं विधाय 'सामाचारीं' 'जयं चरे जयं चिट्ठे' इत्यादिरूपां

अथ मोक्षमार्गभञ्जकः कथ्यते

सत्स्वगच्छोक्तां वा 'न ग्राहयेत्' निर्जरापेक्षी सन्न शिक्षयतीत्यर्थः, तुशब्दात्सुविनीतप्रतीच्छकगणमपि न सूत्रार्थं ददाति सोऽयोग्य इति ॥ १५ ॥

बाला० ॥ 'बालानां' प्रश्नव्याकरणोक्तानां यो–गणी 'शिष्याणां' अन्तेवासिनां, तुशब्दान्महत्तरा स्वशिष्यणीनां, 'जिह्वया' रसनया उपलिम्पेत् गौरिव वत्सं, भावार्थोऽयम्–अत्यन्तबाह्यहितकोमलामन्त्रणचुम्बनादिप्रकारान् करोतीत्यर्थः, 'सम्यग्मार्गं' मोक्षपथं 'न ग्राहयति' न दर्शयति न शिक्षयतीत्यर्थः, उपलक्षणाच्छिक्षयन्तमन्यं निवारयति स आचार्यो–गणाधीशो 'वैरी' रिपुरिति त्वं जानीहि, अथवाऽऽर्षत्वाद्विभक्तिपरिणामः, तमाचार्यं वैरिणं जानीहि त्वमिति ॥ १६ ॥ अथासद्गुरुसद्गुर्वोः किञ्चित्स्वरूपं दर्शयति—

जीहाए विलिहंतो न भद्दओ सारणा जहिं णत्थि । दंडेणवि ताडंतो स भद्दओ सारणा जत्थ ॥ १७ ॥

जीहाए० ॥ 'जिह्वया विलिहन्' बाह्यहितं कुर्वन्नाचार्यो 'न भद्रो' न कल्याणकृत् यत्र गणिनि– गुरौ 'सारणा' हिते प्रवर्त्तनलक्षणा कृत्यस्मारणलक्षणा वा, उपलक्षणत्वाद्वारणा–अहितान्निवारणलक्षणा चोयणा–संयमयोगेषु स्खलितः सन्नयुक्तमेतद्भवादृशां विधातुमित्यादिवचनेन प्रेरणा, प्रतिचोदना–तथैव पुनः पुनः प्रेरणा 'नास्ति' न विद्यते, तथा दण्डेनापि–यष्ट्यापि, अपिशब्दाद्वरकादिना 'ताडयन्' शरीरे पीडां कुर्वन् स आचार्यो 'भद्रः' कल्याणकृत् यतो यत्र सारणादि विद्यत इति ॥ १७ ॥ अथ विनेयनिर्गुणत्वमाह—

सीसोवि वेरिओ सो उ, जो गुरुं नवि बोहए । पमायमइराघत्थं, सामायारीविराहयं ॥ १८ ॥

सदसद्गुरुशिष्यस्वरूपम् गा. १७–१८ १५ २० २५ ॥ ६ ॥ २७

अथ सद्-असद् गुरु-शिष्य स्वरुपम् दर्शयते

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] “गच्छाचार” मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१८॥

दीप अनुक्रम [१८]

सीसो० ॥ ‘शिष्योऽपि’ स्वहस्तदीक्षितोऽपि ‘वैरी’ शत्रुः स यो ‘गुरुं’ धर्मोपदेशकं ‘न बोधयति’ हितोपदेशं न ददाति, तुशब्दाद्धितोपदेशं दत्त्वा सन्मार्गे न स्थापयति, किंभूतं ?–प्रमादो–निद्राविकथादिरूपः स एव मदिरा–वारुणी प्रमाद-मदिरा तया ग्रस्तम्–आच्छादितं तत्त्वज्ञानमित्यर्थः सामाचारीविराधकं, षष्ठाङ्गोक्तशेलकाचार्यवत् येन चातुर्मासिकमपि न ज्ञातमिति ॥ १८ ॥ अथ कथं प्रमादिनं गुरुं बोधयति ? इत्याह—

गुरुबोधनं गणिस्वरू. पंम् गा. १९-२०

तुम्हारिसावि मुणिवर ! पमायवसगा हवंति जइ पुरिसा । तेणऽन्नो को अम्हं आलंबण हुज्ज संसारे ? ॥ १९ ॥ ५

तुम्हा० ॥ युष्मादृशा अपि हे ‘मुनिवर !’ श्रमणश्रेष्ठ ‘प्रमादवशगाः’ प्रमादपरवशा भवन्ति ‘यदि’ चेत् ‘पुरुषाः’ पुमांसः तेन कारणेन ‘अन्यः’ पूज्यव्यतिरिक्तः कः ‘अस्माकं’ मन्दभाग्यानामकृतपुण्यानां प्रमादपरवशानां भवच्चरणारविन्दचञ्च-रीकाणां त्यक्तपुत्रगृहगृहिणीनां आलम्बनं सागरे नौरिव भविष्यति भयङ्करे पीडाकरे शोकभरे दुःखाकरे अपारसंसारे चतु-र्गत्यात्मके पतताम्मिति ॥ १९ ॥

नाणंमि दंसणंमि य चरणंमि य तिसुवि समयसारेसु । चोएइ जो ठवेउं गणमप्पाणं च सो अ गणी ॥ २० ॥ १०

नाणं० ॥ ‘ज्ञाने’ अष्टविधज्ञानाचारे ‘दर्शने’ अष्टविधदर्शनाचारे च ‘चरणे’ अष्टविधचारित्राचारे च त्रिष्वपि समय-सारेषु, चशब्दात्तपआचारे वीर्याचारे च, ‘चोएइ’त्ति प्रेरयति यो ‘गणी’ सूरिः, किं कर्तुं ?–स्थापयितुं, कं ?–‘गणं’ कुलसमु-दायरूपं ‘आत्मानं च’ स्वयं च, चशब्दात् श्रोतृवर्गं च, स च ‘गणी’ आचार्यः कथितो गणधरादिभिः ॥ २० ॥

पिंडं उवहिं सिज्जं उग्गमउप्पायणेसणासुद्धं । चारित्तरक्खणट्ठा सोहिंतो होइ स चरित्ती ॥ २१ ॥ १४

गच्छा. २

अथ ‘गणि’स्वरुपम् कथयते

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

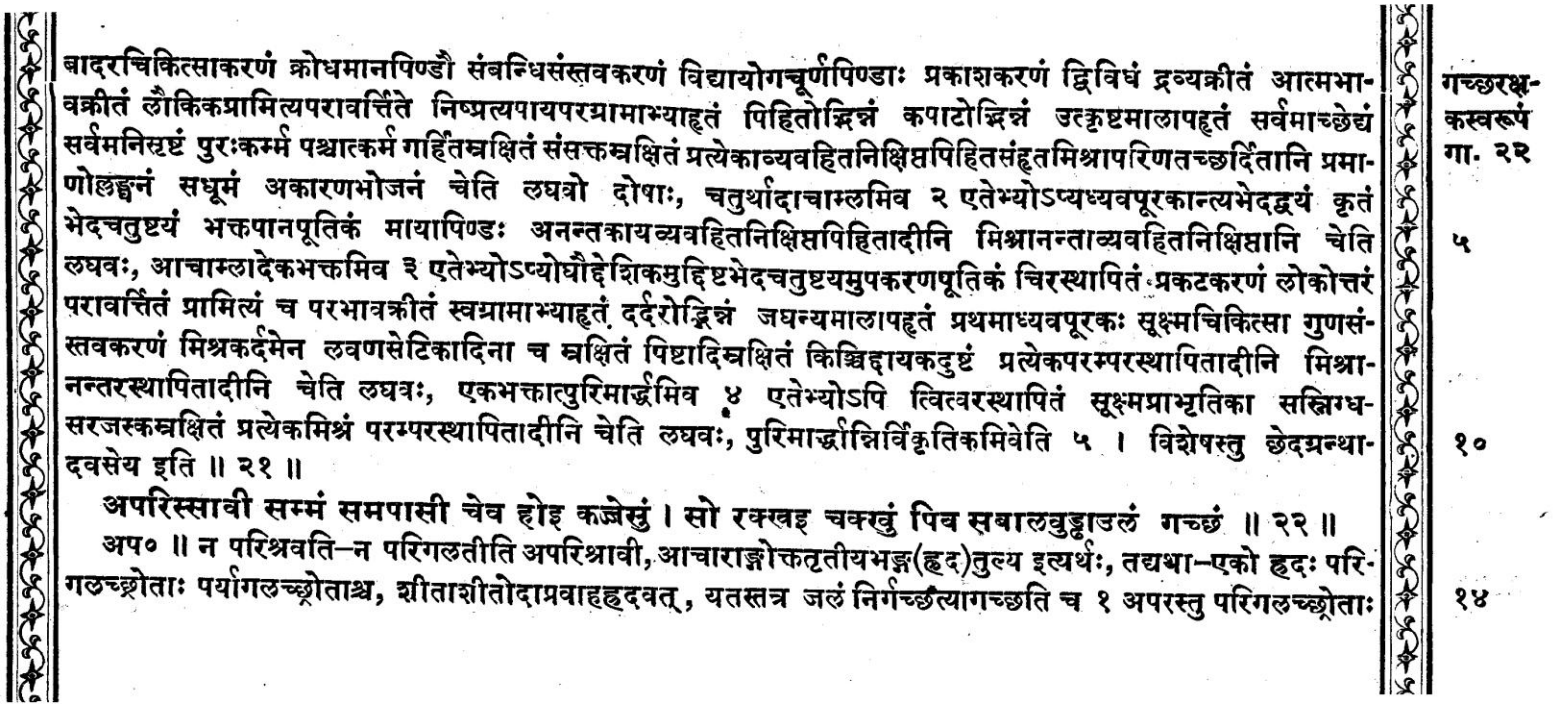
प्रत सूत्रांक ॥२१॥

दीप अनुक्रम [२१]

पिंडं० ॥ 'पिण्डं' चतुर्विधाहारलक्षणं 'उपधिं' औधिकौपग्रहिकलक्षणं, तत्रौधिकस्त्रिधा–मुखवस्त्रिका १ पात्रकेशरिका २ गुच्छकः ३ पात्रप्रस्थापनं ४ चेति चतुर्विधो जघन्यः, पटलानि १ रजस्त्राणं २ पात्रबन्धः ३ चोलपट्टः ४ मात्रकं ५ रजोहरणं ६ चेति षड्विधो मध्यमः, पतद्ग्रहः १ कल्पत्रयं ४ चेति चतुर्विध उत्कृष्टः, औपग्रहिकोपधिरपि दण्डासनक १-दण्डक २ पुस्तका ३ दिभेदेन त्रिधा स्यात्, विशेषतो जीतकल्पटीकादिभ्यो ज्ञेयमुपधिस्वरूपमिति, 'शय्यां' आचाराङ्गोक्तवसतिलक्षणां, एतत्रयमुद्गमोत्पादनैषणादोषशुद्धं, तत्रोद्गमः–पिण्डस्योत्पत्तिः तद्विषया आधाकर्मिकादयः षोडश दोषा उद्गमदोषाः, एते च प्रायेण गृहिभ्यः समुत्पद्यन्ते, प्रायेणेत्युक्ते स्वद्रव्यक्रीतस्वभावक्रीतलोकोत्तरप्रामित्यलोकोत्तरपरिवर्त्तितरूपदोषाः साधुनाऽपि क्रियमाणा अवसेया इति १६, उत्पादना–मूलतः शुद्धस्यापि पिण्डस्य धात्रीत्वादिभिरुपार्जनं तद्विषयाः षोडश दोषाः, साधुसमुत्थाः ते उत्पादनादोषाः, साधुनैव तेषां विधीयमानत्वात् १६, एषणा–शङ्कितादिभिरन्वेषणं तद्विषया गृहिसाधुजन्या दश दोषाः एषणादोषाः, शङ्कितदोषस्य साधुभावापरिणतदोषस्य च साधुजन्यत्वात् शेषाणां च गृहिप्रभवत्वादिति, 'चारित्ररक्षार्थं' संयमपरिपालनार्थं 'शोधयन्' विशुद्धपिण्डग्रहणार्थमवलोकयन् तदप्राप्तौ गुरुलघुदोषानन्वेषयंश्च भवति स 'चारित्री' चारित्रवानित्यर्थः, गुरुलघुदोषस्वरूपं यथा तत्र सर्वगुरु मूलकर्म, तत्र मूलं १८०, एतस्माच्चाधाकर्मकं कर्मौद्देशिकचरमत्रिकं मिश्रान्त्यद्विकं बादरप्राभृतिका सप्रत्यपायाभ्याहृतं लोभपिण्डः अनन्तकायाव्यवहितनिक्षिप्तपिहितसंहृतमिश्रापरिणतच्छर्दितानि संयोजना साङ्गारं वर्त्तमानभविष्यन्निमित्तं चेति लघवो दोषाः, मूलप्रायश्चित्ताच्चतुर्थतपोवत् १ तेभ्यः कर्मौद्देशिकाद्यभेदः मिश्रप्रथमभेदः धात्रीत्वं दूतीत्वं अतीतनिमित्तं आजीवनापिण्डः वनीपकत्वं

अत्र चारित्रि-लक्षणं दर्शयते

प्रत सूत्रांक ॥२१॥ दीप अनुक्रम [२१]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः



बादरचिकित्साकरणं क्रोधमानपिण्डौ संबन्धिसंस्तवकरणं विद्यायोगचूर्णपिण्डाः प्रकाशकरणं द्विविधं द्रव्यक्रीतं आत्मभाववक्रीतं लौकिकप्रामित्यपरावर्त्तिते निष्प्रत्यपायपरग्रामाभ्याहृतं पिहितोद्भिन्नं कपाटोद्भिन्नं उत्कृष्टमालापहृतं सर्वमाच्छेद्यं सर्वमनिसृष्टं पुरःकर्म्म पश्चात्कर्म गर्हितम्रक्षितं संसक्तम्रक्षितं प्रत्येकाव्यवहितनिक्षिप्तपिहितसंहृतमिश्रापरिणतच्छर्दितानि प्रमाणोल्लङ्घनं सधूमं अकारणभोजनं चेति लघवो दोषाः, चतुर्थादाचाम्लमिव २ एतेभ्योऽप्यध्यवपूरकान्त्यभेदद्वयं कृतं भेदचतुष्टयं भक्तपानपूतिकं मायापिण्डः अनन्तकायव्यवहितनिक्षिप्तपिहितादीनि मिश्रानन्ताव्यवहितनिक्षिप्तानि चेति लघवः, आचाम्लादेकभक्तमिव ३ एतेभ्योऽप्योघौद्देशिकमुद्दिष्टभेदचतुष्टयमुपकरणपूतिकं चिरस्थापितं प्रकटकरणं लोकोत्तरं परावर्त्तितं प्रामित्यं च परभावक्रीतं स्वग्रामाभ्याहृतं दर्दरोद्भिन्नं जघन्यमालापहृतं प्रथमाध्यवपूरकः सूक्ष्मचिकित्सा गुणसंस्तवकरणं मिश्रकर्दमेन लवणसेटिकादिना च म्रक्षितं पिष्टादिम्रक्षितं किञ्चिद्दायकदुष्टं प्रत्येकपरम्परस्थापितादीनि मिश्रानन्तरस्थापितादीनि चेति लघवः, एकभक्तात्पुरिमार्द्धमिव ४ एतेभ्योऽपि त्वित्वरस्थापितं सूक्ष्मप्राभृतिका सस्निग्धसरजस्कम्रक्षितं प्रत्येकमिश्रं परम्परस्थापितादीनि चेति लघवः, पुरिमार्द्धान्निर्विकृतिकमिवेति ५ । विशेषस्तु छेदग्रन्थादवसेय इति ॥ २१ ॥

अपरिस्सावी सम्मं समपासी चेव होइ कज्जेसुं । सो रक्खइ चक्खुं पिव सबालवुड्ढाउलं गच्छं ॥ २२ ॥

अप० ॥ न परिश्रवति–न परिगलतीति अपरिश्रावी, आचाराङ्गोक्ततृतीयभङ्ग(ह्रद)तुल्य इत्यर्थः, तद्यथा–एको ह्रदः परिगलच्छ्रोताः पर्यागलच्छ्रोताश्च, शीताशीतोदाप्रवाहह्रदवत्, यतस्तत्र जलं निर्गच्छत्यागच्छति च १ अपरस्तु परिगलच्छ्रोताः

गच्छरक्षकस्वरूपं गा. २२

५

१०

१४

	अत्र गच्छरक्षकस्य स्वरुपम् प्रकाश्यते

प्रत सूत्रांक ॥२२॥ दीप अनुक्रम [२२]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

नो पर्यागलच्छ्रोताः पद्महृदवत्, पद्महृदे तु जलं निर्गच्छति न त्वागच्छति २ तथा परो नो परिगलत्श्रोताः पर्यागलत्श्रोताश्च, लवणोदधिवत्, लवणे आगच्छति जलं न तु निर्गच्छति ३ अपरस्तु नो परिगलत्श्रोता नो पर्यागलत्श्रोताश्च, मनुष्यलोकाद्बहिः समुद्रवत्, तत्र नागच्छति न च निर्गच्छति ४ । तत्राचार्यः श्रुतमङ्गीकृत्य प्रथमभङ्गपतितः, श्रुतस्य दानग्रहणसद्भावात् १ साम्परायिककर्मापेक्षया तु द्वितीयभङ्गपतितः, कषायोदयाभावेन ग्रहणाभावः कायोत्सर्गादिनाक्षपणापत्तेश्च, साम्परायिककर्म्म तु कषायकर्म्म २ आलोचनामङ्गीकृत्य तृतीयभङ्गपतितः, आलोचनायाः अप्रतिश्रावित्वात् ३ कुमार्गं प्रति चतुर्थभङ्गपतितः, कुमार्गस्य हि प्रवेशनिर्गमाभावात् ४ । यद्वा केवलं श्रुतमाश्रित्य धर्मभेदेन भङ्गा योज्यन्ते, तत्र स्थविरकल्पिकाचार्याः प्रथमभङ्गपतिताः १ द्वितीयभङ्गपतितास्तु तीर्थकृत् २ तृतीयभङ्गकास्त्वाहालन्दिकाः, तेषां च क्वचिदर्थापरिसमाप्तावाचार्यादेर्निर्णयसद्भावात् ३ प्रत्येकबुद्धास्तूभयाभावाच्चतुर्थभङ्गस्थाः ४, कथं ?, सम्यक्–सर्वप्रकारेण, तथा समा–अविपरीता पासीति–दृष्टिर्दर्शनमवलोकनं यस्यासौ समदृष्टिर्भवति, क्व ?–'सर्वकार्येषु' आगमव्याख्यानादिसकलव्यापारेष्वित्यर्थः 'सः' पूर्वोक्त आचार्यः 'रक्षति' धत्ते कुमार्गे पतितमिति शेषः, कं ?–'गच्छं' गणं, किंभूतं ?–सबालाश्च ते वृद्धाश्च सबालवृद्धास्तैराकुलः–सङ्कीर्णस्तं सबालवृद्धाकुलं, किमिव ?, चक्षुरिव, यथा चक्षुर्गर्त्तादौ पतन्तं जन्तुगणं धत्ते तथाऽयमिति ॥ २२ ॥ अथाधमाचार्यस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

सीयावेइ विहारं सुहसीलगुणेहिं जो अबुद्धीओ । सो नवरि लिंगधारी संजमजोएण णिस्सारो ॥ २३ ॥
कुलगामनगररज्जं पयहिय जो तेसु कुणइ हु ममत्तं । सो नवरि लिंगधारी संजमजोएण निस्सारो ॥२४॥

	अथ आचार्यस्य स्वरुपम् कथयते

सीया० ॥ 'सीयावेइ'त्ति शिथिलत्वं प्रापयति मुनीनामिति शेषः, कं प्रति ?–विहारं प्रति, अथवा 'सीयावेइ'त्ति स्वयमलसो भवति, क्व ?–विहारे, अत्र "सप्तम्या द्वितीये"ति प्राकृतसूत्रेण सप्तम्यर्थे द्वितीयेति, अत्र विहारस्वरूपं बृहत्कल्पादिभ्यो यथा–साधूनां ग्रामनगरराजधान्यादिषु वृत्तिप्राकारपरिक्षेपयुक्तेषु बहिर्गृहपद्धतिरहितेषु एकं मासं यावद्वस्तुं कल्पते कारणं विना हेमन्तग्रीष्मयोः, कारणे तु पाटकपरावर्त्तनं क्रियते, तदभावे गृहपरावर्त्तनं, तदभावे वसतावेव स्थानपरावर्त्तनं, न त्वेकस्थानवसनमिति, ग्रामादिषु वृत्तिप्राकारपरिक्षेपयुक्तेषु बहिर्गृहपद्धतियुक्तेषु मासद्वयं यावद्वस्तुं कल्पते हेमन्तग्रीष्मयोः, मासमेकमन्तः बहिरेकं च, यत्रैव वसति तत्रैव भिक्षाचर्या भवति, एवं साध्वीनामपि, नवरं यत्र साधूनां मासकल्पस्तत्र साध्वीनां मासद्वयं यावद्वस्तुं कल्पते । तथा सुखशीलस्य–साताभिलाषिणो गुणाः–पार्श्वस्थादिस्थानानि सुखशीलगुणास्तैर्यः 'अबुद्धीओ'त्ति तत्त्वज्ञानरहितः, यद्वा 'सुहसीलगुणेहिं'ति, इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, सुखं च–उपशमसन्तोषलक्षणं शीलं च–मूलगुणलक्षणं गुणाश्च–उत्तरगुणरूपास्तेषु यः, न विद्यते बुद्धिः–अन्तःकरणभावरूपा यस्यासौ अबुद्धिः अबुद्धिरेवाबुद्धिकः भावशून्य इत्यर्थः, यद्वा सुखे–मोक्षलक्षणे शीलं–स्वभावो येषां ते सुखशीलाः–जिनास्तेषां गुणाः–केवलज्ञानकेवलदर्शनादिरूपास्तेषु यः 'अबुद्धीओ'त्ति अत्र नञ् कुत्सार्थे कुत्सिता–विरुद्धप्ररूपणरूपा बुद्धिः–मतिर्यस्यासौ अबुद्धिकः, 'स' पूर्वोक्तः 'नवरं' केवलं लिङ्गं–साधुनेपथ्यरूपं धरतीत्येवंशीलो लिङ्गधारी, द्रव्यलिङ्गधारीत्यर्थः, तथा संयमः–पृथिव्यादिः सप्तदशलक्षणः, यथा पृथिवी १ भू २ वह्नि ३ वायु ४ तरु ५ द्वि ६ त्रि ७-चतुः ८ पञ्चेन्द्रियाणां ९ मनोवाक्कायैः करणकारणानुमतिभिः संरम्भसमारम्भारम्भवर्जनमिति जीवसंयमः, पुस्तकादीन्

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रतिलेखनापूर्वकं धारयतोऽजीवसंयमः १०, प्रेक्ष्य चक्षुषा शयनासनादीनि कुर्वीतेति प्रेक्षासंयमः ११, पार्श्वस्थादीनामुपेक्षणमुपेक्षासंयमः १२, सचित्ताचित्तमिश्ररजोऽवगुण्डितपादादीनां प्रमार्जनं प्रमार्जनासंयमः १३, अनुपकारकं वस्तु विधिना परिष्ठापयतः परिष्ठापनासंयमः १४, द्रोहेर्ष्यादिभ्यो निवृत्तिर्धर्मध्यानादिषु प्रवृत्तिर्मनःसंयमः १५, एवं वाक्कायोरपि १६।१७, तस्य योगः–प्रतिलेखनादिव्यापारस्तेन निस्सारश्चर्वितताम्बूलवदिति, यद्वा 'संजम०' निर्गतं सारं–स्वर्गापवर्गफलं यस्य स निस्सारः, केन?–संयमश्च योगश्च–योगोद्वहनं संयमयोगं तेन, बाध्यसंयमयोगोद्वहनहेतुत्वादिति ॥२३॥

कु० ॥ कुलं–गृहं ग्रामं–सकरं नकरं–गो १ महिषी २ उष्ट्र ३ च्छाग ४ च्छगली ५ तृण ६ पलाल ७ बूरक ८ काष्ठा ९-ङ्गार १० क्षेत्र ११ गृह १२ दूरदेशव्यवसायि १३ बलीवर्द १४ घृत १५ चर्म १६ भोजन १७ सेइमाणाक १८ रूपाष्टादशकररहितं राज्यं–सप्ताङ्गमयं, अथवा राज्यमिति सर्वत्र योज्यं, यथा कुलराज्यं ग्रामराज्यं नगरराज्यं, यद्वा कुलग्रामनगराणि यत्रैवंविधं राज्यं 'पयहिय'त्ति त्यक्त्वा पुनरिति शेषः 'यः' साध्वाभासः 'तेषु' कुलादिषु 'करोति' विधत्ते 'हुः' निश्चितं 'ममत्वं' ममैतदिति मन्यते 'सः' पूर्वोक्तः केवलं 'लिङ्गधारी' वेषमात्रधारी संयमः–पञ्चाश्रवविरमण ५ पञ्चेन्द्रियनिग्रह १० कषायचतुष्टयजय १४ दण्डत्रयविरति १७ लक्षणस्तस्य योगो–व्यापारस्तेन निस्सारो–गतसार इति ॥ २४ ॥

पुनर्गाथात्रयेणोत्तमाचार्यस्वरूपमाह—

विहिणा जो उ चोएइ, सुत्तं अत्थं च गाहई । सो धण्णो सो अ पुण्णो य, स बंधू मुक्खदायगो ॥ २५ ॥
स एव भवसत्ताणं, चक्खुभूए वियाहिए । दंसेइ जो जिणुद्दिट्ठं, अणुट्ठाणं जहट्ठियं ॥ २६ ॥

उत्तमाचार्यस्वरूपं गा. २५-७

२०

२५

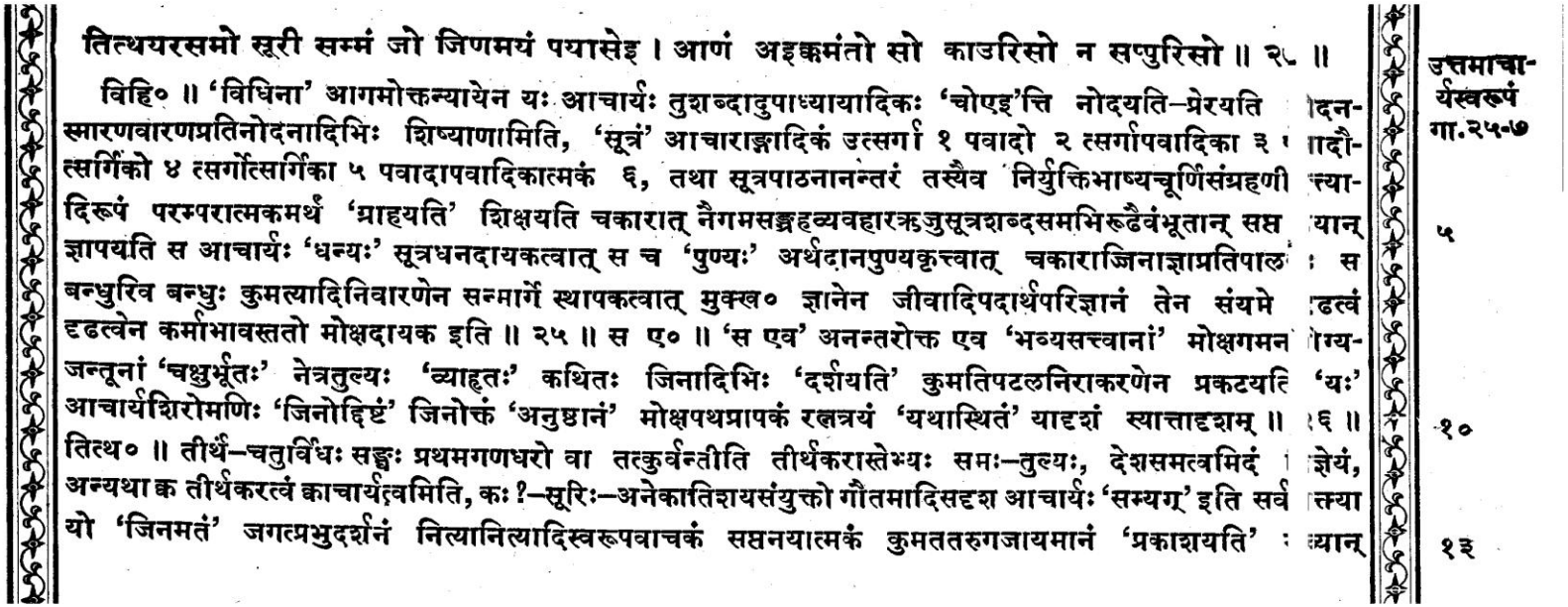
॥ ९ ॥

२८

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥२५--२७॥

दीप अनुक्रम [२५-२७]



तित्थयरसमो सूरी सम्मं जो जिणमयं पयासेइ । आणं अइक्कमंतो सो काउरिसो न सप्पुरिसो ॥ २८ ॥

विहि० ॥ 'विधिना' आगमोक्तन्यायेन यः आचार्यः तुशब्दादुपाध्यायादिकः 'चोएइ'त्ति नोदयति–प्रेरयति ादन- स्मारणवारणप्रतिनोदनादिभिः शिष्याणामिति, 'सूत्रं' आचाराङ्गादिकं उत्सर्गा १ पवादो २ त्सर्गापवादिका ३ ादौ- त्सर्गिको ४ त्सर्गोत्सर्गिका ५ पवादापवादिकात्मकं ६, तथा सूत्रपाठनानन्तरं तस्यैव निर्युक्तिभाष्यचूर्णिसंग्रहणी त्या- दिरूपं परम्परात्मकमर्थं 'ग्राहयति' शिक्षयति चकारात् नैगमसङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूतान् सप्त यान् ज्ञापयति स आचार्यः 'धन्यः' सूत्रधनदायकत्वात् स च 'पुण्यः' अर्थदानपुण्यकृत्त्वात् चकाराज्जिनाज्ञाप्रतिपाल : स बन्धुरिव बन्धुः कुमत्यादिनिवारणेन सन्मार्गे स्थापकत्वात् मुक्ख० ज्ञानेन जीवादिपदार्थपरिज्ञानं तेन संयमे ढत्वं दृढत्वेन कर्माभावस्ततो मोक्षदायक इति ॥ २५ ॥ स ए० ॥ 'स एव' अनन्तरोक्त एव 'भव्यसत्त्वानां' मोक्षगमन ोग्य- जन्तूनां 'चक्षुर्भूतः' नेत्रतुल्यः 'व्याहृतः' कथितः जिनादिभिः 'दर्शयति' कुमतिपटलनिराकरणेन प्रकटयति 'यः' आचार्यशिरोमणिः 'जिनोदिष्टं' जिनोक्तं 'अनुष्ठानं' मोक्षपथप्रापकं रत्नत्रयं 'यथास्थितं' यादृशं स्यात्तादृशम् ॥ २६ ॥ तित्थ० ॥ तीर्थं–चतुर्विधः सङ्घः प्रथमगणधरो वा तत्कुर्वन्तीति तीर्थकरास्तेभ्यः समः–तुल्यः, देशसमत्वमिदं ज्ञेयं, अन्यथा क्व तीर्थकरत्वं क्वाचार्यत्वमिति, कः ?–सूरिः–अनेकातिशयसंयुक्तो गौतमादिसदृश आचार्यः 'सम्यग्' इति सर्व क्त्या यो 'जिनमतं' जगत्प्रभुदर्शनं नित्यानित्यादिस्वरूपवाचकं सप्तनयात्मकं कुमततरुगजायमानं 'प्रकाशयति' : यान्

उत्तमाचार्यस्वरूपं गा.२५-७

५

१०

१३

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ १० ॥

दर्शयतीत्यर्थः, 'आज्ञां' पारगतोक्तमर्यादां 'अतिक्रमन्' उल्लङ्घयन् पुनः सः 'कापुरुषः' पुरुषाधमः, 'न सत्पुरुषः' न प्रधानपुरुषो, जमालिवदिति ॥ २७ ॥ अथ कीदृशा आचार्या आज्ञातिक्रामका भवन्ति ?, आह—

भट्ठायारो सूरी १ भट्ठायाराणुविक्खओ सूरी २ । उम्मग्गठिओ सूरी ३ तिन्निवि मग्गं पणासंति ॥ २८ ॥

भट्ठा० ॥ भ्रष्टः–सर्वथा शिथिलीभूतः आचारो–ज्ञानाचारादिर्यस्य स भ्रष्टाचारः 'सूरिः' अधर्माचार्यः १ भ्रष्टाचाराणां–मुक्तसंयमव्यापाराणां मुनीनामुपेक्षकः, प्रमादप्रवृत्तसाधुसाध्वीवृन्दान् न निवारयतीत्यर्थः, 'सूरिः' मन्दधर्माचार्यः २ 'उन्मार्गस्थितः' उत्सूत्रादिप्ररूपणे प्रवृत्तः 'सूरिः' अधमाधमो नामाचार्यः ३ एते त्रयोऽपि 'मार्गं' ज्ञानादिरूपं पन्थानं 'प्रणाशयन्ति' भृशं विनाशयन्तीत्यर्थः ॥ २८ ॥ एतान् यः सेवते तस्य फलं दर्शयन्नाह—

उम्मग्गठिए सम्मग्गनासए जो उ सेवए सूरिं । निअमेणं सो गोयम ! अप्पं पाडेइ संसारे ॥ २९ ॥

उम्म० ॥ 'उन्मार्गस्थितान्' आगमविरुद्धप्ररूपकान् 'सन्मार्गनाशकान्' जिनोक्तमार्गदूषकान् 'यः' भव्यसत्त्वः सेवते, तदुक्तमनुष्ठानं कुरुत इत्यर्थः, तुशब्दात्तदुक्तमनुष्ठानं कारयति अनुमोदयति च, 'सूरि' मिति 'सूरीन्' आचार्यान् प्राकृतत्वादेकवचनं, 'नियमेन' निश्चयेन स हे गौतम ! आत्मानं स्वयं पातयति 'संसारे' भवान्धकूपे क्षिपतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ किञ्च—

उम्मग्गठिओ एक्कोऽवि नासए भवसत्तसंघाए । तं मग्गमणुसरंतं जह कुत्तारो नरो होइ ॥ ३० ॥

उम्म० ॥ 'एकोऽपि' अद्वितीयोऽपि सूरिः साधुर्वा 'उन्मार्गस्थितः' कुमतिकदाग्रहग्रस्तो नाशयति, संसारसागरे पातयतीत्यर्थः 'भव्यसत्त्वसङ्घातं' भवसिद्धिकजन्तुसमूहं तन्मार्गं 'अनुसरन्तं' आश्रयन्तं, यथेति दृष्टान्तोपदर्शने 'कुतारः'

आज्ञातिक्रामकस्य स्वरूपं तत्सेवाफलं गा. २९-३०

२०

२५

॥ १० ॥

२७

कुत्सिततारको नरो भवति स बहून् पृष्ठलग्नान् जन्तुसमूहान् नद्यादौ बोलयति आत्मानमपि च बोलयतीति ॥ ३० ॥ अथोन्मार्गपरम्परालग्नानामाचार्याणां मुनीनां च किं फलं भवति? इत्याह— उन्मार्गगफलं संविग्नपाक्षिकस्व. गा. ३१-२ ५

उम्मग्गमग्गसंपट्ठिआण साहूण गोअमा ! नूनं । संसारो अ अणंतो होइ य सम्मग्गनासीणं ॥ ३१ ॥

उम्म० ॥ उन्मार्गा–गोशालकबोटिकनिह्नवादयस्ते तेषां मार्गः–परम्परा तस्मिन् यद्वा उन्मार्गरूपो यो मार्गस्तस्मिन् स्थितानां 'साधूनां' मुनिवेषाभासकानां उपलक्षणत्वात्तदाचार्याणामपि हे 'गौतम !' हे इन्द्रभूते! 'नूनं' निश्चितं 'संसारः' चतुर्गत्यात्मकः न विद्यतेऽन्तः–पर्यन्तो यस्यासावनन्तो भवति, चकारस्तद्गतानेकदुःखसूचकः, किंभूतानां?– 'सन्मार्गनाशिनां' जिनोक्तपथाच्छादकानां, महानिशीथोक्तमुनिचन्द्रसाधुवत् ॥ ३१ ॥ अथ कोऽपि कदाचित्प्रमादपरत्वेन न जिनोक्तक्रियां करोति परन्तु भव्यानां यथोक्तं जिनमार्गं दर्शयति स कस्मिन् मार्गे आत्मानं स्थापयति ?, तद्विपरीतश्च कीदृशो भवति ?, इत्याह—

सुद्धं सुसाहुमग्गं कहमाणो ठवइ तइअपक्खंमि । अप्पाणं इयरो पुण गिहत्थधम्माओ चुक्कत्ति ॥ ३२ ॥ १०

सुद्धं० ॥ 'शुद्धं' आज्ञाशुद्धिसंयुक्तं 'सुसाधुमार्गं' सुविहितपथं 'कथयन्' आकाङ्क्षाऽभावेन प्ररूपयन् 'स्थापयति' रक्षयति 'आत्मानं' स्वयं, क ?–साधुश्रावकपक्षद्वयापेक्षया 'तृतीयपक्षे' संविग्नपाक्षिके, संविग्नानां–मोक्षाभिलाषिसुसाधूनां पाक्षिकः-साहाय्यकर्त्ता संविग्नपाक्षिकस्तस्मिन्, तस्येदं लक्षणं–"सुद्धं सुसाहुधम्मं कहेइ निंदइ य नियमायारं। सुतवस्सियाण पुरओ होइ य सव्वोमराइणिओ ॥ १ ॥ वंदइ न य वंदावइ किइकम्मं कुणइ कारवे नेव। अत्तट्ठा नवि दिक्खइ देइ सुसाहूण १४

बोहेउं ॥ २ ॥" इत्यादि । तथा 'इतरः पुनः' उत्सूत्रभाषकः साधुद्वेषी च गृहस्थधर्मात् 'चुक्क'त्ति भ्रष्टो यः स साधुर्न भवति उत्सूत्रप्ररूपकत्वात् साधुपरिद्वेषपरिणामत्वाच्च गृहस्थोऽपि न भवति गृहाश्रमधर्माभावात् गृहस्थवेषाभावाच्चेति ॥ ३२ ॥ यद्येवं ततः किं कर्त्तव्यम् ? इत्याह—

जइवि न सक्कं काउं सम्मं जिणभासिअं अणुट्ठाणं । तो सम्मं भासिज्जा जह भणियं खीणरागेहिं ॥ ३३ ॥

जइ० ॥ यद्यपि शक्यं न भवति तेन 'सक्कइ'त्ति पाठे तु न शक्यते 'कर्त्तुं' विधातुं, कथं ?–'सम्यक्' त्रिकरणशुद्ध्या 'जिनभाषितं' केवल्युक्तं 'अनुष्ठानं' आजन्म क्रियाकलापरूपं, ततः 'सम्यक्' आत्मसामर्थ्येण भाषेत यादृशं स्यात्तादृशं यथा 'क्षीणरागैः' जिनैः 'भणितं' कथितं तथा निरूपयेदिति ॥ ३३ ॥ अथ प्रमादिनामपि शुद्धप्ररूपणया को गुणः ? इत्याह—

उस्सन्नोऽवि विहारे कम्मं सोहेइ सुलभबोही य । चरणकरणं विसुद्धं उवबूहिंतो परूविंतो ॥ ३४ ॥

उस्स० ॥ 'अवसन्नोऽपि' शिथिलोऽपि, क ?–'विहारे' मुनिचर्यायां 'कर्म' दुष्टज्ञानावरणादिकं शोधयति, कर्मणां शिथिलत्वं प्रापयतीत्यर्थः, सुलभा–सुखेन लभ्येत्यर्थः बोधिः–जन्मान्तरे जिनधर्मप्राप्तिरूपा यस्यासौ सुलभबोधिः, चकारात्सुदेवत्वप्राप्तिस्तदनन्तरं च सुकुलोत्पत्तिर्भवति, किं कुर्वन् ?–चरणकरणं 'विशुद्धं' निर्दोषं 'उपबृंहयन्' निर्मायभावेन प्रशंसां कुर्वन् 'प्ररूपयन्' च वाञ्छाविरहितो यथास्थितं भव्यानां कथयन्निति । तत्र "वय ५ समणधम्म १० संजम १७ वेयावच्चं च १० बंभगुत्तीओ ९ । णाणाइतियं ३ तव १२ कोहनिग्गहाइ ४ य चरणमेयं ॥ १ ॥" तथा–"पिंडविसोही ४

समिई ५ भावण १२ पडिमा य १२ इंदियनिरोहो ५ । पडिलेहण २५ गुत्तीओ अभिग्गहा ४ चेव करणं तु ॥ २ ॥" इति ॥ ३४ ॥ अथ संविज्ञपाक्षिकस्य साधुविषये किञ्चित्कृत्यं दर्शयन् इत्याह—

संविग्नपाक्षिककृत्यं तत्पूज्यता गा. ३५-६

संभग्गमग्गसंपट्ठिआण साहूण कुणइ वच्छल्लं । ओसहभेसज्जेहि य सयमन्नेणं तु कारेइ ॥ ३५ ॥

संभग्ग० ॥ 'सन्मार्गमार्गसंप्रस्थितानां' प्रधानमार्गपरम्पराप्रवृत्तानां 'साधूनां' जगदुत्तममुनीनां 'करोति' निर्जरार्थं विधत्ते 'वात्सल्यं' अन्तरङ्गभावेनोपकारकरणं, कैः ?–'औषधभेषजैः' तत्रौषधम्–अनेकद्रव्यसंयोजितं तद्व्यतिरिक्तं भेषजं, यद्वा औषधं–हरीतक्यादि भेषजं–पेयादि, चशब्दोऽनेकप्रकारभावसूचकः, 'स्वयं' आत्मना 'अन्येन' आत्मव्यतिरिक्तेन कारयति तुशब्दात्कुर्वन्तमन्यमनुजानाति यः स संविग्नपाक्षिक आराधको ज्ञेय इत्याशयः ॥ ३५ ॥ किञ्च—

भूया अत्थि भविस्संति केइ तेलुक्कनमिअकमजुअला । जेसिं परहिअकरणिक्कबद्धलक्खाण वोलिही कालो ॥ ३६ ॥

भूया० ॥ 'भूताः' अतीतकाले 'अत्थि'त्ति 'सन्ति' विद्यन्ते वर्त्तमानकाले 'भविष्यन्ति' भविष्यत्काले 'केचित्' अल्पाः संविग्नपाक्षिकाः, किंभूताः ?–त्रैलोक्येन–स्वर्गमर्त्यपातालरूपेण तन्निवासिप्राणिगणेनेत्यर्थः नतं क्रमयुगलं–चरणयुग्मं येषां ते त्रैलोक्यनतक्रमयुगलाः, 'येषां' सत्पुरुषाणां संविग्नपाक्षिकाणां, पुनः किंभूतानां ?–'परहितकरणैकबद्धलक्षाणां' परस्मै–अन्यस्मै हितं परहितं परहितस्य करणं परहितकरणं तस्मिन् एकम्–अद्वितीयं बद्धं लक्षं–आलोचनलक्षणं यैस्ते पर०, लक्षणं आलोचनं इति, यद्वा परहितकरणे एकं बद्धं लक्षं–दर्शनं लक्षणं वा यैस्ते परहि० 'लक्षीण् दर्शनांकनयो'रिति तेषां प०

	संविज्ञपाक्षिकस्य कृत्य एवं तस्य पूज्यता दर्शयते

'वोलिही'ति गमिष्यति 'कालः' समयादिलक्षणः, ते संविग्नपाक्षिकाः पूज्या विज्ञेया इति ॥ ३६ ॥ ये एवंविधा न स्युस्तेषां स्वरूपमाह—

तीआणागयकाले केइ होहिंति गोयमा ! सूरी । जेसिं नामग्गहणेऽवि होइ नियमेण पच्छित्तं ॥ ३७ ॥

तीआ० ॥ अतीते कालेऽनागतकाले च 'केचित्' अनिर्दिष्टनामानोऽभूवन्निति शेषः 'होहिंति' भविष्यन्ति वर्त्तमानेऽपि काले सन्ति हे गौतम ! 'सूरयः' आचार्यपदनामधारकाः, येषां परिचयकरणादिकं दूरे आस्तां 'नामग्रहणेऽपि' अमुकदेवदत्ताख्यसूरिरित्यपि कथ्यमाने भवति निश्चयेन प्रायश्चित्तमिति, तथा चोक्तं श्रीमहानिशीथपञ्चमाध्ययने–"इत्थं चायरियाणं पणपण्णं होंति कोडिलक्खाओ । कोडिसहस्से कोडीसए य तह एत्तिए चेव ५५५५५००००००० ॥ १ ॥ एसेसिं मज्झाओ एगे न बुड्डेइ गुणगणाईण ॥" इति ॥ ३७ ॥

जओ–सइरीभवंति अणविक्खयाइ जह भिच्चवाहणा लोए । पडिपुच्छाहिं चोयण तम्हा उ गुरू सया भयइ ॥३८॥

जओ–स० ॥ जओत्ति भिन्नपदं यतो भणितं–'सइरी'त्ति स्वेच्छाचारिणो भवन्ति 'अणविक्खयाइ'त्ति शिक्षारहितत्वेन यथा भृत्यवाहनादयः, तत्र भृत्याः–सेवकाः वाहनानि–हस्त्यश्ववृषभमहिषादीनि लोके, तथा विनेयाः गुरूणां कार्ये २ प्रति पृच्छाः प्रतिपृच्छास्ताभिः प्रतिपृच्छाभिः 'चोयणे'ति प्राकृतत्वाद्विभक्तिपरिणामः चोदनादिभिश्च विनेति गम्यं स्वेच्छाचारिणो भवन्तीत्यर्थः, यस्मात्स्वेच्छाचारिणो भवन्ति तस्मात्प्रतिपृच्छादिभिराचार्यो विनेयानां तुशब्दान्महत्तरा स्वशिष्यणीनां 'सदा' सर्वकालं 'भयइ'त्ति धातूनामनेकार्थत्वात् 'सत्याषयति' शिक्षां ददातीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ किञ्च—

जो ऊ पमायदोसेणं, आलस्सेणं तहेव य । सीसवग्गं न चोएइ, तेण आणा विराहिया ॥ ३९ ॥

जो उ० ॥ 'यो' गणी तुशब्दादुपाध्यायगणावच्छेदादिः प्रमादश्च–निद्रादिः द्वेषश्च–मत्सरः दोषश्च वा–स्वशिष्ये रागादिकः प्रमादद्वेषं प्रमाददोषं वा तेन, यद्वा प्रमादरूप एव यो दोषः–कुलक्षणत्वं तेन प्रमाददोषेण, आलस्येन तथैवं च, चकारान्मोहावज्ञादिप्रकारेण, 'शिष्यवर्गं' अन्तेवासिवृन्दं न प्रेरयति संयमानुष्ठान इति शेषः 'तेन' आचार्येण 'आज्ञा' जिनमर्यादा 'विराधिता' खण्डितेत्यर्थः ॥ ३९ ॥

आज्ञाविराधना मुनिवृन्दलक्षणम् गा. ३९–४२ ५

संखेवेणं मए सोम !, वन्नियं गुरुलक्खणं । गच्छस्स लक्खणं धीर !, संखेवेणं निसामय ॥ ४० ॥

संखे० ॥ 'सङ्क्षेपेण' विस्तराभावेन मया 'हे सौम्य !' हे विनेय ! 'वर्णितं' प्ररूपितमित्यर्थः गृणाति–वदति तत्त्वमिति गुरुस्तस्य लक्षणं–चिह्नम् । अथेति शेषः 'गच्छस्य' मुनिवृन्दस्य लक्षणं धिया राजत इति धीरस्तस्य सम्बोधनं क्रियते हे धीर ! सङ्क्षेपेण 'निशामय' आकर्णयेति ॥ ४० ॥

गीअत्थे जे सुसंविग्गे, अणालस्सी दढव्वए । अक्खलियचरित्ते सययं, रागदोसविवज्जिए ॥ ४१ ॥

निट्ठवियअट्ठमयट्ठाणे, सोसिअकसाए जिइंदिए । विहरिज्जा तेण सद्धिं तु, छउमत्थेणवि केवली ॥ ४२ ॥

१०

गीअ० ॥ निट्ठ० ॥ गीतं–सूत्रमर्थस्तस्य व्याख्यानं तद्वयेन युक्तो गीतार्थः यः 'सुसंविग्गे'त्ति अत्यर्थं संवेगवान् न विद्यते आलस्यं वैयावृत्त्यादौ यस्यासौ 'अनालस्यः' आलस्यरहित इत्यर्थः दृढानि–सुनिश्चलानि व्रतानि–महाव्रतलक्षणानि यस्यासौ दृढव्रतः, अस्खलितम्–अतीचाररहितं चारित्रं सप्तदशभेदं यस्यासौ अस्खलितचारित्रः 'सततं' अनवरतं 'रागद्वेष-

१४

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥४२॥

दीप अनुक्रम [४२]

विवर्जितः' तत्र मायालोभात्मको रागः क्रोधमानात्मको द्वेष इति ॥ ४१ ॥ निष्ठापितानि–क्षयं नीतानि अष्टौ मदस्थानानि–जाति १ कुल २ रूप ३ बल ४ लाभ ५ श्रुत ६ तपो ७ विभव ८ लक्षणानि येनासौ निष्ठापिताष्टमदस्थानः, शोषिताः–दुर्बलीकृताः कषायाः–सभेदाः क्रोधमानमायालोभा येनासौ शोषितकषायः, जितानि–आत्मवशीकृतानि इन्द्रियाणि–श्रोत्र १ दृग् २ नासा ३ जिह्वा ४ स्पर्शन ५ मनो ६ लक्षणानि येनासौ जितेन्द्रियः 'विहरेत्' विहारं कुर्यादित्यर्थः तेन छद्मस्थेनापि सार्द्धं 'केवली' केवलज्ञानी ॥ ४२ ॥ अथोक्तविपरीतैः सार्द्धं विहारो न विधेय इत्याह—

जे अणहीयपरमत्था, गोअमा ! संजया भवे । तम्हा ते विवज्जिज्जा, दुग्गईपंथदायगे ॥ ४३ ॥

जे अ० ॥ 'ये' मुनयः अनधीता–अनभ्यस्ताः परमार्थाः–ये आश्रवाः–कर्मबन्धस्थानानि ते परिश्रवाः–कर्मनिर्जरास्थानानि १, ये एव परिश्रवा–निर्जरास्थानानि तान्येवाश्रवाः–कर्मबन्धस्थानानि २, येऽनाश्रवास्तेऽप्यपरिश्रवाः–कर्मबन्धस्थानानि कौङ्कणसाध्वादिवत् ३, अपरिश्रवाः–कर्मबन्धस्थानानि तेऽनाश्रवा–न कर्मबन्धस्थानानि कणवीरलताश्रामकक्षुल्लकस्येव ४, इत्याद्यागमपरिज्ञानरूपा यैस्तेऽनधीतपरमार्थाः हे गौतम ! संयता भवन्ति तस्मात्तानपि 'विवर्जयेत्' दूरतस्त्यजेत्, किंभूतान् ?–'दुर्गतिपथदायकान्' तिर्यग्नरककुमानुषकुदेवमार्गप्रापकानित्यर्थः ॥ ४३ ॥ अथ गीतार्थोपदेशः सर्वोऽपि सुखावहो भवतीत्याह—

गीअत्थस्स वयणेणं, विसं हालाहलं पिवे। निविकप्पो य भक्खिज्जा, तक्खणे जं समुद्दवे ॥ ४४ ॥
परमत्थओ विसं नो तं, अमयरसायणं खु तं । निविग्घं जं न तं मारे, मओऽवि अमयस्समो ॥ ४५ ॥

वर्ज्याः साधवः गीतार्थ महिमा गा. ४३–५ २० २५ ॥ १३ ॥ २८

गीतार्थ-अगीतार्थस्य महिमा-अमहिमा दर्शयते

गीअ० परम० गाथाद्वयम् ॥ 'गीतार्थस्य' अधीतगुरुपार्श्वसूत्रार्थस्य 'वचनेन' उपदेशेन 'विषं' गरलं, किंभूतं ?–'हालाहलं' उत्कटं 'पिबेत्' गलरन्ध्रे पातयेत्, विनेय इति शेषः, किंभूतः ?–'निर्विकल्पः' सर्वथा गतशङ्कः, भक्षयेच्च विषगुटिकादिकं यद्विषगुटिकादिकं 'तत्क्षणे' भक्षणप्रस्तावे समुपद्रवेत्, पञ्चत्वं प्रापयेदित्यर्थः ॥ ४४ ॥ 'परमार्थतः' तत्त्वतः तद्विषं न भवति, 'अमृतरसायनं' अमृतरसतुल्यं 'खु' निश्चितं तद्विषं 'निर्विघ्नं' विघ्नविवर्जितं 'यद्' यस्मात् कारणात् न तद्विषं मारयति–न प्राणत्यागं करोति, अतः कथमपि 'मृतोऽपि' मरणं प्राप्तोऽपि 'अमृतसम एव' जीवन्निव भवतीत्यर्थः, शाश्वतसुखहेतुत्वादिति, गीतार्थस्येत्यत्र चतुर्भङ्गी यथा–संविग्ना नाम एके नो गीतार्थाः १ न संविग्ना नाम एके गीतार्थाः २ संविग्ना नाम एके गीतार्था अपि ३ न संविग्ना नाम एके नो गीतार्थाः ४, तत्र न प्रथमभङ्गस्था धर्माचार्याः आगमपरिज्ञानाभावात् १ द्वितीयभङ्गस्था अपि न धर्माचार्याश्चारित्ररहितत्वात्, यदि शुद्धप्ररूपका भवन्ति साधून् वन्दन्ते साधूंश्च न वन्दापयन्ति तदा संविग्नपाक्षिका जायन्त इति २ तृतीयभङ्गस्था धर्माचार्या एव, समग्रचारित्रज्ञानयुक्तत्वात्, नन्वेवंविधास्तु गणधरादय एव भवन्ति न संप्रतिकाले तथाविधा अप्रमादिनः, कथं धर्माचार्यत्वं तेषां ?, उच्यते—वर्त्तमानकाले यत्सूत्रं वर्त्तते तस्य गुरुपरम्परया गृहीतार्थाः विनिश्चितार्थाः गीतार्था भवन्ति, दुःषमासेवार्त्तसंहननाद्यनुभावतो वीर्यमगोपयन्तः संविग्ना एव अतो न तेषां धर्माचार्यत्वं व्यभिचरतीति ३, चतुर्थभङ्गस्था अपि न धर्माचार्याः, ज्ञानक्रियाशून्यत्वात् केवललिङ्गमात्रोपजीवित्वाच्चेति ४ ॥ ४५ ॥ अथोक्तविपरीतमाह—

अगीअत्थस्स वयणेणं, अमियंपि न घुंटए । जेण नो तं भवे अमयं, जं अगीअत्थदेसियं ॥ ४६ ॥

गीतार्थमहिमा अगीतार्थमहिमा गा. ४६–७५

१०

१४

परमत्थओ न तं अमयं, विसं हालाहलं खु तं । न तेण अजरामरो हुज्जा, तक्खणा निहणं वए ॥ ४७ ॥

अगी० ॥ पर० ॥ 'अगीतार्थस्य' पूर्वोक्तचतुर्थभङ्गस्थस्य वचनेन अमृतमपि 'न घुण्टेत्' न पिबेत्, येन कारणेन न तद्भवेत् अमृतं, यदगीतार्थदेशितं परमार्थतो न तदमृतं, विषं हालाहलं 'खु' निश्चितं, न तेनाजरामरो भवेत्, तत्क्षणादेव 'निधनं व्रजेत्' मरणं प्राप्नुयादित्यर्थः ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ किञ्च—

* अगीअत्थकुसीलेहिं, संगं तिविहेण वोसिरे । मुक्खमग्गस्सिमे विग्घे, पहंमी तेणगे जहा ॥ ४८ ॥

अगी० ॥ अगीतार्थाश्च कुशीलाश्च तैरगीतार्थकुशीलैः, उपलक्षणत्वात्सभेदपार्श्वस्थावसन्नसंसक्तयथाच्छन्दैः सह, 'सङ्गं' संसर्गं 'त्रिविधेन' मनोवाक्कायेन, तत्र मनसा चिन्तनम्–अहं मिलनं करोमीति, वाचा आलापसंलापादिकरणमिति, कायेन सम्मुखगमनप्रणामादिकरणमिति, 'व्युत्सृजेत्' विविधं विशेषेण वा उ इति–भृशं सृजेत्–त्यजेदित्यर्थः, तथा चोक्तं श्रीमहानिशीथषष्ठाध्ययने–"वासलक्खंपि सूलीए, संभिन्नो अच्छियामुहो । अगीयत्थेण समं एक्कं, खणद्धंपि न संवसे ॥ १ ॥" तथा 'मोक्षमार्गस्य' निर्वाणपथ 'इमे' पूर्वोक्ताः 'विग्घे'त्ति विघ्नकरा इत्यर्थः, 'पथि' लोकमार्गे 'स्तेनकाः' चौराः यथेत्युदाहरणोपदर्शन इति ॥ ४८ ॥ किञ्च—

पज्जलियं हुयवहं दुट्ठं, निस्संको तत्थ पविसिउं । अत्ताणं निद्दहिज्जाहि, नो कुसीलस्स अदिन्नए ॥ ४९ ॥

पज्ज० ॥ प्रज्वलितं 'हुतवहं' वैश्वानरं 'दुट्ठ'मिति 'दुष्टं' निर्दयं यद्वा 'दट्ठु'मिति 'दृष्ट्वा' विलोक्य 'निःशङ्कः' त्यक्तशङ्कः 'तत्र' हुतवहे 'प्रविश्य' प्रवेशं विधाय 'आत्मानं' स्वयं 'निर्दहेत्' भस्मसात्कुर्यादित्यर्थः, परं 'नो' नैव कुशीलस्य 'अदि-

ऋए'त्ति कुशीलो दूरे तिष्ठतु, तदाश्रितस्यापि सङ्गं न कुर्यात्, यद्वा कुशीलस्य उपलक्षणत्वादगीतार्थस्य 'अदिन्नए'त्ति सङ्गं न कुर्यात्, अनन्तसंसारहेतुकत्वात्, उक्तञ्च श्रीमहानिशीथद्वितीयाध्ययनप्रान्ते–"जीव संमग्गमाइण्णो, घोरवीरतवं चरो। अचयंतो इमे पंच, कुज्जा सव्वं निरत्थयं ॥ १ ॥ पासत्थोसन्नहाछंदे, कुसीले सबले तहा। दिट्ठीएवि इमे पंच, गोयमा! न निरिक्खए ॥ २ ॥" सुमतिवदिति ॥ ४९ ॥ अथ पूर्वोक्तगच्छस्वरूपमाह—

पजलंति जत्थ धगधगस्स गुरुणावि चोइए सीसा। रागद्दोसेणवि अणुसएण तं गोयम! न गच्छं ॥ ५० ॥

पज० ॥ प्रज्वलन्ति अग्निवत् यत्र गणे कथं?–धगधगायमानं यथा स्यात्तथा प्राकृतत्वाद्विभक्तिपरिणामः 'गुरुणा' स्वाचार्येणापि अपिशब्दाद्गणावच्छेदस्थविरादिनाऽपि 'चोइए'त्ति भवादृशामयुक्तमेतदित्यादिना प्रेरिताः, के?–'शिष्याः' स्वान्तेवासिनः, काभ्यां प्रज्वलन्ति?–रागद्वेषाभ्यां, प्राकृतत्वात्सूत्र एकवचनं, अपिशब्दश्चशब्दार्थे, 'अनुशयेन' च क्रोधानुबन्धेन, निरन्तरक्रोधकरणेनेत्यर्थः, यद्वा प्रज्वलन्ति, केन?–रागद्वेषेण, किंभूतेन?–'विअणुसएण'त्ति विगतो–गतोऽनुशयः–पश्चात्तापः पश्चादपि यत्र स व्यनुशयस्तेन 'व्यनुशयेन' सदा गतपश्चात्तापेनेत्यर्थः हे गौतम! स गच्छो न भवतीति ॥५०॥

गच्छो महाणुभावो तत्थ वसंताण निज्जरा विउला। सारणवारणचोअणमाईहिं न दोसपडिवत्ती ॥ ५१ ॥

गच्छो० ॥ 'गच्छो' मुनिवृन्दरूपः, किंभूतः?–महान् अनुभावः–प्रभावो यस्यासौ महानुभावः, 'तत्र' गच्छे 'वसतां' वासं कुर्वतां 'निर्जरा' देशकर्मक्षयरूपा, उपलक्षणत्वात्सर्वकर्मक्षयरूपो मोक्षोऽपि भवतीति शेषः, किंभूता?–'विपुला' विस्तीर्णा तथा यत्र च वसतां सारणवारणनोदनादिभिः पूर्वोक्तशब्दार्थैः, मोऽलाक्षणिकः, 'दोषप्रतिपत्तिः' दोषागमो न भवति ॥५१॥

अगच्छस्वरूपं गच्छवासफलम् गा. ५०–५१

५

१०

१४

	अगच्छस्य स्वरुपम् तथा गच्छवास फ़लम् दर्शयते

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥५२॥

दीप अनुक्रम [५२]

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ १५ ॥

गुरुणो छंदणुवत्ती सुविणीए जियपरीसहे धीरे । नवि थद्धे नवि लुद्धे नवि गारविए न विगहसीले ॥ ५२ ॥

'गुरोः' स्वाचार्यस्य 'छन्दोऽनुवृत्तयः' अभिप्रायानुचारिणो, न स्वाभिप्रायचारिणः, 'सुविनीताः' शोभनविनययुक्ताः जिताः–पराजिताः परीषहाः–शीतोष्णा यैस्ते जितपरीषहाः, उक्तं चाचाराङ्गनिर्युक्तौ–"इत्थीसक्कारे परीसहा य दो भावसीयला एए । सेसा वीसई उण्हा परीसहा होंति णायव्वा ॥ १ ॥ जे तिव्वपरीणामा परीसहा ए भवंति उण्हा उ । जे मंदपरीणामा परीसहा ते भवे सीया ॥ २ ॥" तथा च ज्ञानावरण १ वेदनीय २ मोहनीया ३ न्तरायेषु ४ क्षुत्पिपासा २ शीतोष्ण ४ दंशा ५ चेला ६ रति ७ स्त्री ८ चर्या ९ नैषेधिकी १० शय्या ११ ऽऽक्रोश १२ वध १३ याञ्चा- १४ ऽलाभ १५ रोग १६ तृणस्पर्श १७ मल १८ सत्कार १९ प्रज्ञा २० ऽज्ञान २१ सम्यक्त्व २२ लक्षणा द्वाविंशतिरप्य- वतरन्ति, यथा दर्शनमोहे सम्यक्त्वपरीषहः, तदुदये तस्य भावात् १, प्रज्ञाऽज्ञाने द्वे ज्ञानावरणे ३, अलाभोऽन्तराये ४, आक्रोशारतिस्त्रीनैषेधिक्यः अचेलयाञ्चासत्कारपुरस्काराः सप्त चारित्रमोहेऽवतरन्ति ११, क्षुत्पिपासा २ शीतोष्ण- ४ दंश ५ चर्या ६ शय्या ७ मल ८ वध ९ रोग १० तृणस्पर्श ११ एते एकादश वेदनीयोदये भवन्ति, शेषेषु दर्शनावरणनामायुर्गोत्रेषु नास्त्यवतारः परीषहाणामिति । तथा नवमगुणस्थानकं यावत्सर्वेऽपि परीषहाः संभवन्ति, पुन- र्वेदयति विंशतिमेव, यतो यस्मिन् समये शीतं वेदयति न तस्मिन् समये उष्णत्वं वेदयति, यस्मिन्नुष्णं तस्मिन् शीतं न, तथा यस्मिन् चर्यां वेदयति तस्मिन् नैषधिकीं न, यस्मिन् नैषेधिकीं तस्मिन् चर्यां न वेदयतीति । सूक्ष्मसंपराये–दशम- गुणस्थाने क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशचर्याशय्यावधालाभरोगतृणस्पर्शमलप्रज्ञाऽज्ञानरूपाश्चतुर्दश भवन्ति, द्वादश पुनर्वेदयति,

सद्गच्छल- क्षणम् गा. ५२ २० २५ ॥ १५ ॥ २८

अत्र सद्गच्छस्य लक्षणं कथयते

शीतोष्णयोरेकदैकत्वात् चर्याशय्ययोरेकदैकत्वाच्चेति । तथा उपशान्तमोहे–एकादशगुणस्थाने क्षीणमोहे–द्वादशगुणस्थाने छद्मस्थवीतरागे त एव चतुर्दश, यतः सप्तानां चारित्रमोहनीयप्रतिबद्धानां मोहनीयस्य क्षपितत्वेनोपशमितत्त्वेन वा दर्शनमोहनीयप्रतिबद्धस्य एकस्य च तत्रासम्भवादिति पूर्ववत्, द्वादश पुनर्वेदयति ते, सयोग्ययोगिरूपे एकादश परीषहाः संभवन्ति, यथा क्षुत् १ पिपासा २ शीतो ३ ष्ण ४ दंश ५ चर्या ६ वध ७ मल ८ शय्या ९ रोग १० तृणस्पर्श ११ रूपाः, जिने वेद्यस्य संभवात् न यांति, शीतोष्णयोरेकदैकत्वात् चर्याशय्ययोरेकदैकत्वाच्च न च पुनर्वेदयति, धिया राजन्त इति धीराः वज्रस्वामिवत्, नापि स्तब्धा–नाहङ्कारपराः स्कन्धकवत्, नापि लुब्धा–नाहारोपधिपात्रादिगृद्धा धन्यमुनिवत्, न गौरविता–न गौरवत्रिकासक्ता मथुरामङ्गुशिष्यवत्, न विकथाशीला–न विरुद्धकथाकथनस्वभावा हरिकेशमुनिवत् ॥ ५२ ॥

खंते दंते गुत्ते मुत्ते वेरग्गमग्गमल्लीणे । दसविहसामायारीआवस्सगसंजमुज्जुत्ते ॥ ५३ ॥

खंते० ॥ 'क्षान्ताः' क्षमायुक्ता गजसुकुमालवत्, 'दान्ताः' दमितेन्द्रियाः शालिभद्रादिवत्, 'गुप्ताः' नवब्रह्मचर्यगुप्तिमन्तः श्रीस्थूलभद्रवत्, 'मुक्ताः' न लोभयुक्ता जम्बूस्वाम्यादिवत्, 'वैराग्यमार्गमालीनाः' संवेगपथमाश्रिताः अतिमुक्तककुमारकालोदाय्यादिवत्, दशविधसामाचार्याम्–उक्तलक्षणायामुद्युक्ताः, अवश्यं कर्त्तव्यमावश्यकं यद्वा गुणानां आ–समन्ताद्वश्यं करोतीत्यावश्यकं, गुणशून्यमात्मानं आ–समन्ताद् वासयति गुणैरित्यावासकमनुयोगद्वारोक्तलक्षणं तत्रोद्युक्ताः—तत्पराः ॥ ५३ ॥

खरफरुसकक्कसाए अणिट्ठदुट्ठाइ निट्ठुरगिराए । निब्भच्छणनिद्धाडणमाईहिं न जे पउस्संति ॥ ५४ ॥

सङ्गच्छल-क्षणम् गा. ५३

५

१०

१४

प्रत सूत्रांक ॥५४॥

दीप अनुक्रम [५४]

खर० ॥ खरपरुषकर्कशया गिरा अनिष्टदुष्टया गिरा निष्ठुरगिरा निर्भर्त्सननिर्द्धाटनादिभिश्च, मोऽलाक्षणिकः, 'ये' मुनयो 'न प्रद्विष्यन्ति' न प्रद्वेषं यान्ति ते सुसाधवो गणयोग्या इति, तत्र खरा रे मूढ ! रे अपण्डित ! इत्यादिका, परुषा रे प्रमादिन् ! रे कुशील ! रे सामाचारीभञ्जक ! इत्यादिका, कर्कशा रे जिनाज्ञाभञ्जक ! रे उत्सूत्रभाषक ! रे व्रतभञ्जक ! इत्यादिका, अनिष्टा रे पापिष्ठ ! मुखं मा दर्शय, रे निर्दय ! इतो व्रज, रे वीरवचनोल्लङ्घक ! स्वस्थानं कुरु इत्यादिका, दुष्टा रे आचारतस्कर ! रे जिनप्रवचननगरप्राकारच्छिद्रकर्त्तः ! रे जिनागमकोशार्थरत्नचौर ! इत्यादिका, निष्ठुरा रे सूत्रार्थोभयप्रत्यनीक ! रे निह्नवकुशीलसङ्गकर्त्तः ! रे जिनाज्ञारामच्छेदक ! इत्यादिका, निर्भर्त्सनम्–अङ्गुल्यादिना तर्जनं, निर्द्धाटनं–वसतिगणादिभ्यो निष्काशनं, आदिशब्दात्तच्चिन्ताकरणादिकं, यद्वा प्रवाहेणैकार्थिका एते शब्दाः, यद्वाऽन्योऽपि यः सत्परम्परागतोऽर्थः स सङ्ग्राह्य एवेति ॥ ५४ ॥

सङ्गच्छलक्षणम् गा. ५४–५

२०

जे अ न अकित्तिजणए नाजसजणए नाकज्जकारी य । न पवयणुड्डाहकरे कंठग्गयपाणसेसेऽवि ॥ ५५ ॥

जे अ० ॥ 'ये' गणमुनयः नाकीर्त्तिजनकाः नायशोजनकाः, चकारान्नावर्णजनकाः, नाशब्दजनकाः नोऽश्लाघाजनकाः, तत्र सर्वदिग्व्याप्यसाधुवादोऽकीर्त्तिः, अयशो–निन्दनीयतादि, एकदिग्व्याप्यसाधुवादोऽवर्णः, अर्द्धदिग्व्याप्यसाधुवादोऽशब्दः, तत्स्थान एवासाधुवादोऽश्लाघेति, 'नाकार्यकारिणः' नासदनुष्ठानकर्त्तारः 'न प्रवचनोड्डाहकराः' न प्रवचनमालिन्यकर्त्तारः, कण्ठे गतः–प्राप्त आगत इत्यर्थः कण्ठगतः प्राणानां–जीवस्य शेषो यत्र, अधस्तनप्रदेशाकर्षणेन

२५

॥ १६ ॥

२७

बहुप्रदेशबहिःकर्षणेन, एवंविधेऽप्यवसरे ये ईदृग्विधास्ते सुन्दरान्तेवासिनः, यद्वा कण्ठगतः–कण्ठागतः प्राणस्य–बलस्य शेषो यत्र, एवंविधेऽप्यवसरे ये ईदृग्विधास्ते धन्या इति ॥ ५५ ॥

गुरुणा कज्जमकज्जे खरकक्कसदुट्ठनिट्ठुरगिराए । भणिए तहत्ति सीसा भणंति तं गोअमा ! गच्छं ॥ ५६ ॥

गुरु० ॥ 'गुरुणा' स्वाचार्येण कार्यं चाकार्यं च कार्याकार्यं तस्मिन्, मकारोऽलाक्षणिकः, यत्कृत्यं गुरवो जानन्ति शिष्योऽपि जानाति तत्कार्यमुच्यते यत्कृत्यं गुरवो जानन्ति न तु शिष्यः तदकार्यं, अन्यथोत्तमानां किमपि बाह्यान्तरकार्यं विना जल्पनं न संभवतीति, यद्वा कार्यं–सनिमित्तं अकार्यं–प्रधाननिमित्तरहितमिति । 'खरकर्कशदुष्टनिष्ठुरगिरा' पूर्वोक्तशब्दार्थया 'भणिते' कथिते सति 'तहत्ति'त्ति तथेति यथा येन प्रकारेण यूयं वदथ तथा तेन प्रकारेणेति 'शिष्याः' सुविनेयाः 'भणन्ति' कथयन्ति यत्र तं गच्छं हे गौतम ! त्वं जानीहीति, सिंहगिरिगुरुशिष्यवदिति ॥५६॥

दूरुज्झिय पत्ताइसु ममत्तए निप्पिहे सरीरेऽवि । जायमजायाहारे(जत्तयमत्ताहारे) बायालीसेसणाकुसले ॥ ५७ ॥

दूरु० ॥ 'दूरुज्झिय'त्ति प्राकृत्वाद्विभक्तिलोपः दूरतस्त्यक्तं ममत्वं, क्व ?–पात्रादिषु, आदिशब्दाद्वस्तुवसतिश्राद्धनगरग्रामदेशादिषु यैरिति शेषः, तथा 'निःस्पृहाः' ईहारहिता मेघकुमारादिवत् 'शरीरेऽपि' स्ववपुष्यपि, 'यात्रामात्राहारकाः' तत्र यात्रा–संयमगुरुवैयावृत्त्यस्वाध्यायादिरूपा मात्रा तु–तदर्थमेव पुरुषस्त्रीषण्ढानां द्वात्रिंशदष्टाविंशतिचतुर्विंशतिक्रमेण कवलप्रमाणमध्यात्परिमिताहारग्रहणमिति, कवलप्रमाणं च कुक्कुट्यण्डं, कुक्कुट्या अण्डं कुकुट्यण्डं, कुकुटी द्विधा–द्रव्यभावभेदतः, द्रव्यकुकुटी द्विधा–उदरकुकुटी १ गलकुकुटी च २, तत्र साधोरुदरं यावन्मात्रेणाहारेण न न्यूनं नाप्याप्तं

सङ्क्षच्छलक्षणम् गा. ५६–७

५

१०

१४

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ १७ ॥

स आहार एव उदरकुकुटी, उदरपूरकाहार इत्यर्थः, तस्य द्वात्रिंशत्तमो भागोऽण्डकं, तत्प्रमाणं कवलस्य १, गल एव कुकुटी तस्या अन्तरालमण्डकं, अयं भावः–अविकृतास्यस्य पुंसो गलान्तराले यः कवलोऽविलग्नः प्रविशति तत्प्रमाणं कवलस्य, भावकुकुटी तु येनाहारेण भुक्तेन न न्यूनं नाप्यत्याधातं स्यादुदरं धृतिं च समुद्वहति तावत्प्रमाण आहारो भावकुकुटीति २ । यद्वा 'जायमजायाहारे'त्ति जाताजाताहारपारिष्ठापनिकायां कुशलाः–निपुणा इत्यर्थः, तत्राधाकर्मणा लोभाद्गृहीतेन विषमिश्रेण मन्त्रादिसंस्कृतेन दोषेण च जातोच्यते, आचार्यग्लानप्राघूर्णकार्थे दुर्लभद्रव्ये सहसालाभे सत्यधिकग्रहणेऽजातोच्यत इति । अथवा जातो–गुरुग्लानादियोग्य आहार उत्पन्नस्तद्रक्षणे निपुणाः, तत्र वा निःस्पृहाः, अजातो–गुरुग्लानादियोग्य आहारः अनुत्पन्नस्तदुत्पादने कुशला इति । तथा 'द्विचत्वारिंशदेषणाकुशलाः' तत्रैषणा चतुर्धा, कस्याप्येषणेति नामेति नामैषणा १, एषणावतः साध्वादेरियमेषणेति स्थापनेति स्थापनैषणा २, द्रव्यैषणा–सचित्ताचित्तमिश्रद्रव्यभेदात्त्रिधा ३, भावैषणाऽपि गवेषणा १ ग्रहणैषणा २ ग्रासैषणा ३ भेदात्त्रिधा, तत्र गवेषणायामाधाकर्मादिधात्र्यादिद्वात्रिंशद्दोषाः, ग्रहणैषणायां शङ्कितादिदशदोषाः, ग्रासैषणायां संयोजनादिपञ्चदोषा विज्ञेया इति ॥५७॥

तंपि न रूवरसत्थं न य वण्णत्थं न चेव दप्पत्थं । संजमभरवहणत्थं अक्खोवंगं व वहणत्थं ॥ ५८ ॥

तंपि न० ॥ 'तमपि' आहारं न 'रूपरसार्थं' तत्र रूपं–शरीरलावण्यं रसश्च–भोजनास्वादस्तदर्थं न 'न च वर्णार्थं' न च शरीरकान्त्यर्थमित्यर्थः, 'न चैव दर्पार्थं' न चानङ्गवृद्ध्यर्थं भुञ्जीतेति शेषः, किन्तु 'संयमभरवहनार्थं' चारित्रभारवहनार्थं

सद्गच्छलक्षणम् गा. ५८

२०

२५

॥ १७ ॥

२७

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥५८॥

दीप अनुक्रम [५८]

भुञ्जीत, किमिव ?–अक्षोपाङ्गमिव वहनार्थम्, एतदुक्तं भवति–यथाऽभ्यङ्गं शकटाक्षे युक्त्या दीयते न चातिबहु न चाति- स्तोकं भरवहनार्थं साधूनामाहारः ॥ ५८ ॥ तमपि कारणे भुञ्जेऽतः कारणमाह— भोजनकारणानि गा. ५९–६०

वेअण १ वेयावच्चे २ इरिअट्ठाए अ ३ संजमट्ठाए ४। तह पाणवत्तिआए ५ छट्ठं पुण धम्मचिंताए ६ ॥ ५९ ॥

वेअण० ॥ क्षुद्वेदनोपशमनाय भुञ्जे, यतो नास्ति क्षुत्सदृशी वेदना, उक्तञ्च—"पंथसमा नत्थि जरा, दारिद्दसमो परिभवो नत्थि। मरणसमं नत्थि भयं, छुहासमा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥" अतस्तत्प्रशमनार्थं भुञ्जीत १, बुभुक्षितः सन् वैयावृत्त्यं कर्त्तुं न शक्नोति, अतो गुरुग्लानशैक्षादिवैयावृत्त्यकरणाय भुञ्जीत २, 'ईर्यार्थं' ईर्यासमित्यर्थं ३, संयमः–प्रत्युपेक्षणाप्रमार्जनादिलक्षणः साधुव्यापारस्तत्पालनार्थं, बुभुक्षित एनं कर्त्तुं न शक्नोतीतिकृत्वा ४, तथा प्राणा–जीवितं तेषां वृत्त्यर्थं–रक्षार्थं परिपालननिमित्तमित्यर्थः५, षष्ठं पुनर्धर्मचिन्तार्थम्, सूत्रार्थानुचिन्तनादिलक्षणं शुभचित्तप्रणिधानं, एतदपि बुभुक्षितः कर्त्तुं न शक्नोतीतिकृत्वा भुञ्जीतेति शेषः ६ ॥ ५९ ॥

जत्थ य जिट्ठकणिट्ठो जाणिज्जइ जिट्ठवयणबहुमाणो। दिवसेणवि जो जिट्ठो न य हीलिज्जइ स गोअमा! गच्छो॥६०॥

जत्थ य० ॥ यत्र गणे 'ज्येष्ठः' व्रतपर्यायेण वृद्धः 'कनिष्ठः' दीक्षापर्यायेण लघुः, चशब्दान्मध्यमपर्यायोऽपि, ज्ञायते- अयं ज्येष्ठः अयं लघुः अयं मध्यमः इत्येवं प्रकटत्वेन विज्ञायते, कस्मात् ज्ञायते ?–ज्येष्ठवचनबहुमानात्–हे आर्य! हे पूज्य! हे भदन्त! हे पसाउकरी! इत्यादिजल्पनात्, यद्वा ज्येष्ठस्य–पर्यायगुणैर्वृद्धस्य वचनम्–आदेशो ज्येष्ठवचनं तस्य तस्मिन् वा बहुमानं–सन्मानं यत् पूज्यैः प्रतिपादितं तत्तथेत्येवं ज्ञायत इति, तथा यत्र दिवसेनापि यो ज्येष्ठः स न

अत्र भोजनकरणस्य कारणानि कथयते

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥६०॥

दीप अनुक्रम [६०]

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ १८ ॥

हील्यते वचनोल्लङ्घनसम्मुखजल्पनमर्मोद्घाटनादिप्रकारेण चकाराद् यत्र पर्यायेण लघुतरोऽपि गुणवृद्धो न हील्यते वज्रं प्रति सिंहगिरिशिष्यरत्नवृन्दवत् हे गौतम! स गच्छ इति ॥ ६० ॥ अथाऽऽर्याधिकारमाह—

जत्थ य अज्जाकप्पो पाणच्चाएवि रोरदुब्भिक्खे । न य परिभुंजइ सहसा गोयम ! गच्छं तयं भणियं ॥ ६१ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र च गणे आर्याकल्पः—साध्व्यानीतं रोरदुर्भिक्षे प्राणत्यागेऽपि 'सहस'त्ति सिद्धान्तोक्तविधिमकृत्वा न परिभुज्यते, यद्वा यत्र च गणे आर्याकल्पः—साध्व्यानीतमशनादिकमित्यर्थः सहसेत्युत्सर्गमार्गेण न परिभुज्यते, अपवादे तु परिभुज्यते, जङ्घाबलक्षीणश्रीअन्यकापुत्राचार्यादिवत्, हे गौतम! 'गच्छः' गणः 'तयं'ति सः मया भणितः, आर्षत्वादत्र विभक्तिपरिणामः । अस्या गाथाया व्याख्यानमन्यदपि जिनाज्ञापूर्वकं कर्त्तव्यमिति ॥ ६१ ॥ अथोत्सर्गेण जल्पनपरिचयादिकं निवारयन्नाह—

जत्थ य अज्जाहिं समं थेरावि न उल्लवंति गयदसणा । न य झायंति थीणं अंगोवंगाइं तं गच्छं ॥ ६२ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र गणे 'आर्याभिः' साध्वीभिः 'समं' सार्द्धं चकाराद्रण्डागतकान्तादिभिः स्त्रीभिः सार्द्धं च तरुणाः साधव आस्तां स्थविरा अपि 'नोल्लपन्ति' न निष्कारणमालापसंलापादिकं कुर्वन्तीत्यर्थः, स्थविरास्त्रिधा, तत्र षष्टिवर्षजाता जातिस्थविराः १ समवायधराः श्रुतस्थविराः २ विंशतिवर्षपर्यायाः पर्यायस्थविराः, ३ किंभूताः?—गताः—प्रनष्टा दशना—दन्ता येषां ते गतदशनाः, 'न ध्यायन्ति' न सरागदृष्ट्या चिन्तयन्तीत्यर्थः 'स्त्रीणां' नारीणां, कानि?—'अङ्गोपाङ्गानि' तत्र अङ्गान्यष्टौ

भोजनकारणानि गा. ६१–२ २० २५ ॥ १८ ॥ २७

अथ 'आर्या' (साध्वी) अधिकारः वर्णयते

बाहुद्वय २ ऊरुद्वय ४ पृष्ठि ५ शिरो ६ हृदयो ७ दर ८ लक्षणानि, उपाङ्गानि–कर्णनासिकादीनि, चकारान्न विलोकयन्ति कदाचिद् दृष्ट्वाऽपि नान्यस्मिन् वर्णयन्ति स गच्छ इति ॥ ६२ ॥ किञ्च—

वज्जेह अप्पमत्ता अज्जासंसग्गि अग्गिविससरिसं । अज्जाणुचरो साहू लहइ अकित्तिं खु अचिरेण ॥ ६३ ॥

वज्जे० ॥ 'वर्जयत' मुञ्चत 'अप्रमत्ताः' प्रमादवर्जिताः सन्तो यूयं, कं ?–'आर्यासंसर्गं' एकान्तसाध्वीपरिचयादिकमित्यर्थः, किंभूतं ?–'अग्निविषसदृशं' यथाऽग्निना सर्वं भस्मसात्स्यात्तथाऽऽसां संयोगे चारित्रं भस्मसाद्भवति, यथा च तालपुटविषं जीवानां प्राणनाशकरं भवति तथाऽऽसां परिचयश्चारित्रप्राणनाशकरः, कूलवालुकवत् । तथा 'आर्यानुचरः' आर्या–साध्वी तस्या अनुचरः–किङ्करः, कः ?–'साधुः' मुनिः 'लभते' प्राप्नोति 'अकीर्तिं' असाधुवादं यथा अहो साधुत्वं अहो तपोधनत्वं अहो त्यक्तगृहगृहिणीसङ्गत्वं अहो शिवमार्गसाधकत्वं अहो इन्द्रियबाधकत्वमित्याद्यवर्णवादरूपं खु यस्मादर्थे 'अचिरेण' इति स्तोककालेन, अतो हे मुनयः ! आर्यासंसर्गं वर्जयतेति ॥ ६३ ॥

थेरस्स तवस्सिस्स व बहुस्सुअस्स व पमाणभूयस्स । अज्जासंसग्गीए जणजंपणयं हविज्जाहि ॥ ६४ ॥

थेर० ॥ 'स्थविरस्य' वृद्धस्य 'तपस्विनो वा' अष्टमादितपोयुक्तस्य वा 'बहुश्रुतस्य' अधीतबह्वागमस्य वा 'प्रमाणभूतस्य' सर्वजनमान्यस्य एवंविधस्य साधोरपि 'आर्यासंसर्गेण' बहुतमसाध्वीपरिचयेन 'जणजंपणयं'ति लोकमध्येऽपकीर्तिलक्षणं भवेत् यथा एष सुलक्षणो नेति ॥ ६४ ॥

किं पुण तरुणो अबहुस्सुओ अ नयवि हु विगिट्ठतवचरणो । अज्जासंसगीए जणजंपणयं न पाविज्जा ? ॥ ६५ ॥

किं पुण० ॥ किं पुनः 'तरुणः' युवा, किंभूतः ?–'अबहुश्रुतः' आगमपरिज्ञानरहितः, चकारान्न देशादौ मुख्यत्वेन प्रवृत्तः, न चापि हु विकृष्टतपश्चरणो–न दशमादितपःकर्त्ता, एवंविधो मुनिः 'आर्यासंसर्ग्यां' निष्कारणं मुण्ड्या सह विकथा-परिचयादिकरणेन 'जनवचनीयतां' लोकापवादलक्षणां किं न प्राप्नुयात् ?, अपि तु प्राप्नुयादित्यर्थः ॥ ६५ ॥

जइवि सयं थिरचित्तो तहावि संसग्गिलद्धपसराए । अग्गिसमीवे व घयं विलिज्ज चित्तं खु अज्जाए ॥ ६६ ॥

जइ० ॥ यद्यपि 'स्वयं' आत्मना 'स्थिरचित्तः' दृढाध्यवसायः साधुस्तथाऽपि तस्य मुनेः संसर्ग्या–गमनागमनादि-रूपया लब्धः–प्राप्तः प्रसरः–अवसरो घटीद्विघट्यादिवार्त्तालापादिरूपो यया सा तथा तया आर्यया अग्निसमीपे घृतवत् विलीयते रागवद्भवतीत्यर्थः 'चित्तं' साधोः साध्व्यध्यवसानरूपं 'खु' निश्चयेनेति ॥ ६६ ॥

सव्वत्थ इत्थिवग्गंमि अप्पमत्तो सया अवीसत्थो । नित्थरइ बंभचेरं तव्विवरीओ न नित्थरइ ॥ ६७ ॥

सव्व० ॥ 'सर्वत्र' दिवानिशागृहाङ्गणमार्गादिषु 'स्त्रीवर्गे' अनाथरण्डामुण्ड्यादिरामावृन्दे 'अप्रमत्तः' रामाभिः सह निद्राविकथादिप्रमादरहितः सन् 'सदा' सर्वकालं 'अविश्वस्थः (स्तः)' विश्वासरहितो रामासु एवंविधो 'निस्तरति' निरतीचारं पालयतीत्यर्थः, किं ?–'ब्रह्मचर्यं' मैथुनत्यागरूपं, 'तद्विपरीतः' उक्तविपर्यस्तो 'न निस्तरति' न ब्रह्मचर्यं पालयतीत्यर्थः ॥ ६७ ॥

सव्वत्थेसु विमुत्तो साहू सव्वत्थ होइ अप्पवसो । सो होइ अणप्पवसो अज्जाणं अणुचरंतो उ ॥ ६८ ॥

सव्वत्थे० ॥ 'सर्वार्थेषु' सर्वहेयपदार्थेषु 'विमुक्तः' ममतादिरहितः 'साधुः' मोक्षसाधकः 'सर्वत्र' क्षेत्रकालद्रव्यभावादिषु

भवति 'आत्मवशः' न कुत्रापि परवशो भवतीत्यर्थः, 'सः' मुनिर्भवति 'अनात्मवशः' परवशः य आर्याणां 'अनुचरत्वं कुर्वन्' सेवकत्वं निष्पादयन् तिष्ठतीति ॥ ६८ ॥ अत्र दृष्टान्तमाह—

खेलपडिअमप्पाणं न तरइ जह मच्छिआ विमोएउं । अज्जाणुचरो साहू न तरइ अप्पं विमोएउं ॥ ६९ ॥

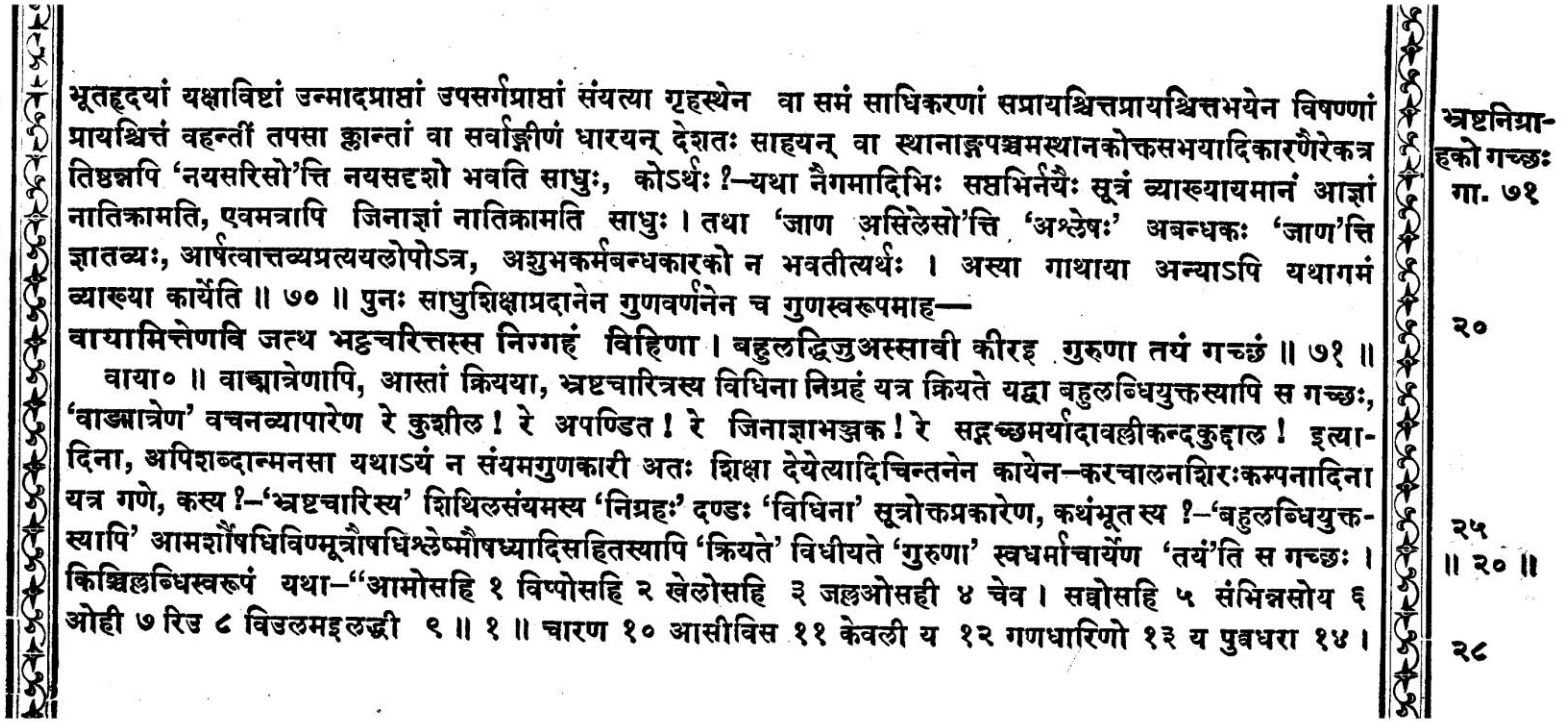
खेल०॥ श्लेष्मपतितमात्मानं 'न तरति' न शक्नोति यथा मक्षिका 'मोचयितुं' पृथक् कर्तुं स्थानान्तरे गन्तुमित्यर्थः एवं 'आर्यानुचरः' साध्वीपाशबद्धपादः साधुः 'न तरति' न शक्नोति 'आत्मानं विमोचयितुं' स्वेच्छया ग्रामादिषु विहर्त्तुमित्यर्थः ॥ ६९ ॥

साहुस्स नत्थि लोए अज्जासरिसा हु बंधणे उवमा । धम्मेण सह ठवंतो नयसरिसो जाण असिलेसो ॥ ७० ॥

साहु० ॥ 'साधोः' मुनेः 'नास्ति' न विद्यते, क्व ?–'लोके' प्राकृतजने 'आर्यासदृशी' साध्वीतुल्या 'हुः' निश्चितं 'बन्धने' पाशलक्षणे 'उपमा' तत्सदृशं वस्त्वित्यर्थः, अपवादापवादमाह—'जाण'त्ति याः साध्वीः संयमभ्रष्टा धर्मेण सह स्थापयन् साधुः 'नयसदृशः' आगमवेदीत्यर्थः 'अश्लेषः' अबन्धको ज्ञातव्य इति । "क्वचिद्द्वितीयादेः" इति प्राकृतसूत्रेण जाणेत्यत्र द्वितीयार्थे षष्ठी । अथवा 'धर्मात्' श्रुतचारित्रात् काश्चिद्भ्रष्टां 'ज्ञात्वा' दृष्ट्वा तत्पार्श्वे गच्छोपदेशपरिचयादिकं कृत्वा 'धर्मेण सह' श्रुतचारित्रलक्षणेन सह स्थापयन् उपलक्षणत्वात् अतीवगहनवृक्षदुर्गे व्याघ्रसिंहादिश्वापददुर्गे म्लेच्छादिभयमनुष्यदुर्गे गर्त्तापाषाणादिविषमस्थाने विषमपर्वते वा प्रस्खलमानां सर्वगात्रैः पतन्तीं वा बाह्वादावङ्गे गृह्णन् सर्वाङ्गीणं वा धारयन् एवमुदकपङ्कादौ अपकसन्तीं अपोह्यमानां वा मष्टचित्तां दीप्तचित्तां लाभादिमदेन परवशी-

आर्यानुचरदोषाः गा. ६२–७०

प्रत सूत्रांक ॥७०॥ दीप अनुक्रम [७०]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः



श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ २० ॥

भूतहृदयां यक्षाविष्टां उन्मादप्राप्तां उपसर्गप्राप्तां संयत्या गृहस्थेन वा समं साधिकरणां सप्रायश्चित्तप्रायश्चित्तभयेन विषण्णां प्रायश्चित्तं वहन्तीं तपसा क्लान्तां वा सर्वाङ्गीणं धारयन् देशतः साहयन् वा स्थानाङ्गपञ्चमस्थानकोक्तसभयादिकारणैरेकत्र तिष्ठन्नपि 'नयसरिसो'त्ति नयसदृशो भवति साधुः, कोऽर्थः ?–यथा नैगमादिभिः सप्तभिर्नयैः सूत्रं व्याख्यायमानं आज्ञां नातिक्रामति, एवमत्रापि जिनाज्ञां नातिक्रामति साधुः । तथा 'जाण असिलेसो'त्ति 'अश्लेषः' अबन्धकः 'जाण'त्ति ज्ञातव्यः, आर्षत्वात्तव्यप्रत्ययलोपोऽत्र, अशुभकर्मबन्धकारको न भवतीत्यर्थः । अस्या गाथाया अन्याऽपि यथागमं व्याख्या कार्येति ॥ ७० ॥ पुनः साधुशिक्षाप्रदानेन गुणवर्णनेन च गुणस्वरूपमाह—

वायामित्तेणवि जत्थ भट्ठचरित्तस्स निग्गहं विहिणा । बहुलद्धिजुअस्सावी कीरइ गुरुणा तयं गच्छं ॥ ७१ ॥

वाया० ॥ वाङ्मात्रेणापि, आस्तां क्रियया, भ्रष्टचारित्रस्य विधिना निग्रहं यत्र क्रियते यद्वा बहुलब्धियुक्तस्यापि स गच्छः, 'वाङ्मात्रेण' वचनव्यापारेण रे कुशील ! रे अपण्डित ! रे जिनाज्ञाभञ्जक ! रे सद्गच्छमर्यादावल्लीकन्दकुद्दाल ! इत्यादिना, अपिशब्दान्मनसा यथाऽयं न संयमगुणकारी अतः शिक्षा देयेत्यादिचिन्तनेन कायेन–करचालनशिरःकम्पनादिना यत्र गणे, कस्य ?–'भ्रष्टचारित्रस्य' शिथिलसंयमस्य 'निग्रहः' दण्डः 'विधिना' सूत्रोक्तप्रकारेण, कथंभूतस्य ?–'बहुलब्धियुक्तस्यापि' आमर्शौषधिविण्मूत्रौषधिश्लेष्मौषध्यादिसहितस्यापि 'क्रियते' विधीयते 'गुरुणा' स्वधर्माचार्येण 'तयं'ति स गच्छः । किञ्चिल्लब्धिस्वरूपं यथा–"आमोसहि १ विप्पोसहि २ खेलोसहि ३ जल्लओसही ४ चेव । सव्वोसहि ५ संभिन्नसोय ६ ओही ७ रिउ ८ विउलमइलद्धी ९ ॥ १ ॥ चारण १० आसीविस ११ केवली य १२ गणधारिणो १३ य पुव्वधरा १४ ।

भ्रष्टनिग्रहको गच्छः गा. ७१

२०

२५

॥ २० ॥

२८

	अथ उत्तम'गच्छ' स्वरुपम् वर्णयते

प्रत सूत्रांक ॥७१॥

दीप अनुक्रम [७१]

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

अरहंत १५ चक्कवट्टी १६ बलदेवा १७ वासुदेवा य १८ ॥ २ ॥ खीरमहुसप्पिआसव १९ कुट्ठयबुद्धी २० पयाणुसारी य २१ । तह बीयबुद्धि २२ तेअग २३ आहारग २४ सीयलेसा य २५ ॥ ३ ॥ वेउविदेहलद्धी २६ अक्खीणमहाणसी २७ पुलाया य २८ । परिणामतवविसेसेण एमाई हुंति लद्धीओ ॥ ४ ॥ भवसिद्धियपुरिसाणं एयाओ २८ हुंति भणिय लद्धीओ । भवसिद्धियमहिलाणवि जत्तिय जायंति तं वुच्छं ॥ ५ ॥ अरिहंत १ चक्कि २ केसव ३ बल ४ संभिन्ने य ५ चारणे ६ पुवा ७ । गणहर ८ पुलाय ९ आहारगं च १० नहु भवियमहिलाणं ॥ ६ ॥ अभवियपुरिसाणं पुण दस पुव्विल्ला उ केवलित्तं च ११ । उज्जुमई १२ विपुलमई १३ तेरस एयाउ न हु हुंति ॥ ७ ॥ अभवियमहिलाणं पुण एयाओ न हुंति भणियलद्धीओ १३ । महुखीरासवलद्धीवि नेव सेसा उ अविरुद्धा ॥ ८ ॥" इति ॥ ७१ ॥

जत्थ य सन्निहिउक्खडआहडमाईण नामगहणेऽवि । पूईकम्मा भीआ आउत्ता कप्पतिप्पेसु ॥ ७२ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र च गणे 'सन्निहि'त्ति आहारमनाहारं च तिलतुषमात्रमपि पानकं वा बिन्दुमात्रमपि तेषां निशास्थापनं संनिधिरुच्यते, संनिधिपरिभोगे रक्षणे च चतुर्गुरुः प्रायश्चित्तं आत्मसंयमविराधना अनवस्थाऽऽज्ञाभङ्गादिदोषाः गृहस्थतुल्यश्चेति, उक्तं च दशवैकालिके–"लोभस्सेसमणुप्फासो, मन्ने अन्नयरामवि । जे सिया सन्निहीकामे, गिही पव्वइए न से ॥ १ ॥" इति । अत्र द्वितीयपदं निशीथचूर्णितो ज्ञेयमिति । 'उक्खड'त्ति औद्देशिकं, तच्चौघविभागभेदाद्विधा, तत्र स्वार्थाग्निज्वालनस्थाल्यारोपणादिके व्यापारे यः कश्चिदागमिष्यति तस्य दानार्थं यत्क्रियते तदोघौद्देशिकं, विभागौद्देशिकं तु–उद्दिष्टकृतकर्मेति मूलभेदत्रयरूपं उद्देशसमुद्देशादेशसमादेशोत्तरभेदेन द्वादशविधं, तत्र स्वार्थमेव निष्पन्नं भिक्षादा-

सन्निध्यादिवर्जको गच्छः गा. ७२

५

१०

१४

नाय यत्प्रकल्पितं तदुद्दिष्टं १, यत्कृतोद्वृत्तं शाल्योदनादि दानाय करम्भः क्रियते तत्कृतं २, यत्कृतोद्वृत्तं मोदकचूर्णादि भूयः पाकगुडक्षेपेण दानाय मोदकाः क्रियन्ते तत्कर्म्म ३, तत्र च ये केचन अवपतन्ति तेभ्यो दातव्यमित्युद्देशः १, पाषण्डिनां दातव्यमिति समुद्देशः २, श्रमणानां–शाक्यादीनामादेशः ३, निर्ग्रन्थानाम्–आर्हतानां समादेश ४ इति । 'आहडमाईण'त्ति स्वपरग्रामादेर्जलस्थलपथेन पादाभ्यां नावादिना गन्त्र्यादिवाहनेन वा साध्वर्थं भक्तपानवस्त्रपात्राद्यानयनमभ्याहृतमुच्यते, तेषां, आदिशब्दात्पूतिव्यतिरिक्तानामन्येषां दोषाणां च, पूतिदोषस्त्वग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, नामग्रहणेऽपि मुनयो भीता भवन्ति । 'पूईकम्म'त्ति आधाकर्मादि षोडशविध उद्गमः, स च सामान्यतो द्विधा–विशोधिकोटि १ रविशोधिकोटिश्च २, तत्राधाकर्म सभेदं १ विभागौद्देशिकस्य द्वादशविधस्यान्त्यं भेदत्रयं कर्मसमुद्देश १ कर्मादेश २ कर्मसमादेश ३–लक्षणं २ पूतिराधाकर्मलेशश्लेषः ३ मिश्रजातं पाषण्डिगृहिमिश्रं साधुगृहिमिश्रं ४, बादरप्राभृतिका गुर्वागमनं ज्ञात्वा विवाहादिलग्नस्याग्रतः पश्चात्करणलक्षणा ५ अध्यवपूरः स्वगृहपाषण्डिमिश्रः स्वगृहसाधुमिश्रः ६, इयमविशोधिकोटिः, अस्याः शुष्कसित्थुनाऽपि पूतिकर्म्म भवेत्, कल्पत्रये तु दत्ते शुद्ध्यति, उद्गमस्य शेषं दोषजालं विशोधिकोटिः, अस्यां मिलितायां यदि विवेकः कर्तुं शक्यते तदा शुद्धिः, नो चेत् कल्पत्रयेणेति । तथा 'आउत्ता कप्पतिप्पेसु'त्ति कल्पत्रेपौ-असंसृष्टनीरादिना स्वस्वगच्छोक्तसमाचारीविशेषौ तयोरायुक्ताः, यद्वा आयुक्ता—उद्यमपराः, कयोः ?–कल्पश्च–पात्रवस्त्रक्षालनलक्षणः त्रेपश्च–अपानादिक्षालनलक्षणः कल्पत्रेपौ तयोः कल्पत्रेपयोः, तत्र कल्पो जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिधा, कथं ?-ओदनमण्डकयवक्षोदकुल्माषराजमाषचपलचपलिकावृत्तचनकसामान्यचनकनिष्पावतुवरीमसूरमुद्गाद्यलेपकृदाहारे गृहीते

पात्रे एको मध्ये कल्पः १ द्वितीयो बहिः २ तृतीयस्तु सर्वत्रेति कल्पत्रयं ३ जघन्यतः १ शाकपेयायवागूकोद्रवौदनराद्धमुद्गदाल्याद्यल्पलेपकृदाहारे गृहीते पात्रे कल्पत्रयं मध्ये तत एक बहिर्मध्ये च तत एकः सर्वत्रेति कल्पपञ्चकं मध्यमतः २ क्षीरदधिक्षीरपेयातैलघृतमुद्गपानकातीवरसाधिके बहुलेपकृदाहारे गृहीते कल्पत्रयं मध्ये ततो द्वौ बहिर्मध्ये ततो द्वौ हस्तमुखपात्रबहिर्मध्ये सर्वत्रेति कल्पसप्तकमुत्कृष्टतः ३, सामान्येन च सर्वत्रापि कल्पसप्तकं देयमिति वृद्धवादः, हस्ते तु मणिबन्धं यावत्कल्पा देया इति। त्रेपः–अपानादिक्षालनविधिः, तथा चोक्तं श्रीनिशीथसूत्रतृतीयचतुर्थोद्देशके–"जे भिक्खू वा भिक्खुणी वा उच्चारपासवणं परिठावेत्ता परं तिण्हं णावापूराणं आयमइ आयमंतं वा साइज्जइ" सूत्रम्। अस्य चूर्णिः–"णावत्ति पसई ताहिं तिहिं आयमियव्वं, अण्णे भणंति–अंजलि पढमणावापूरं तिहा करेति, अवयवे विगिंचइ, बितियं णावापूरं तिहा करेत्ता सर्वावयवान् विसोहेइ, ततियं णावापूरं तिहा करेत्ता तिण्णि कप्पे करेइ, सुद्धं अतो परं जइ तो 'मासलहुं"ति षट्कायवधदोषो बकुशत्वं च, कारणे तु "अतिरित्तेण आयमइ जेण वा निल्लेवं णिग्गंधं भवती"त्यर्थः, तथा कारणे तु सूत्रेणापि कल्पते, उक्तञ्च बृहत्कल्पे–"णो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अण्णमण्णस्स मोयं आइयत्तए वा आयमित्तए वा णण्णत्थ गाढेसु वा रोगायंकेसु" नो कल्पते निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा अन्योऽन्यस्य–परस्परस्य मोकं–मूत्रमापातुं वा आचमितुं वा, किं सर्वथैव ?, नेत्याह–गाढा–अहिविषविशूचिकादयः अगाढाश्च–ज्वरादयो रोगातङ्कास्तेभ्योऽन्यत्र न कल्पते, तेषु कल्पते इत्यर्थः इति, एवंविधाः साधवो यत्र भवन्ति स गच्छः ॥ ७२ ॥

मउए निहुअसहावे हासदवविवज्जिए विगहमुक्के। असमंजसमकरंते गोयरभूमट्ठ विहरंति ॥ ७३ ॥

सन्निध्या. दिवर्जको गच्छः गा. ७२

मउए० ॥ द्रव्यभावभेदान्मृदुका द्विधा, तत्र द्रव्यमृदुका अर्कतूलादिकाः भावमृदुकाः सिद्धान्तयथोक्तकथकाः जिनोक्ते निःशङ्कादिस्वभावा वा 'निभृतस्वभावाः' अपवादापवादागमश्रवणे गुरुणा विद्यामन्त्रादिरहस्ये कथितेऽपि गम्भीरस्वभावाः गुर्वादिना ताडिता अपि गुरुकुलावासे निश्चलचित्ता वा 'हास्यद्रवविवर्जिताः' तत्र हास्यं–सामान्येन हसनं द्रवः–परोपहासः, यद्वा हास्यं–दन्तोद्घाटनादिना हसनं द्रवः–कर्करादिना क्रीडादिकरणं 'विगहमुक्के' विकथाविमुक्ताः 'असमञ्जसं' गुर्वाज्ञाभङ्गाद्यन्यायमकुर्वन्तः गोरिव चरणं गोचरस्तस्य भूमिर्गोचरभूमिस्तदर्थं विहरन्ति, अयं भावः–ज्ञानादिप्रयोजने भ्रमन्ति न निष्प्रयोजनमिति । यद्वा गोचरभूमिः–अभिग्रहस्य द्वितीयो भेदस्तस्याष्टौ भेदास्तदर्थं विचरन्ति, उपलक्षणादन्येऽपि ग्राह्याः । स चाभिग्रहो द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाच्चतुर्द्धा, तत्र लेपकृतं जगारिप्रमुखमलेपकृतं वा वल्लादिकं द्रव्यमहं ग्रहीष्यामि, अमुकेन वा दर्वीकुन्तादिना दीयमानमहं ग्रहीष्येऽयं द्रव्याभिग्रहः १ क्षेत्राभिग्रहेऽष्टौ गोचरभूमयो, यथा यस्यामेकां दिशमभिगृह्योपाश्रयान्निर्गतः प्राञ्जलेनैव पथा समश्रेणिव्यवस्थितगृहपङ्क्तौ भिक्षार्थं परिभ्रमन् तावद् याति यावत्पङ्क्तौ चरमगृहं, ततो भिक्षामगृह्णन्नेवापर्याप्तेऽपि प्राञ्जलयैव गत्या प्रतिनिवर्त्तते सा ऋज्वी १, यत्र पुनरेकस्यां गृहपङ्क्तौ परिपाट्या भिक्षमाणः क्षेत्रपर्यन्तं गत्वा प्रत्यागच्छन् पुनर्द्वितीयस्यां गृहपङ्क्तौ भिक्षामटति सा गत्वाप्रत्यागतिका २, यस्यां तु वामगृहादक्षिणगृहे दक्षिणगृहाच्च वामगृहे भिक्षां पर्यटति सा गोमूत्रिका ३, यस्यां तु त्रिचतुरादीनि गृहाणि विमुच्याग्रतः पर्यटति सा पतङ्गवीथिका ४, यस्यां तु साधुः क्षेत्रं पेटावच्चतुरस्रं विभज्य मध्यवर्त्तीनि च गृहाणि मुक्त्वा चतसृष्वपि दिक्षु समश्रेण्या भिक्षामटति सा पेटा ५, अर्द्धपेटाऽप्येवमेव नवरमर्द्धपेटासदृशसंस्थानयोर्दिगूद्वयसं-

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥७३॥

दीप अनुक्रम [७३]

बद्धयोर्गृहश्रेण्योरत्र पर्यटति, ६ तथा शम्बूकः–शङ्खस्तद्वत् या वीथिः सा शम्बूका, सा द्वेधा–यस्यां क्षेत्रमध्यभागात् शङ्खावर्त्तया परिभ्रमणभङ्ग्या भिक्षां गृह्णन् क्षेत्रबहिर्भागमागच्छति साऽभ्यन्तरशम्बूका ७, यस्यां तु क्षेत्रबहिर्भागात्तथैव भिक्षामटन् मध्यभागमायाति सा बहिःशम्बूका ८, तथा श्रीवीरस्योदुम्बरविषयोऽन्योऽपि स्वपरग्रामे गृहसङ्ख्याविषयः क्षेत्राभिग्रहः २, अमुकवेलायां मया भिक्षार्थं गन्तव्यमिति कालाभिग्रहः ३, तथा गायन् रुदन् अपसरणं कुर्वन् संमुखमागच्छन् पराङ्मुखः अलङ्कृतोऽनलङ्कृतः पुरुषो यदि दास्यति तदा मया ग्राह्यमित्ययं भावाभिग्रहः ४ इति ॥ ७३ ॥

मुणिणं नाणाभिग्गह दुक्करपच्छित्तमणुचरंताणं । जायइ चित्तचमक्कं देविंदाणंपि तं गच्छं ॥ ७४ ॥

मुणिणं० ॥ 'मुनीन्' साधून् 'नानाऽभिग्रहं' पूर्वोक्तलक्षणं दुष्करप्रायश्चित्तं चानुचरतो दृष्ट्वेति गम्यते 'जायते' उत्पद्यते चित्ते–मनसि चमत्कारः–आश्चर्यं चित्तचमत्कारः, केषां ?–देवेन्द्राणामपि यत्रैवंविधा मुनयो भवन्ति स गच्छः । तत्र प्रायश्चित्तं दशधा–आहारादिग्रहणोच्चारस्वाध्यायभूमिचैत्ययतिवन्दनार्थं पीठफलकप्रत्यर्पणार्थं कुलगणसङ्घादिकार्यार्थं च हस्तशताद्बहिर्निर्गमे आलोचना प्रायश्चित्तं भवति, आलोचना च गुरोः पुरतः प्रकटीकरणं तेनैव शुद्धिः १, समितिगुप्तिप्रमादे गुर्वाशातनायां विनयभङ्गे इच्छाकारादिसामाचार्यकरणे लघुमृषावादादत्तादानमूर्च्छासु अविधिनाऽऽवासादिकरणे कन्दर्पहास्यविकथाकषायविषयानुषङ्गादिषु प्रतिक्रमणं प्रायश्चित्तं मिथ्यादुष्कृतं, तेनैव शुध्यति न गुरुसमक्षमालोच्यते इति भावः २, सहसाऽनाभोगेन वा संभ्रमभयादेर्वा सर्वव्रतातिचारेषु उत्तरगुणातीचारेषु वा दुश्चिन्तितादिषु कृतेषु वा मिश्रं प्रायश्चित्तं, यद् गुरोः पुर आलोच्य तदादिष्टं मिथ्यादुष्कृतं दत्त इति भावः ३, पिण्डोपधिशय्यादिकेऽशुद्धे ज्ञाते यद्वा

आलोचनादिकारी गच्छः गा. ७४

५

१०

१४

कालातिक्रान्ते क्षेत्रातिक्रान्ते अनुद्गतेऽस्तमिते वा गृहीते कारणगृहीते उद्धरिते वा भक्तादिके विवेकः प्रायश्चित्तं, त्यजन् शुद्ध इत्यर्थः ५, नौनदीसन्तारसावद्यस्वप्नादिषु कायोत्सर्गः प्रायश्चित्तं ४, पृथ्व्यादीनां संघट्टादौ तपः प्रायश्चित्तं ६, यः षण्मासक्षमकोऽन्यो वा विकृष्टतपःकरणसमर्थस्तपसा गर्वितो भवति यथा किं ममानेन प्रभूतेनापि तपसा क्रियत इति तपःकरणासमर्थो वा ग्लानाऽसहबालवृद्धादिः तथाविधतपःश्रद्धानरहितो वा निष्कारणतोऽपवादरुचिर्वा भवति तस्य छेदः प्रायश्चित्तं, अहोरात्रपञ्चकदशकादिक्रमेण पर्यायच्छेदः क्रियत इति भावः ७, आकुट्या पञ्चेन्द्रियवधे दर्पेण मैथुने उत्सन्नविहारे इत्यादौ मूलं प्रायश्चित्तं, पुनर्व्रतारोपणमिति भावः, भिक्षोर्नवमदशमप्रायश्चित्तापत्तावपि मूलमेव दीयते ८, स्वपक्षे परपक्षे वा निरपेक्षप्रहारिणि करादिघातके वा अर्थादाने इत्यादौ अनवस्थाप्यार्हं प्रायश्चित्तं, यावदुत्कृष्टं तपो नाचीर्णं तावद् व्रतेषु न स्थाप्यते पश्चात्तु स्थाप्यत इति भावः, एतत्प्रायश्चित्तमुपाध्यायस्यैव दीयते ९, तीर्थकरादीनां बहुश आशातनाकारिणि नृपघातके नृपाग्रमहिषीप्रतिसेवके स्वपरपक्षकषायविषयप्रदुष्टे स्त्यानर्द्धिनिद्रावति पाराञ्चिकप्रायश्चित्तं, स त्वव्यक्तलिङ्गधारी जिनकल्पिवत् क्षेत्राद्बहिः स्थाप्यते द्वादश वर्षाणि, यदि प्रभावनां करोति तदा शीघ्रमेव प्रवेश्यते गच्छे शुद्धत्वात्, इदं च प्रायश्चित्तमाचार्यस्यैव दीयते १०, तत्रानवस्थाप्यस्तपःपाराञ्चितकश्च प्रथमसंहनन-चतुर्दशपूर्वधरे गतौ, शेषाः पुनर्लिङ्गक्षेत्रकालानवस्थाप्यपाराञ्चिता यावत्तीर्थं तावद्भविष्यन्तीति ॥ ७४ ॥ अथ जीवरक्षादिद्वारेण गच्छस्वरूपमाह—

पुढविदगअगणिमारुअ वाउवणस्सइतसाण विविहाणं । मरणंतेऽवि न पीडा कीरइ मणसा तयं गच्छं ॥७५॥

पुढ० ॥ पृथ्वीदकाग्निमारुतानां वाशब्द एषां भेदसूचकः तुशब्दस्तु यतनासूचकः, वनस्पतित्रसाणां विविधानां मनसाऽपि मरणान्तेऽपि यत्राबाधा न क्रियते स गच्छः । तत्र पृथ्वीकायस्त्रिधा–सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्, सचित्तो द्विधा–निश्चयव्यवहाराभ्यां, रत्नशर्कराप्रभृतीनां महापर्वतानां हिमवदादीनां च बहुमध्ये यः स निश्चयतः सचित्तः १, शेषोऽरण्यादौ पृथ्वीकायः स व्यवहारसचित्तः, उदुम्बरादिक्षीरद्रुमाणामधः पथि च मिश्रः, हलकृष्टो यः स तत्क्षणादेवार्द्धोऽशुष्कः क्वचिन्मिश्रः २, शीतोष्णक्षारक्षत्राग्निलवणौषधकाञ्जिकस्नेहशस्त्रैरभिहतोऽचित्तः ३ । तथाऽप्कायोऽपि त्रिधा, घनोदधिघनवलयकरकाः समुद्रमध्ये द्रहमध्ये च यः स निश्चयतः सचित्तः, शेषोऽगडादीनां व्यवहारतः सचित्तः १, अनुद्वृत्ते त्रिदण्डे मिश्रं वर्षे पतितमात्रं च मिश्रं चाउलोदकं यावद्बहु प्रसन्नं निर्मलं न स्यात्तावन्मिश्रं २, बहुप्रसन्ने त्वचित्तमेवेति ३। तथेष्टकापाकादिमध्यगो विद्युदादिकश्च नैश्चयिकः अङ्गारादिको व्यावहारिकः सचित्तः १, मुर्मुरादिको मिश्रः २, ओदनव्यञ्जनाचाम्लावश्रवणादिकोऽचित्ताग्निकायः ३ । तथा घनतनुवाता निश्चयतः सचित्ताः, अतिहिमपाते यो वायुः अतिदुर्दिने च स नैश्चयिकः सचित्तः, प्राच्यादिवायुर्व्यवहारतः सचित्तः, क्षेत्रतो वायुभृतो दृतिर्जले एकहस्तशतगतश्चेदचित्तः, द्वितीयहस्तशतप्रारम्भे मिश्रः, तृतीयहस्तशतप्रारम्भे सचित्तः, कालतः वायुपूरितो वस्तिः स्निग्धे उत्कृष्टमध्यमजघन्ये त्रिविधेऽपि काले एकद्वित्रिपौरुषीभिर्द्वित्रिचतुःपौरुषीभिस्त्रिचतुःपञ्चपौरुषीभिश्च यथाक्रममचित्तः मिश्रः सचित्तः स्यात्, रूक्षे त्रिविधेऽपि काले एकद्वित्रिभिर्द्वित्रिचतुर्भिस्त्रिचतुःपञ्चभिर्दिनैर्यथाक्रममचित्तः मिश्रः सचित्तः स्यात् । तथा सर्व एवानन्तवनस्पतिकायो निश्चयतः सचित्तः शेषः प्रत्येकवनस्पतिर्व्यवहारतः सचित्तः १, प्रम्लानफलकुसुमपर्णानि मिश्राणि, लोष्टस्य मिश्र-

सचित्तादि पृथ्व्यादि-यतनाकारी गच्छः गा. ७५ ५ १० १४

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ २४ ॥

कालो यथा–"पणदिण मीसो लोट्टो अचालिओ सावणे य भद्दवए १। चउ आसोए कत्तिय २ मगसिरपोसेसु तिन्नि दिणा ३ ॥ १ ॥ पण पहर माहफग्गुणि ४ पहरा चत्तारि चित्तवेसाहा ५। जिट्ठासाढे तिपहर ६ अंतमुहुत्तं च चालियओ ॥ २ ॥" द्वीन्द्रियाः सकलजीवप्रदेशवन्तः सचित्ताः, विपर्यायादचित्ताः, जीवन्मृता एकत्र संमिलिता मिश्राः, एवं त्रीन्द्रियादयः । यतना यथा पृथिव्युदकयोर्गमने प्राप्ते पृथिव्यां गम्यं उदके पृथ्वीत्रसादिसद्भावात् १, पृथिवीवनस्पत्योः पृथिव्यां गम्यं न वनस्पतौ तद्दोषस्यापि संभवात् २, पृथिवीत्रसयोस्त्रसरहिते विरलत्रसे वा गम्यं निरन्तरे तु पृथिव्यामेव ३, जलवनस्पतिकाययोर्वनस्पतिना गम्यं उदके नियमाद्वनस्पतिसद्भावात् ४, इत्यादि ॥ ७५ ॥

खज्जूरिपत्तमुंजेण, जो पमज्जे उवस्सयं । नो दया तस्स जीवेसु, सम्मं जाणाहि गोयमा ! ॥ ७६ ॥

खज्जूरि०॥ खर्जूरपत्रमयप्रमार्जन्या मुञ्जमयबहुकर्या वा 'यः' साधुः उपाश्रीयते–भज्यते शीतादित्राणार्थं यः स उपाश्रयस्तमुपाश्रयं प्रमार्जयति तस्य मुनेर्जीवेषु 'दया' घृणा नास्ति हे गौतम! त्वं सम्यग् जानीहीति ॥ ७६ ॥

जत्थ य बाहिरपाणिअ बिंदूमित्तंपि गिम्हमाईसु । तण्हासोसिअपाणा मरणेऽवि मुणी न गिण्हंति ॥ ७७ ॥

जत्थ य०॥ हे गौतम! यत्र च गच्छे 'बाह्यपानीयं' तटाककूपवाप्रीनद्यादिसचित्तजलं 'बिन्दुमात्रमपि' जलकणमात्रकमपि, क ?–ग्रीष्मादिषु कालेषु, आदिशब्दाच्छीतवर्षाकालयोः, तृष्णया–द्वितीयपरीषहेण शोषिता–ग्लानिं प्रापिताः प्राणाः–उच्छ्वासादयो येषां ते तृष्णाशोषितप्राणाः प्राणान्तेऽपि 'मुनयः' साधवो न गृह्णन्ति स गच्छ इति खुड्डुकवत् ॥ ७७ ॥

इच्छिज्जइ जत्थ सया बीयपएणावि फासुअं उदयं । आगमविहिणा निउणं गोअम! गच्छं तयं भणियं ॥ ७८ ॥

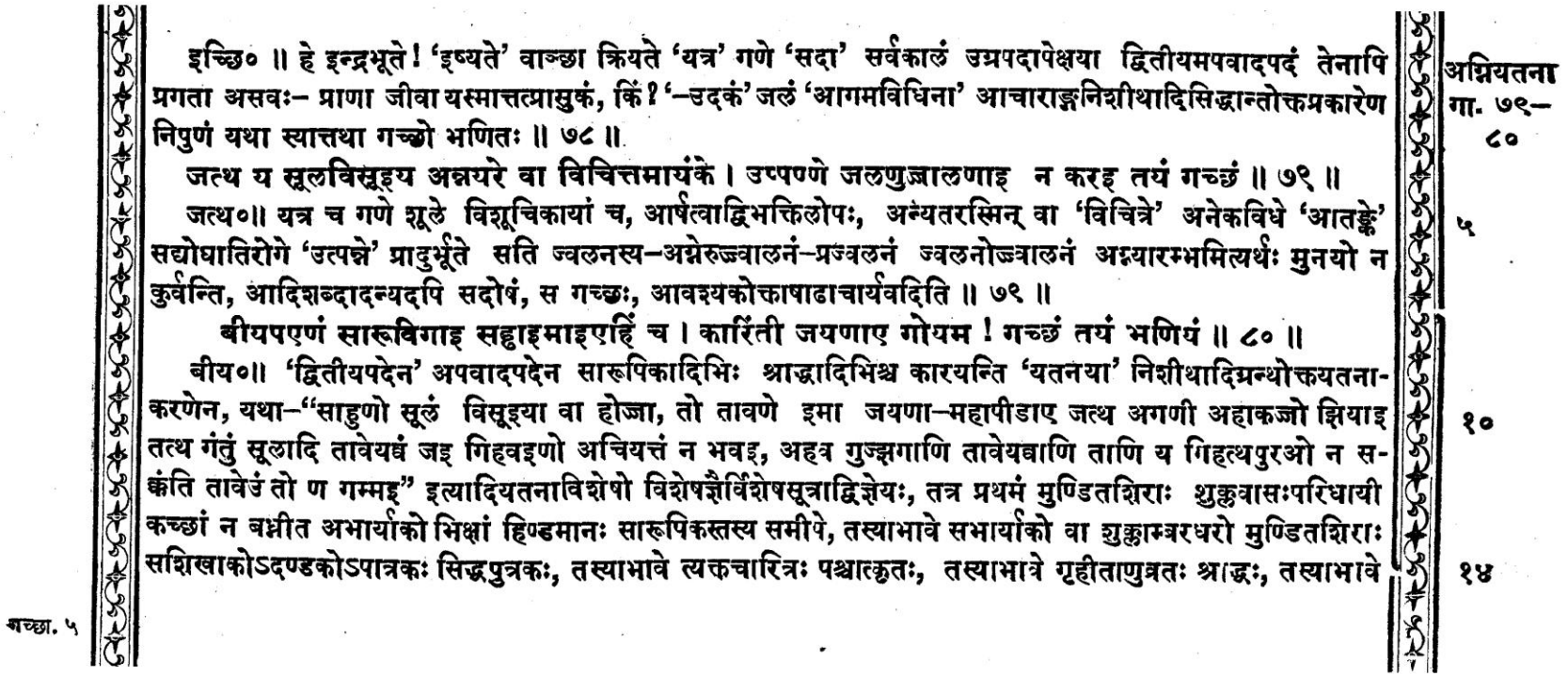
दयावान् बाह्यजल त्यागी च गच्छः गा. ७६–७८

२०

२५

॥ २४ ॥

२८



इच्छि० ॥ हे इन्द्रभूते! 'इष्यते' वाञ्छा क्रियते 'यत्र' गणे 'सदा' सर्वकालं उग्रपदापेक्षया द्वितीयमपवादपदं तेनापि प्रगता असवः– प्राणा जीवा यस्मात्तत्प्रासुकं, किं? '–उदकं' जलं 'आगमविधिना' आचाराङ्गनिशीथादिसिद्धान्तोक्तप्रकारेण निपुणं यथा स्यात्तथा गच्छो भणितः ॥ ७८ ॥

जत्थ य सूलविसूइय अन्नयरे वा विचित्तमायंके । उप्पण्णे जलणुज्जालणाइ न करइ तयं गच्छं ॥ ७९ ॥

जत्थ०॥ यत्र च गणे शूले विशूचिकायां च, आर्षत्वाद्विभक्तिलोपः, अन्यतरस्मिन् वा 'विचित्रे' अनेकविधे 'आतङ्के' सद्योघातिरोगे 'उत्पन्ने' प्रादुर्भूते सति ज्वलनस्य–अग्नेरुज्ज्वालनं–प्रज्वलनं ज्वलनोज्ज्वालनं अग्न्यारम्भमित्यर्थः मुनयो न कुर्वन्ति, आदिशब्दादन्यदपि सदोषं, स गच्छः, आवश्यकोक्ताषाढाचार्यवदिति ॥ ७९ ॥

बीयपएणं सारूविगाइ सड्ढाइमाइएहिं च । कारिंती जयणाए गोयम ! गच्छं तयं भणियं ॥ ८० ॥

बीय०॥ 'द्वितीयपदेन' अपवादपदेन सारूपिकादिभिः श्राद्धादिभिश्च कारयन्ति 'यतनया' निशीथादिग्रन्थोक्तयतना-करणेन, यथा–"साहुणो सूलं विसूइया वा होज्जा, तो तावणे इमा जयणा–महापीडाए जत्थ अगणी अहाकज्जो झियाइ तत्थ गंतुं सूलादि तावेयव्वं जइ गिहवइणो अचियत्तं न भवइ, अहव गुज्झगाणि तावेयव्वाणि ताणि य गिहत्थपुरओ न सक्कंति तावेउं तो ण गम्मइ" इत्यादियतनाविशेषो विशेषज्ञैर्विशेषसूत्राद्विज्ञेयः, तत्र प्रथमं मुण्डितशिराः शुक्लवासःपरिधायी कच्छां न बध्नीत अभार्याको भिक्षां हिण्डमानः सारूपिकस्तस्य समीपे, तस्याभावे सभार्याको वा शुक्लाम्बरधरो मुण्डितशिराः सशिखाकोऽदण्डकोऽपात्रकः सिद्धपुत्रकः, तस्याभावे त्यक्तचारित्रः पश्चात्कृतः, तस्याभावे गृहीताणुव्रतः श्राद्धः, तस्याभावे

गच्छा. ५

अग्नियतना गा. ७९–८०

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ २५ ॥

भद्रकान्यतीर्थिकस्तस्य समीपे कारयन्त्यग्नियतनां यत्र हे इन्द्रभूते! 'तयं'ति स गच्छो भणितो मयेति ॥ ८० ॥

पुप्फाणं बीआणं तयमाईणं च विविहदव्वाणं। संघट्टणपरिआवण जत्थ न कुज्जा तयं गच्छं ॥ ८१ ॥

पुप्फाणं०॥ पुष्पाणि चतुर्विधानि, जलजानि १ स्थलजानि २, तत्र जलजानि सहस्रपत्रादीनि १ स्थलजानि–कोरण्टकादीनि २, तान्यपि प्रत्येकं द्विविधानि–वृन्तबद्धानि–अतिमुक्तकादीनि ३ नालबद्धानि च–जातिपुष्पप्रभृतीनि ४, तत्र यानि नालबद्धानि तानि सर्वाणि सङ्ख्येयजीवानि, यानि तु वृन्तबद्धानि तान्यसङ्ख्येयजीवानि, स्नुह्यादीनां पुष्पाणि अनन्तजीवात्मकानि, तेषां पुष्पाणां, तथा बीजानि–शालीगोधूमयवबदरादीनि तेषां बीजानां त्वगादीनां च, आदिशब्दात्तृणमूलपत्राङ्कुरफलादीनां, विविधसजीवद्रव्याणां संघट्टनं–स्पर्शनं परितापनं–सर्वतः पीडनं यत्र न क्रियते स गच्छः ॥ ८१ ॥

हासं खेड्डा कंदप्प नाहियवायं न कीरए जत्थ। धावण डेवण लंघण ममकाराऽवणउच्चरणं ॥ ८२ ॥

हासं०॥'हास्यं' सामान्येन हसनं वक्रोक्त्या हसनं वा'खेड्डा'इति क्रीडा बालकवद्गोलकादिना रमणमित्यर्थः,क्रीडा वाऽन्ताक्षरिका प्रहेलिकादानादिरूपा, 'कंदप्प'त्ति कन्दर्पभावना, उपलक्षणत्वात् किल्बिषिका२भियोगिका३ऽऽसुरिक४मोहभावनाः ५, तत्र मायया परविप्रतारणवचनं वाऽदृष्टहासहसनं अभूतालापाश्च गुर्वादिनाऽपि सह निष्ठुरवक्रोक्त्यादिरूपाः कामकथा कामोपदेशप्रशंसा कायचेष्टा वाक्चेष्टा परविस्मापकविविधोल्लापाः तत्कन्दर्पभावना १, सातरसर्द्धिहेतवे यन्मन्त्रयोगभूतिकर्मादिकरणं तदाभियोगिकभावना २, यत् श्रुतज्ञानादेः केवलिनां धर्माचार्यस्य सङ्घस्य साधूनां च निन्दाकरणं तत्किल्बिषिकभावना ३, यन्निरन्तरक्रोधप्रसरः, यच्च पुष्टालम्बनं विनाऽतीतादिनिमित्तकथनं तदासुरीभावना ४, यदात्मवधार्थं

संघट्टहास्यादिवर्जनं च गा. ८१–८२ २० २५ ॥ २५ ॥ २८

शस्त्रग्रहणं विषभक्षणं भस्मीकरणं जलप्रवेशनं भृगुपातादिकरणं कारणं विना तन्मोहभावना ५। 'नाहियवायं'ति नास्तिकवादः,यथा नास्ति जीवः नास्ति परलोकः नास्ति पुण्यं नास्ति पापं इत्यादिकं 'नाहियवायं'ति मायया परविप्रतारणवचनं वा 'न क्रियते' न विधीयते साधुभिर्यत्र गणे, तथा 'धावनं' सामान्येन वक्रगत्या गमनं, यद्वा 'धावनं' अकाले कारणं विना वर्षाकल्पादिक्षालनं 'डेवनं' वेगेनाश्ववद्गमनं कोशिकतापसवत्, 'लङ्घनं'वाहादिकोल्लङ्घनं अर्हन्मित्रसाधुवत्, यद्वा 'लङ्घनं' परस्परकलहेन क्रोधादिना श्राद्धोपरि वाऽन्नपानादिमोचनं,'ममकारः' ममताकरणं वस्त्रपात्रोपाश्रयश्राद्धादिषु 'अवर्णोच्चारणं' अवर्णवादकथनमर्हदादीनामिति ॥ ८२ ॥

जत्थित्थीकरकरिसं अंतरिअं कारणेऽवि उप्पन्ने । दिट्ठीविसदित्तग्गीविसं व वज्जिज्जए गच्छे ॥ ८३ ॥

जत्थित्थी०॥ यत्र गणे 'स्त्रीकरस्पर्शं' साध्वीहस्तसङ्घट्टनं, उपलक्षणत्वात्पादादिसंट्टनं 'अंतरिअ'मिति विना 'कारणे'त्ति कारणं, अत्र द्वितीयार्थे सप्तमी,कण्टकरोगोन्मत्तादिलक्षणं, 'अपि' समुच्चये, किंभूतं कारणं ?–'उत्पन्नं' संजातं,दृष्टिविषसर्पदीप्ताग्निविषमिव वर्जयेत् स गच्छः, यद्वा यत्र स्त्रीकरस्पर्शं–गृहस्थरामाकरपादादिसङ्घट्टनं 'अन्तरे' वस्त्रादिव्यवधाने, अत्र प्राकृतत्वाद्विभक्तिपरिणामः, कारणे उत्पन्नेऽपि दृष्टिविषसर्पदीप्ताग्निविषमिव वर्जयेत् स गच्छ इति ॥ ८३ ॥

बालाए वुड्ढाए नत्तुअदुहिआइ अहव भइणीए । न य कीरइ तणुफरिसं गोयम ! गच्छं तयं भणियं ॥ ८४ ॥

बालाए०॥'बालायाः' अप्राप्तयौवनायाः 'वृद्धायाः' स्थविरायाः उपलक्षणत्वान्मध्यमायाः एवंविधायाः 'नप्तृकायाः' सुतसुतायाः 'दुहितृकायाः' सुतासुतायाः अथवा 'भगिन्याः' स्वस्रीयायाः उपलक्षणत्वान्मातुः पुत्र्याः कलत्रस्येत्यादिग्रहणं

स्त्रीस्पर्शवर्जनम् गा. ८३–८४

५

१०

१४

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ २६ ॥

'तनुस्पर्शः' अङ्गस्पर्शो न च क्रियते हे इन्द्रभूते! स गच्छः। अत्र सूत्रे स्पर्शनिषेध उक्तः, एवमन्ये शब्दादयोऽपि त्याज्याः, यतः पुरुषस्पर्शेन पुरुषस्य मोहोदयो भवति न वा, यदि भवेत्तदा मन्दो न स्त्रीस्पर्शवदुत्कटः, स्त्रीस्पर्शेन पुनः पुरुषस्य नियमाद्भवति मोहोदय उत्कटः १। एवं स्त्रियाः स्त्रीस्पर्शे सति भजना, स्त्रियाः पुरुषस्पर्शेन नियमान्मोहोदयः २। तथा पुरुषस्य पुरुषशब्दं श्रुत्वा भजना, पुरुषस्येष्टे स्त्रीशब्दे श्रुतेऽवश्यं मोहोदयः ३। एवं स्त्रिया अपि भावनीयम् ४। तथैवमिष्टे रूपेऽपि जीवसहगते चित्रकर्मादिप्रतिमायां वा भाव्यम्। स्पर्शे उदाहरणानि यथा–"आणंदपुरं नगरं जितारी राया, वीसत्था भारिया, तस्स पुत्तो अणंगो नाम, बालत्ते अच्छिरोगेण गहिओ निच्चं रुयंतो अच्छइ, अन्नया जणणीए निगिन्ठियाए अहाभावेण जाणूरुअंतरे छोढुं उवगूढिओ, दोऽवि तेसिं गुज्झा परोप्परं समफिडिया, तहेव तुण्हिको ठिओ, लद्धोवाओ, रूयंतं पुणो पुणो तहेव करेइ ठायइ रुयंतो, पवड्ढमाणो तत्थेव गिद्धो मोत्तुं पियं विलपंतीं, पिता से मओ, सो रज्जे ठिओ, तहावि तं मायरं परिभुंजइ, सचिवाईहिं बुज्झमाणोवि णो ठिओत्ति १॥ तथा–"एगो वणिओ, तस्स महिला अतीव इट्ठा,सो वाणिज्जेण गंतुकामो तं आपुच्छइ,तीए भणियं–अहंपि गच्छामि, तेण सा नीया, सा गुव्विणी, समुद्दमज्झे विणट्ठं पवहणं, सा फलगं विलग्गा अंतरदीवे लग्गा, तत्थेव पसूया दारगं,स दारगो संवुड्ढो, सा तत्थेव संपलग्गा, बहुणा कालेण अन्नपवहणे दुरुहित्ता सणगरमागया, तीए वुग्गाहिओ सो–मा लोगवुत्तेण अहं जणणित्तिकांउ परिच्चइयव्वा, स लोगेण भण्णइ–अगम्मगमणं मा करेहि, परिच्चयाहि, तहावि णो परिच्चयतित्ति २॥ तथा–"वासुदेवज्येष्ठभ्रातृजराकुमारपुत्रजितशत्रुराज्ञः शशकभशकपुत्रौ, तयोर्भगिनी देवाङ्गनातुल्या यौवनं प्राप्ता सुकुमालिका, अशिवेन सर्वकुलवंशे प्रक्षीणे

गच्छे स्त्री-स्पर्शवर्जनं

२०

२५

॥ २६ ॥

२८

प्रत सूत्रांक ॥८४॥

दीप अनुक्रम [८४]

ते त्रयोऽपि कुमारत्वे प्रव्रजिताः, सुकुमालिकाऽतिरूपतया न भिक्षाद्यर्थं गन्तुं शक्नोति,तरुणाः पृष्ठत आगच्छन्ति,तन्निमित्त - मुपाश्रयेऽप्यागच्छन्ति,गणिन्या गुरोः कथितं,तदा गुरुणा स्वभ्रातरौ रक्षार्थं भिन्नोपाश्रये तत्पार्श्वे मुक्तौ, तौ सहस्रयोधिनौ, तयोरेको भिक्षां हिण्डति अन्यस्तां रक्षति, एवं बहुकाले गते सति साधुपीडां दृष्ट्वा तयाऽनशनं कृतं, बहुभिर्दिनैः क्षीणा मूर्छां गता, मृतेतिकृत्वा एकेन सा गृहीता, द्वितीयेन तस्या उपकरणं गृहीतं, सा मार्गे शीतलवातेन गतमूर्छा भ्रातृस्पर्शेन सवेदा जाता, तथाऽपि मौनेन स्थिता, ताभ्यां परिष्ठापिता, तयोर्गतयोः सा उत्थिता, आसन्नं व्रजता सार्थवाहेन गृहीता, स्वमहिला कृता, कालेन भिक्षार्थमागताभ्यां भ्रातृभ्यां दृष्टा, ससंभ्रममुत्थिता दत्ता भिक्षा, तथाऽपि मुनी तां निरीक्षमाणौ तिष्ठतः, तयोक्तं–किं निरीक्षेथः ?, तौ भणतः–अस्मद्भगिनी तव सदृक्षाऽभूत् , किन्तु सा मृता, अन्यथा न प्रत्यय उत्पद्यते आवयोः, तयोक्तं–सत्यं जानीथः, अहमेव सा, तया सर्वं पूर्वस्वरूपं कथितं, ताभ्यां सा वयःपरिणता सार्थवाहान्मोचिता दीक्षिता आलोच्य स्वर्गतेति ॥ ८४ ॥ किञ्च—

स्त्रीस्पर्श-वर्जनम् गा. ८५

जत्थित्थीकरफरिसं लिंगी अरिहावि सयमवि करिज्जा । तं निच्छयओ गोयम ! जाणिज्जा मूलगुणभट्ठं ॥ ८५ ॥

जत्थित्थी०॥ यत्र गणे स्त्रीकरस्पर्शं 'लिङ्गी' मुनिः, किंभूतः ?–'अर्हन्नपि' पूजादियोग्योऽपि स्वयमपि कुर्यात् तं गच्छं निश्चयतो हे गौतम ! जानीयात् 'मूलगुणभ्रष्टं' पञ्चमहाव्रतरहितमिति ॥ पाठान्तरे तु–"जत्थित्थीकरफरिसं, अंतरिया कारणेवि उप्पन्ने । अरिहावि करिज्ज सयं, तं गच्छं मूलगुणमुक्कं ॥" सुगमा ॥ अत्र श्रीमहानिशीथपञ्चमाध्ययनोक्तसावद्याचार्यस्य दृष्टान्तो ज्ञेय इति ॥ ८५ ॥ अथापवादमाह—

कीरइ बीयपएणं सुत्तमभणियं न जत्थ विहिणा उ । उप्पण्णे पुण कज्जे दिक्खाआयंकमाईए ॥ ८६ ॥

कीरइ०॥ 'क्रियते' विधीयते 'द्वितीयपदेन'उत्सर्गपदापेक्षयाऽपवादपदेन 'सुत्तमभणिय'मित्यत्र मकारोऽलाक्षणिकः सूत्रे–बृहत्कल्पादौ अभणितं–भगवता अकथितं सूत्रभणितं साध्वीपदे न 'यत्र' गणे 'विधिवत्' शास्त्रोक्तप्रकारेण, तुशब्दोऽनेकद्रव्यक्षेत्रकालभावप्रकारसूचकः, 'उत्पन्ने' प्रकटीभूते पुनः कार्ये महालाभकारणे, किंभूते कार्ये ?–दीक्षायां गृहीतायां दीक्षाऽऽतङ्कादिकं तस्मिन्, आदिशब्दाद्विषमविहारादाविति, आतङ्क आदिर्यत्र तत्, स न गच्छ इति ॥ अत्र किञ्चिन्निशीथचूर्णिपञ्चदशोद्देशकगतं यथा–"एत्थ सीसो पुच्छइ–आगमे य पव्वावणिज्जा अज्जा अतो संसओ किं परियट्टियव्वाओ न परियट्टियव्वाओ?, आयरिओ भणइ–णत्थि कोइ णियमो, जहा अवस्सं परियट्टियव्वाओ णत्थि वत्ति, जइ पुण पव्वावेत्ता आणाए परिवट्टति तो महानिज्जराए वट्टइ, अह अणाणाए उ पालेइ तो अतिमहामोहं पकुव्वइ, दीहं संसारं णिव्वत्तेइ, तो केरिसेण परियट्टियव्वाओ? को वा परियट्टणे विही ?,अतो भण्णइ–सहू? भीयपरिसित्ति २,एतेहिं दोहिं पदेहिं चउभंगो कायव्वो, सहू भीयपरिसे १ असहू भीयपरिसो २ सहू अभीयपरिसो ३ असहू अभीयपरिसो ४, तत्थ धितिबलसंपुण्णो इंदियणिग्गहसमत्थो थिरचित्तो य आहारुवहिखेत्ताणि य तप्पाउग्गाणि उप्पाएउं समत्थो एरिसो सहू १,जस्स भया सव्वो साहुसाहुणिवग्गो ण किंचि अकिरियं करेइ भया कंपइ एरिसो भीयपरिसो २, एत्थ पढमभंगिल्लस्स परिवट्टणं अणुण्णायं, सेसेसु तिसु भंगेसु णाणुण्णायं, अह परियट्टंति तो चउगुरुं, सो पढमभंगिल्लो जइ जिणकप्पं पडिवज्जओ अणुवट्टावगस्सासति जइ जिणकप्पं पडिवज्जइ तो चउगुरुगा, अण्णं च जिणकप्पठियस्स जा णिज्जरा सा उ विहीए संजतीओ अणुपालेयंतस्स विउलतरा णिज्जरा भवति"त्ति ॥ ८६ ॥ किञ्च—

मूलगुणोहिं विमुक्कं बहुगुणकलियंपि लद्धिसंपन्नं । उत्तमकुलेऽवि जायं निद्धाडिज्जइ तयं गच्छं ॥ ८७ ॥
मूलगु०॥'बहुगुणकलितं' विज्ञानादिगुणवृन्दसहितमपि 'बहुलब्धिसंपन्नं' अनेकाहारवस्त्राद्युत्पादनलब्धिकलितं मधुक्षीराश्रवादिलब्धियुक्तं वा' उत्तमकुलेऽपि जातं' उग्रभोगादिके चान्द्रादिके वा कुले जातम्–उत्पन्नं,एवंविधगुणयुक्तमपि साधुसाध्वीवर्गं 'मूलगुणैः' प्राणातिपातविरमणादिभिः विशेषेण मुक्तं–भ्रष्टं विमुक्तं यत्राचार्याः 'निर्धाटयन्ति' तिरस्कारं कृत्वा स्वगणान्निष्काशयन्तीत्यर्थः 'तयं'ति स गच्छः, उपलक्षणात् स्त्यानर्द्धिनिद्राऽतिदुष्टस्वभावलक्षणमपि निष्काशयंतीति ॥ ८७ ॥
जत्थ हिरण्ण सुवण्णे धणधण्णे कंसतंबफलिहाणं । सयणाण आसणाण य झुसिराणं चेव परिभोगो ॥ ८८ ॥
जत्थ य वारडिआणं तेकूडिआणं च तहय परिभोगो । मुत्तुं सुक्किलवत्थं का मेरा तत्थ गच्छंमि ? ॥ ८९ ॥
जत्थ य हि०॥ जत्थ य वा०॥ यत्र गणे 'हिरण्यस्वर्णयोः' तत्र हिरण्यं–रूप्यं अघटितस्वर्णं वा स्वर्णं च घटितस्वर्णं, तथा 'धनधान्ययोः' तत्र धनं चतुर्धा–गणिमं–पूगफलनालिकेरादिकं १ धरिमं–गुडादि २ मेयं–घृतादि ३ पारिच्छेद्यं–माणिक्यादि ४, अत्राद्यन्तभेदेनाधिकारः, धान्यं–अपक्वयवगोधूमशालिमुद्गादि चतुर्विंशतिविधं, 'कंस'त्ति कांस्यानि–स्थालकच्चोलकादीनि पात्राणि 'तंब'त्ति ताम्राणि–ताम्रसम्बन्धिलोट्टिकादीनि स्फटिकरत्नमयानि भाजनादीनि, उपलक्षणत्वात् काचकपर्दिकादन्तादिबहुमूल्यानि पात्राणि, पात्रादिषु च पित्तलकादिवालिकानां बन्धनानि तेषां, तथा चोक्तं निशीथसूत्रे आचाराङ्गे च–"जे भिक्खू वा भिक्खुणी वा अयपायाणि वा १ कंसपा० २ तंबपा० ३ तउयपा० ४ सुवण्णपा० ५ रूप्पपा० ६ सीसगपा० ७ रीरियपा० ८ हारपुटपत्तिलोहपा० ९ मणिकायपा० १० संखपा० ११ सिंगपा० १२ दंतपा० १३ चेल-

मूलगुणहीननिर्घाटनं हिरण्यादिवर्जनं च गा.८७-८९ ५ १० १४

पा० १४ सेलपा० १५ चम्मपा० १६ वइरपा० १७ करेइ करेंतं वा साइज्जइ धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ परिभुंजइ परिभुंजंतं वा साइज्जइ तस्स चाउम्मासियं परिहारठाणं अणुग्घातियं॥ जे भिक्खू वा भिक्खुणी वा अयबंधणाणि वा १ कंसबंधणाणि वा २ जाव १६ वइरबंधणाणि वा १७ करेइ करंतं वा साइज्जइ जाव परिभुजंतं वा साइज्जइ तस्सवि पुव्वपच्छित्तं ।"

'सयणासण'त्ति शयनानां–खट्वापल्यङ्कादीनां आसनानां–मञ्चिकाचाकलकादीनां चशब्दाद्दुस्सदवरकजीणकजलेचकशेत्रिजिकादीनां, तथा 'झुसिराणं'ति सच्छिद्राणां पीढफलकादीनां परिभोगो–निरन्तरव्यापारणम् । तथा यत्र च 'वारडिआणं'ति आद्यन्तजिनतीर्थापेक्षया रक्तवस्त्राणां 'तेकूडियाणं'ति नीलपीतविचित्रभातिभरतादियुक्तवस्त्राणां च 'परिभोगः' सदा निष्कारणं व्यापारः 'मुक्त्वा' परित्यज्य 'शुक्लवस्त्रं' यतियोग्याम्बरमित्यर्थः, क्रियत इति शेषः, का मर्यादा ?, न काचिदपि तत्र गणे इति ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ कांस्यताम्रादिभ्यः स्वर्णरूप्यं बहुनर्थकारीत्यतस्तन्निषेधं दृढयन्नाह—

जत्थ हिरण्ण सुवण्णं हत्थेण पराणगंपि नो छिप्पे । कारणसमप्पियंपि हु निमिसखणद्धंपि तं गच्छं ॥ ९० ॥

जत्थ हि० ॥ यत्र गणे 'हिरण्यसुवर्णं' पूर्वोक्तशब्दार्थं साधुः 'हस्तेन' स्वकरेण 'पराणगंपि'त्ति परकीयमपि–परसम्बन्ध्यपि 'न स्पृशेत्' न संघट्टयेत् 'कारणसमर्पितमपि' केनाप्यगारिणा केनापि भयस्नेहादिहेतुनाऽर्पितमपि 'निमेषक्षणार्द्धमपि' तत्र निमेषो–नेत्रसञ्चालनरूपः अष्टादशनिमेषैः काष्ठा काष्ठाद्वयेन लवः लवपञ्चदशभिः कला कलाद्वयेन लेशः लेशैः पञ्चदशभिः क्षणः तयोरर्द्धमपि स गच्छः । यद्वा यत्र परकीयमपि हिरण्यस्वर्णं हस्तेन साधुर्न स्पृशेत् कारणसमर्पितमपि,

भावार्थस्त्वयं–कार्ये संपूर्णे कृते सतीत्यर्थः, उक्तञ्च निशीथपीठिकायाम्–"विसि कणग'त्ति विसधत्थस्स कणगं–सुवण्णं घेत्तुं घसिऊण विसणिग्घायणट्ठा तस्स पाणं दिज्जइ"त्ति ॥ ९० ॥ अथाऽऽर्यकाद्वारेण गणस्वरूपमाह—

जत्थ य अज्जालद्धं पडिगहमाईवि विविहमुवगरणं । परिभुंजइ साहूहिं तं गोयम ! केरिसं गच्छं ? ॥ ९१ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र च गणे 'आर्यालब्धं' साध्वीप्राप्तं पतद्ग्रहप्रमुखं 'विविधं' नानाभेदमुपकरणं परिभुज्यते साधुभिः कारणं विना 'हे गौतम !' हे इन्द्रभूते !, स कीदृशो गच्छो ?, न कीदृशोऽपीति । अत्र किञ्चिदुपकरणस्वरूपं निशीथतो यथा– "जे भिक्खू वा २ गणणातिरित्तं वा पमाणातिरित्तं वा उवहिं धरेइ,उवहिं धरेंतं वा साइज्जइ तस्स चउलहुयं" तथा "जो जिणकप्पिओ एगेणं कप्पेणं संथरइ सो एगं गेण्हइ परिभुंजइ वा,जो दोहिं सं० सो गेण्हइ परि०, एवं ततिओवि, जिणकप्पिओ वा जो अचेलो संथरइ सो अचेलो चेव अच्छइ, एस अभिग्गहविसेसो भणिओ, एतेण अधिकतरवत्थे ण हीलियव्वो जम्हा जिणाणं एसा आणा–सव्वेणवि तिण्णि कप्पा घेत्तव्वा थेरकप्पियाणं, जइवि अपाउएण संथरइ तहावि तिण्णि कप्पा णियमा घेत्तव्वा इति, जो सामण्णभिक्खू तस्सेयं वत्थप्पमाणं भणियं, जो पुण गणचिंतगो गणावच्छेयगो सो दुल्लहवत्थादिदेसे दुगुणपडोयारं तिगुणं वा, अहवा जो अतिरित्तो उवग्गहिओ वा सो सव्वो गणचिंतगस्स परिग्गहो भवइ, महाजणो त्ति गच्छो, तस्स आवत्तिकाले उवग्गहकरो भविस्सति"ति । तथा–"जेसु खित्तेसु चाउम्मासं कयं, तत्थ दो मासा वत्थं न गेण्हंति, किं कारणं ?, जेण पासत्थाइ वासासुवि उवगरणं गेण्हंति, ण य चउपाडिवए पुणो णियमा विहरंति, तेण कारणेन तेहिं सुद्धे असुद्धे वा उवगरणे गहिए जं सेसगं सड्ढगा पयच्छंति तं सेसगं संविग्गाणं ण कप्पइ घेत्तुं सपरखेत्तेसु, तति-

आर्याला-भवर्जनम् गा. ९१

५

१०

१४

	अत्र आर्या/साध्वी द्वारेण गच्छ-स्वरुपम् वर्णयते

यमासे गेण्हंति, चिक्खल्लपंथा वासं वा णोवरमए बाहिं वा असिवं दुब्भिक्खं एवमाइएहिं कारणेहिं चउपाडिवए ण णिग्गया तत्थ दो मासमज्झे कोइ वत्थाणि देज्जा ते पडिसेहंति,दोसु मासेसु पुण्णेसु गेण्हंति,जम्हा जे इह खित्ते वासावासमवट्ठिया तेसिं वत्थे दाहामोत्ति सड्ढयाण जो भावो सो निग्गएसु वोच्छिज्जइ, साहूणं वा जे वत्था संकप्पिया ते अण्णसाधूणं अण्णपासंडत्थाणं वा देंति, अप्पणा वा परिभुंजंति वा, बालअसहुगिलाणा सीयं पडंतं ण सहइ, एवमाइएहिं कारणेहिं दोहिं मासेहिं अपुण्णेहिंवि ओमत्थगपणगपरिहाणीए गहणं कायव्वंति, उडुबद्धे य मासकप्पं जत्थ ठिया तत्थवि उक्कोसेणं दो मासा परिहरंति, कारणे ओमत्थगपणगपरिहाणीए गेण्हंति, इच्चाइ उवहिवित्थरो निसीहदसमोद्देसओ णेओ"त्ति॥ ९१ ॥ किञ्च—

अइदुल्लह भेसज्जं बलबुद्धिविवड्ढणंपि पुट्ठिकरं। अज्जालद्धं भुंजइ का मेरा तत्थ गच्छंमि ? ॥ ९२ ॥

अइदु० ॥ 'अतिदुर्लभं' दुष्प्रापं 'भेषजं' तथाविधचूर्णादिकं उपलक्षणत्वादौषधमपि बलं च–शरीरसामर्थ्यं बुद्धिश्च–मेधा तयोर्विवर्द्धनमपि 'पुष्टिकरं' शरीरगुणकरं 'आर्यालब्धं' साध्व्यानीतं यत्र गणे साधुभिर्भुज्यते तत्र 'का मेरा' का मर्यादा ?, न काचिदित्यर्थः ॥ ९२ ॥

एगो एगित्थिए सद्धिं, जत्थ चिट्ठिज्ज गोयमा ! । संजईए विसेसेण, निम्मेरं तं तु भासिमो ॥ ९३ ॥

एगो० ॥'एकः'अद्वितीयः साधुः एकाकिन्या–रण्डाकुरण्डादिस्त्रिया सार्द्धं'यत्र'गणे राजमार्गादौ वा तिष्ठेत् हे गौतम !, तथा एकाकिन्या संयत्या सार्द्धं 'विशेषेण' हास्यविकथादिबहुप्रकारेण यत्र गणे साधुभिः परिचयः क्रियते 'तु'पुनः तं गच्छं'निर्मर्यादं' जिनाज्ञाविकलं 'भाषामहे' कथयामः, एवं तं गच्छं निर्मर्यादं सद्गुणव्यवस्थाविकलं भाषयाम इति ॥ ९३ ॥

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥९४॥

दीप अनुक्रम [९४]

दढचारित्तं मुत्तं आइज्जं मइहरं च गुणरासिं । इक्को अज्झावेई तमणायारं न तं गच्छं ॥ ९४ ॥

दढचा० ॥ दृढं चारित्रं–पञ्चमहाव्रतादिलक्षणं यस्याः सा तथा तां 'मुक्तां' निःस्पृहां 'आदेयां' लोके आदेयवचनां 'मइहरं' ति मतिगृहं–गुणराशिं साध्वीं चशब्दात् महत्तरां यद्वा महत्तरपदस्थितां सर्वसाध्वीनां स्वामिनीमित्यर्थः, महत्तरास्वरूपं यथा–"सीलत्था कयकरणा कुलजा परिणामिया य गंभीरा । गच्छाणुमया वुड्ढा महत्तरत्तं लहइ अज्जा ॥१॥" एवंविधामप्येकाकिनीमार्यां 'एकः' अद्वितीयो मुनिः 'अध्यापयति' सूत्रतोऽर्थतो वा तन्त्रं पाठयतीत्यर्थः हे शिष्य ! तमनाचारं जानीहि, न तं गच्छं, 'मुत्तुं'ति पाठान्तरे यत्र गणे दृढचारित्रं मदहरं गुणराशिं एवंविधमाचार्यं मुक्त्वा–परित्यज्य, एतदुक्तं भवति–एवंविधः कदाचिदध्ययनोद्देशकादिकं पाठयेदिति ॥ ९४ ॥

घणगज्जिय हयकुहए विज्जूदुग्गिज्झगूढहिययाओ । अज्जा अवारिआओ इत्थीरज्जं न तं गच्छं ॥ ९५ ॥

जत्थ समुद्देसकाले साहूणं मंडलीइ अज्जाओ । गोअम! ठवंति पाए इत्थीरज्जं न तं गच्छं ॥ ९६ ॥

घनस्य गर्जितं भाविनि दुर्ज्ञेयं हयस्य कुहकं–उदरस्थो वायुविशेषः विद्युत्–प्रतीतैव ता इव दुर्ग्राह्यं हृदयं यासां ता आर्या अवारिताः–स्वेच्छाचारिण्यो यत्र गणे तत् स्त्रीराज्यं न तु स गच्छः ॥ ९५ ॥

जत्थ० ॥ यत्र गणे 'समुद्देशकाले' भोजनकाले साधूनां मण्डल्यां 'आर्याः' संयत्यः हे गौतम! 'पादौ स्थापयन्ति' मण्डलीमध्ये आगच्छन्तीत्यर्थः, तत् स्त्रीराज्यं जानीहि त्वं, न तं गच्छम् । जओ–"अकाले पइदिणं आगच्छमाणीए लोयाणं संका भवइ, भोयणवेलाए सागारियाऽभावेण मोकलमणेण आलावे संलावे भवइ, साहूणं चउत्थे संका भवइ,

आर्यापाठ-नवर्जनम् गा.९४-९६

५

१०

१४

परुप्परं पीई भवइ, तओ सव्वेऽवि साहवो अज्जाए अणुवट्टंति, अज्जाणुरागरत्ता न मुणंति अप्पणो सज्झायपडिलेहणाइ-असंजमहाणी, तओ संघाडए संजमहाणिकारणीए रज्जं भवति, संजईए संघाडए रज्जं कुणमाणीए पयठाणीयावि पहाणपुरिसा रज्जुबंधणबद्धबइल्लतुल्ला भवंति, साहूणं च दुग्गई फलं भवइ, अओ उस्सग्गमग्गेण साहूहिं समं भोयणवेलाए अण्णत्थवि बहुसंसग्गो संजईए न कायव्वो'त्ति, साहुणाऽवि पढमपएण संजईण मंडलीए एगागिणा न गंतव्वं"ति ॥ ९६ ॥

अथ सन्मुनिसङ्गणप्ररूपणेन सङ्गणस्वरूपमाह—

जत्थ मुणीण कसाया, जगडिज्जंताविं परकसाएहिं । निच्छिंति समुट्ठेउं सुनिविट्ठो पंगुलो चेव ॥ ९७ ॥
धम्मंतरायभीए भीए संसारगब्भवसहीणं । न उईरंति कसाए मुणी मुणीणं तयं गच्छं ॥ ९८ ॥
कारणमकारणेणं अह कहवि मुणीण उट्ठहि कसाए । उदएवि जत्थ रुंभहि खामिज्जइ जत्थ तं गच्छं ॥ ९९ ॥

जत्थ० ॥ धम्मं० ॥ कारण० ॥ आसां व्याख्या यथा—यत्र गणे मन्वन्ते—जानन्ति तत्त्वस्वरूपमिति मुनयस्तेषां मुनीनां—परमर्षीणां 'कषायाः' क्रोधमानमायालोभरूपाः 'जगडिज्जंताविं'त्ति दीप्यमाना अपि—धगधगायमानं क्रियमाणा अपि, कैः?—परेषां—दासदासीमातङ्गद्विजामात्यभूपालादीनां कषाया उत्कटक्रोधादयस्तैः परकषायैः नेच्छंति समुत्थातुं मेतार्य-गजसुकुमालस्कन्धकाचार्यशिष्यादीनां कषायवत्, 'चेव'त्ति यथार्थे यथा 'सु' इति अतिशयेन निविष्टः—स्थितः'सुनिविष्टः' पदमपि गन्तुमसमर्थ इत्यर्थः 'पङ्गुलः' पङ्गुः उत्थातुं न शक्नोतीति ॥ ९७ ॥ अगाधसंसारसागरे पततां जीवानां धत्ते इति धर्मः—सर्वज्ञोक्तज्ञानदर्शनचरणरूपस्तस्यान्तरायो—निद्राविकथाकुमत्यादिविघ्नस्तस्माद्भीताः—त्रस्ताः, तथा 'भीताः'

कम्पमानाः संसरणं संसारो–भवभ्रमणं गर्भे वसनं वसतिः गर्भवसतिः संसारश्च गर्भवसतिश्च संसारगर्भवसती ताभ्यां, यद्वा संसारे–चतुर्गत्यात्मके गर्भवसतयस्ताभ्यः 'नोदीरयन्ति' प्रशान्ताः सन्तः कुवाक्यादिना नोत्थापयन्तीत्यर्थः, कान्?– 'कषायान्' कोधादीन् मुनयो मुनीनां स गच्छः । अत्र कषायोदये उदाहरणानि वाच्यानि, यथा–क्रोधे गोघातकमरुको- दाहरणं १, मानेऽचंकारिभट्टोदाहरणं २, मायायां पण्ड्वार्योदाहरणं ३, लोभे आर्यमङ्गूवाचार्योदाहरण ४ मिति ॥ ९८ ॥ तथा 'कारणे' गुरुग्लानशैक्षादिवैयावृत्त्यादिप्रयोजने सारणवारणनोदनादिकारणे वा 'अकारणे' बहिःप्रयोजनाभावे वा 'णं' वाक्यालङ्कारे, यद्वा मकारोऽलाक्षणिकः कारणाकारणेन, अथ कथमपि 'मुनीनां' ज्ञातागमतत्त्वानां कषायवि- पाकवेत्तृणां 'उट्ठिहिंति' उत्पद्यन्ते–प्रकटीभवन्ति 'कषायाः' क्रोधादयः 'उदएवि'त्ति उत्पद्यमाना अपि यत्र 'रुंभेहिंति' रुध्यन्ते क्षाम्यन्ते च यत्र स गच्छः ॥ ९९ ॥

कषायाभावः शीतत- पआदि गा. १००

५

सीलतवदाणभावण चउविहधम्मंतरायभयभीए । जत्थ बहू गीयत्थे गोयम ! गच्छं तयं भणियं ॥ १०० ॥

सीलत० ॥ दीयत इति दानं–सुपात्रानुकम्पादिकं १ शीलमष्टादशधाऽब्रह्मवर्जनं २ तप्यतेऽष्टप्रकारं कर्मानेनेति तपः– रत्नावलीकनकावल्येकावलीमुक्तावलीश्रेणिवर्गघनप्रमुखषष्ट्यधिकशतत्रय३६०भेदभिन्नं, उक्तञ्च श्रीगणिविद्याप्रकीर्णके– "महा १ भरणि २ पुव्वाणि, तिण्णि उग्गा वियाहिया । एएसु तवं कुज्जा, सब्भिंतरबाहिरं ॥ १ ॥ तिण्णि सयाणि सट्ठाणि, तवोकम्माणि आहिया । उग्गनक्खत्तजोएसु, तेसुमन्नतरं करे ॥ २ ॥" इति, भाव्यते—संसारस्वरूपमनित्यत्वेन चिन्त्यतेऽनयेति भावना, इत्येवंरूपस्य चतुर्विधधर्मस्यान्तरायभयभीताः, सूत्रे तु बन्धानुलोम्यात् 'सीलतवदाणभावण'त्ति,

१०

१४

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१००॥

दीप अनुक्रम [१००]

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ ३१ ॥

यत्रोक्तलक्षणा बहवो गीतार्थाः–सूत्रार्थज्ञातारो भवन्ति हे गौतम ! स गच्छो भणितः । अत्रानुकम्पादाने जयराजोदाहरणं, सुपात्रदाने सुबाहुकुमारोदाहरणं, शीलेऽनङ्गलेखोदाहरणं, तपसि स्कन्धककालीदेव्याद्युदाहरणं, भावनायां भरतोदाहरणं वाच्यमिति ॥ १०० ॥ उक्तमुत्तमगणस्वरूपमथाधमाधमगणस्वरूपमाह—

जत्थ य गोयम ! पंचण्ह कहवि सूणाण इक्कमवि हुज्जा । तं गच्छं तिविहेणं वोसिरिअ वइज्ज अन्नत्थ ॥१०१॥

जत्थ० ॥ यत्र गणे च हे गौतम ! 'पञ्चानां' घरट्टिका १ उहषल (दूखल) २ चुल्लक ३ पानीयगृह ४ सारवण ५-लक्षणानां कथमपि 'सूनानां' अनाथाशरणजीववृन्दवधस्थानानां खट्टिकगृहसदृशानां मध्ये एकमपि भवेत् तं 'गच्छं' अधममुनिसमूहं 'त्रिविधेन' मनोवाक्कायेन कृतकारितानुमत्यात्मकेन 'व्युत्सृज्य' परि त्यक्त्वा 'व्रजेत्' गच्छेत् 'अन्यत्र' सत्परम्परागतगण इति ॥ १०१ ॥

सूणारंभपवत्तं गच्छं वेसुज्जलं न सेविज्जा । जं चारित्तगुणेहिं तु उज्जलं तं तु सेविज्जा ॥ १०२ ॥

सूणा० ॥ 'सूनारम्भप्रवृत्तं' षड्जीवमर्दनपरं खण्डन्याद्यधिकरणकर्त्तारं वा 'गच्छं' साध्वाभासगणं वेषेण—कल्पकम्बलीचोलपट्टरजोहरणमुखपोतिकादिलक्षणनेपथ्येन साधुद्रव्यलिङ्गेनेत्यर्थः उज्ज्वलं—सागरडण्डीरवत् परमश्वेतं वेषोज्ज्वलं न सेवेत, दुःखलक्षसंसारवर्द्धकत्वात्, कीदृशं सेवेत ? इत्याह–'यं' गणं 'चारित्रगुणैः' समितिगुप्त्यादिगुणैः 'उज्ज्वलं' निरतीचारमालोचितातीचारं वा तुशब्दाद् द्रव्यलिङ्गेन मलिनमपि तं गणं सेवेत, तुशब्दात्तद्गतमुनीनां वैयावृत्त्यादिकमपि कुर्वीत, संसारक्षयहेतुकत्वादिति ॥ १०२ ॥

सूनावर्जनं गा.१०१–२ २० २५ ॥ ३१ ॥ २८

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१०३॥

दीप अनुक्रम [१०३]

जत्थ य मुणिणो कयविक्कयाइं कुव्वंति संजमब्भट्ठा । तं गच्छं गुणसायर ! विसं व दूरं परिहरिज्जा ॥ १०३ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र गणे 'मुनयः' साधुवेषविडम्बकाः प्रवचनोपघातकारकाः आत्मक्लेशकारकाः 'कय'त्ति मूल्येन वस्त्रपात्रौषधशिष्यादिकं स्वीकुर्वन्ति 'विक्कयाइं'ति मूल्येनान्येषां वस्त्रपात्रजपमालादिकमर्पयन्ति, 'जत्थ ये' त्यत्र चकारादन्यैः क्रयविक्रयादिकं कारापयन्ति कुर्वन्तमन्यमनुमोदयन्ति च, किंभूताः ?–संयमात्–पृथिव्यादिसप्तदशविधात् भ्रष्टाः–सर्वथा यतनातत्परतारहिताः दूरीकृतचारित्रगुणा इत्यर्थः 'तं' पूर्वोक्तस्वरूपं 'गच्छं' गणं गुणानां—ज्ञानादिगुणानां सागरः—समुद्रो गुणसागरस्तस्यामन्त्रणं 'हे गुणसागर !' हे शिष्य ! 'विषमिव' हलाहलविषमिव 'दूरं' अदर्शनं यथा स्यात्तथा परिहरेत् । अत्र विषं तूपमामात्रं येन विषादिक(ना)मरणं भवति न वा, परं गुणभ्रष्टगच्छसङ्गात् कुमतिग्रस्तगणसङ्गाच्चानन्तानि जन्ममरणानि अनन्ते संसारे भवन्तीति ॥ १०३ ॥

क्रयविक्रय-वर्जनं आरंभत्यागादि गा. १०३–४ ५

आरंभेसु पसत्ता सिद्धंतपरंमुहा विसयगिद्धा । मुत्तुं मुणिणो गोयम ! वसिज्ज मज्झे सुविहियाणं ॥ १०४ ॥

आरंभे० ॥ बहुवचनात् संरम्भसमारम्भयोरपि ग्रहः तेषु प्रकर्षेण–मनोवाक्कायव्यापारेण सक्ताः–तत्पराः प्रसक्ताः, यद्वा आरम्भेषु–जीवोपमर्दकारिषु परिग्रहादिषु सक्ता–मेलनपालनादितत्परास्तान् सिद्धान्तेषु–आचाराङ्गादिश्रुतरत्नेषु पराङ्मुखाः–विपरीतवक्त्रास्तदुक्तानुष्ठानलेशशून्यत्वात् तत्परिज्ञानशून्यत्वाच्च, विषयो द्विधा कामरूपो भोगरूपश्च, तत्र कामः—शब्दरूपलक्षणः भोगो–गन्धरसस्पर्शरूपस्तस्मिन् गृद्धान् मुक्त्वा मुनीन् हे गौतम ! 'वसेत्' निवासं कुर्यादिति, मध्ये, केषां ?–सुष्ठु–मनोवाक्कायेन शोभनमनुष्ठानं विहितं–निष्पादितं यैस्ते सुविहितास्तेषां सुविहितानामिति ॥ १०४ ॥

१०

१४

तम्हा सम्मं निहालेउं, गच्छं संमग्गपट्ठियं । वसिज्जा पक्ख मासं वा, जावज्जीवं तु गोयमा ! ॥ १०५ ॥

तम्हा स० ॥ यस्मात्पूर्वोक्तगणनिवसनमनन्तसंसारभ्रमणकारणं मुक्त्वा तस्मात् 'सम्यक्' सर्वप्रकारेण 'निभाल्य' कुशाग्रीयबुद्ध्या पर्यालोच्य 'गच्छं' मुनिगणं सन्मार्गप्रस्थितं–मोक्षपथं प्रति चलितमित्यर्थः 'वसेत्' गुर्वाज्ञया तिष्ठेत् पक्षं यावत् मासं यावत् वाशब्दान्मासद्वयादिकं यावत् यावज्जीवं वा हे गौतम ! ॥ १०५ ॥

खुड्डो वा अहवा सेहो, जत्थ रक्खे उवस्सयं । तरुणो वा जत्थ एगागी, का मेरा तत्थ भासिमो ? ॥ १०६ ॥

खुड्डो वा० ॥ यत्र गणे 'क्षुल्लः' बालरूपः वाशब्दः पूरणे अथवा 'शैक्षः' नवदीक्षितः 'रक्षेत्' सदा प्रतिपालयेत् उपाश्रयं–साधुवसनस्थानं वा–अथवा 'तरुणो' युवा साधुर्यत्रैकाकी उपाश्रयं रक्षेत्, तत्र गणे का मर्यादा–कां जिनगणधराज्ञां भाषामहे वयं?, बहुदोषकारणत्वात्, तथाहि–एगो खुड्डो रमइ रममाणस्स अण्णे धुत्ताइया उवहिं हरंति, बालस्स वा भोलविऊण अण्णत्थ गच्छंति, वसहीए वा कयावि डज्झमाणाए खुड्डो वत्थाईगहणत्थं पविसति तत्थ बलइत्ति सप्पो वा डसइ, नडाइयपेच्छणत्थं च गच्छिज्जा एवमाई बाले दोसा १ । सेहे तु कयाई सघरं गच्छेज्जा अन्नत्थ वा गच्छेज्जा, अम्मापियरो अण्णो वा सयणो कयाइ मिलिज्जा स णेहेण रोइज्जा, भासासमिई वा भंजिज्जा उड्डाहं वा करिज्जा एवमाइ सेहे दोसा २ । तरुणे पुण कयाई मोहोदएणं हत्थकम्मं करिज्जा अंगादाणं वा किडुाए चालिज्जा कयाई एगं तरुणं बहूइओ रंडाकुरंडाओ आगच्छंति चउत्थं भंजिज्जा उड्डाहं वा करिज्जा, मोहोदएण गच्छं मुत्तूण गच्छिज्ज वा, एवमाई एगागिस्स खुड्डाइयस्स दोसा 'निसीहचुण्णीओ'त्ति ॥ १०६ ॥

२०

२५

॥ ३२ ॥

२८

जत्थ य एगा खुड्डी एगा तरुणी उ रक्खए वसहिं । गोयम ! तत्थ विहारे का सुद्धी बंभचेरस्स ? ॥ १०७ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र च साध्वीगणे एका क्षुल्लिका एका तरुणी च, तुशब्दान्नवदीक्षिता च, रक्षति वसतिं हे गौतम ! तत्र 'विहारे' साध्वीचर्यायां 'का शुद्धिः' का निर्मलता 'ब्रह्मचर्यस्य' तुर्यव्रतस्य ?, अपि तु न काऽपीत्यर्थः । 'इत्थवि दोसा–कयाइ वसहीए एगा खुड्डी किड्डिज्जा कोइ अवहरिज्ज वा बलाउ वा कोइ सेविज्जा इच्चाइ बहुदोसा १ । तरुणीए दोसा मोहोदएण फलादिणा चउत्थं सेविज्जा, एगागिणिं दट्ठूण तरुणा समागच्छंति, हासाइयं कुव्वंति, अंगे वा लग्गंति तओ उड्डाहो भवति, तप्फासाओ वा मोहोदओ भवति, सीलं भंजिज्ज वा, गब्भो वा भवति, जइ गालइ तो महादोसो भवइ, अह वहइ तो पवयणे महाउड्डाहो भवति, अहवा पुव्वकीलियं समरमाणी वेस्साइयं वा दट्ठूण गच्छं मुच्चूण एगागी तरुणी साहुणी गच्छिज्जा, एवमाई दोसा भवंति तो उवस्सए एगा तरुणी ण मुत्तव्वे"ति ॥ १०७ ॥

जत्थ य उवस्सयाओ बाहिं गच्छे दुहत्थमित्तंपि । एगारत्तिं समणी का मेरा तत्थ गच्छस्स ? ॥ १०८ ॥

जत्थ० ॥ यत्र च गणे उपाश्रयाद्बहिरेकाकिनी रात्रौ 'श्रमणी' साध्वी द्विहस्तमात्रामपि भूमिं गच्छेत् तत्र गच्छस्य का मर्यादा ? । "इत्थवि दोसा–कयाई परदारसेवका रयणीए एगागिणि दट्ठूण हरिज्जा उड्डाहं वा करंति, पच्छन्नं वा रायाई भममाणो संकिज्जा–का एसा ?, चोरावि अवहरंति, वत्थाईयं वा गिण्हंति, अहवा कयाई गुरुणीए फरुसं चोयणं संभरमाणी पुव्वकीलियं वा रयणीए विसेसओ संभरइ तो एगागिणी कत्थवि गच्छिज्जा, इच्चाइ दोसमूलं णाऊण रयणीए एगागिणीए समणीए उवस्सयाओ बाहिं सया न गंतव्वं"ति ॥ १०८ ॥

एकाकिबहिर्गमननिषेधः गा. १०८

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१०९॥

दीप अनुक्रम [१०९]

जत्थ य एगा समणी एगो समणो य जंपए सोम ! । नियबंधुणावि सद्धिं तं गच्छं गच्छगुणहीणं ॥ १०९ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र चोत्सर्गेणैकाकिनी श्रमणी–मुण्डी एकाकिना निजबन्धुनाऽपि सार्द्धं जल्पति, यद्वा एकाकी साधुर्निजभगिन्याऽपि सार्द्धं जल्पति हे सौम्य !–हे गौतम ! तं गच्छं गच्छगुणहीनं जानीहि । यत एकाकिन्या सार्द्धं जल्पनेन बहुदोषोत्पत्तिर्भवति, कामवृत्तिमलिनत्वादिति । तथा च साध्वीनां जल्पनेन प्रीत्यादयो भवन्ति, उक्तञ्च—"संदंसणेण पीई १ पीईउ रई २ रईउ वीसंभो ३ । वीसंभाओ पणओ ४ पणयावि अ भवइ पडिबंधो ५ ॥ १ ॥" साध्वीनां संदर्शनेन साधूनां प्रीतिरुत्पद्यते १, प्रीत्या चित्तसमाधानं २, ततो विश्रम्भो–विश्वासः ३, विश्वासात्प्रणयः–स्नेहः ४, तस्मात्प्रतिबन्धः ५ ॥ १ ॥ "जह जह करेसि नेहं तह तह नेहो अ वड्ढइ तुमंसि । तेण नडिओमि बलियं जं पुच्छसि दुब्बलतरोसि ॥ १ ॥" हे साध्वि ! यथा यथा त्वं मम स्नेहं संपादयसि तथा २ मम त्वयि स्नेहो वर्द्धते, तेन स्नेहेन नटितोऽस्मि यत्त्वं पृच्छसि दुर्बलतरोऽसि ॥ २ ॥ "इय संदंसणसंभासणेण संदीविओ मयणवण्ही । बंभाई गुणरयणे डहइ अणिच्छेवि पमयाओ ॥ १ ॥" इति, स्त्रीणां रण्डाकुरण्डादीनां साध्वीनां मुण्डीवेषधारणीनां साधुसंयमनृपविषकन्यकानां च संदर्शनसंभाषणेन संदीपितो मदनवह्निर्ब्रह्मचर्यादीन् गुणरत्नान् प्रमादात् अनिच्छतोऽपि साधोर्दहतीति ॥ १०९ ॥

जत्थ जयारमयारं समणी जंपइ गिहत्थपच्चक्खं । पच्चक्खं संसारे अज्जा पक्खिवइ अप्पाणं ॥ ११० ॥

जथ० ॥ यत्र यकारं जकारं वा मकारं च, तत्र यकारजकारे यथा–दुष्टस्तवयोनिर्येन त्वमुत्पन्ना, याहि शठेन सार्द्धं–

श्रमण्या आलापवर्जनं जकारमकारवर्जनं गा. १०९–११० ॥ ३३ ॥

योगिनी भव, किं तव लग्नो यक्षः ?, त्वां याकिनी भक्षयति ?, तव जननी मृता तव जनको मृतः रे ? जोषं कुरु किं जन्मान्तरे यक्षणी भविष्यसि ?, मकारं यथा म्रियतां मरिष्यति तव गुरुणी मृतस्तव गुरुः मुखं मा दर्शय दुष्टं मुखं कृष्णं कुरु तव मुखे विष्ठा पतिष्यति चिन्तां मा कुरु मुखं लात्वा गच्छ इतः, इत्यादिवचनपूर्वकं 'श्रमणी' श्रीजिनप्रवचनदमनी 'जल्पति' बाढस्वरेण कुत्सितं वक्तीत्यर्थः 'गृहस्थप्रत्यक्षं' गृहस्थानां श्रवणं यथा स्यात्तथा प्रत्यक्षं–साक्षात् भवपरम्पराकोटिसङ्कुले 'संसारे' चतुर्गत्यात्मके 'आर्या' साध्व्याभासवेषा वेषविडम्बिका 'प्रक्षिपति' पातयतीत्यर्थः 'आत्मानं' स्वयमिति ॥ ११० ॥

जत्थ य गिहत्थभासाहिं भासए अज्जिआ सुरुट्ठावि । तं गच्छं गुणसायर ! समणगुणविवज्जियं जाण ॥१११॥

जत्थ० ॥ यत्र गणे च 'गृहस्थभाषाभिः' सावद्यरूपाभिर्भाषते, गृहस्थानां यथा–तव गृहं ज्वलतु तव पुत्रो यमगृहे गच्छतु त्वं तवाम्बाऽपि शाकिन्यौ स्तः, साध्वीनां यथा–तव शवं कर्षयामि तव दन्तपङ्क्तिं पातयामि तव चरणौ कर्त्तयामि तव जठरेऽग्निक्षेपं कुरु रे शाकिनि ! रे रण्डे ! इत्यादि भाषते, आर्यिका–अधमा मुण्डी सुरुष्टा–अतिशयेन क्रोधाग्निना ज्वलिता, अपिशब्दात् स्वभावस्थाऽपि गृहस्थभाषाभिर्भाषते–तव गृहं पतितं दृश्यते कथं तत्रोद्यमं न कुरुषे ?–तव पुत्री वृद्धाऽस्ति वरगवेषणं कुरु त्वं, त्वया सुष्ठु कृतो विवाहः तव पुत्रवधूटी भव्याऽस्ति तव गृहे महिषी दुर्बलाऽस्ति, यौतकं कथं न ददासि ? वध्वा आणकं कथं न क्रियताम् ? इत्यादिरूपामिति, तं गच्छं हे गुणसागर ! श्रमणगुणविवर्जितं 'जानीहि' अवगच्छ, अन्यत् किं कथ्यत इति ॥ १११ ॥

गृहस्थभाषावर्जनं गा. १११

गणिगोअम ! जा उचियं, सेयं वत्थं विवज्जिउं । सेवए चित्तरूवाणि, न सा अज्जा वियाहिया ॥ ११२ ॥

गणिगो० ॥ हे गणिगौतम ! 'या' आर्या उचितं श्वेतं साध्वीयोग्यं 'वस्त्रं' वसनं 'विवर्ज्य' परित्यज्य सेवते 'चित्ररूपाणि' विविधभरतादियुक्तानि वस्त्राणि, यद्वा चित्राणि–आश्चर्यकराणि रूपाणि–गूलकूदद्विकाकमलादीनि येषां तानि चित्ररूपाणि बहुमूल्यवस्त्राणि साध्व्ययोग्यानि न सा 'आर्या' साध्वी 'व्याहृता' मया, न कथितेत्यर्थः, किन्तु सा जिनप्रवचनोड्डाहकारिणीति ॥ ११२ ॥

सीयणं तुण्णणं भरणं, गिहत्थाणं तु जा करे । तिल्लउव्वट्टणं वावि, अप्पणो य परस्स य ॥ ११३ ॥

सीव० ॥ याऽऽर्या सीवनं खण्डितवस्त्रादेः तुन्ननं जीर्णवस्त्रादेः भरणं कञ्चुकटोपिकाकुञ्चिकादीनां भरतभरणं गृहस्थानां तुशब्दाद्गृहस्थगृहद्वारादिरक्षणानि करोति, तथा च या तैलेन उपलक्षणत्वात् घृतदुग्धतरिकादिना 'उद्वर्त्तनं' अङ्गोपाङ्गानां मर्दनं तैलोद्वर्त्तनं अपिशब्दादङ्गक्षालनविविधमण्डनादिकं करोति सुभद्राऽऽर्यादिवत् 'आत्मनश्च' स्वस्य 'परस्य च' गृहस्थबालकादेः सा "पासत्था पासत्थविहारणी उसन्ना उसन्नविहारणी कुसीला कुसीलविहारणी"त्यादिदोषान्विताऽवगन्तव्येति ॥ ११३ ॥

गच्छइ सविलासगई सयणीअं तूलीअं सबिब्बोअं । उव्वट्टेइ सरीरं सिणाणमाईणि जा कुणइ ॥ ११४ ॥

गच्छइ० ॥ 'गच्छइ सविलासगई'त्ति अत्रापि बिब्बोकशब्दस्य परामर्शः, या आर्या बिब्बोकपूर्वकं यथा स्यात्तथा 'सविलासगतिर्गच्छति' विलाससमन्वितया गत्या राजमार्गादौ पण्याङ्गनावत् परिभ्रमतीत्यर्थः, बिब्बोकविलासयोर्लक्षणं

चित्ररूपस्य सीवनादेः सविलासगत्यादेश्च वर्जनं गा. ११२–४ २० २५ ॥ ३४ ॥ २८

यथा–"इष्टानामर्थानां प्राप्तावभिमानगर्वसम्भूतः । स्त्रीणामनादरकृतो विब्बोको नाम विज्ञेयः ॥ १ ॥ स्थानासनगमनानां हस्तभ्रूनेत्रकर्मणां चैव । उत्पद्यते विशेषो यः श्लिष्टः स तु विलासः स्यात् ॥ २ ॥" अन्ये त्वाहुः—"विलासो नेत्रजो ज्ञेयः" तथा शयनीयं–मञ्चकादिरूपं करोति, किंभूतं ?–डमरुकमणिन्यायेन सकारोऽत्रापि योज्यः 'सतूलीयं'ति गुप्तदवरकसहितं, पुनः किंभूतं ?–'सबिब्बोकं' गलोपधानसहितं, उक्तञ्च कल्पे–"उभओ बिब्बोयणे' उभयतः–शिरोऽन्तपादान्तावाश्रित्य 'बिब्बोयणे'त्ति उपधाने गूण्डके यत्रेति, तथा 'उद्वर्त्तयति' पिष्टिकादिना मर्दयतीत्यर्थः 'शरीरं' स्ववपुः, स्नानादीनि आदिशब्दाद्विलेपनमङ्गे कण्ठे पुष्पमालादि हस्ते तालवृन्तादिकं धूपनं वस्त्रादेः दृशोरञ्जनं दन्तकाष्ठमित्यादिकं या करोति सा आर्या नोक्ता श्रीवर्द्धमानस्वामिना, किन्तु वेषविडम्बनी जिनाज्ञाकन्दलीकुठारिका प्रवचनमालिन्यकारिणी अनाचारिणी सम्यक्त्वतरुकरिणी प्रमादसरणिः मुनिमनोभङ्गकारिणी सत्साधुयोधवारुणीति ॥ ११४ ॥

गेहेसु गिहत्थाणं गंतूण कहा कहेइ काहीया । तरुणा अहिवडंते अणुजाणे साइ पडिणीया ॥ ११५ ॥

गेहे० ॥ गृहेषु गृहस्थानां गत्वा 'कथां' धर्माभासकथां संसारव्यापारविषयां वा 'कथयति' वचनविलासेन विस्तारयतीत्यर्थः, 'काहीया'त्ति 'कथिका' कथाकथिकाऽऽर्या । तथा या च तरुणादीन् पुरुषान् 'अहिवडंते'त्ति 'अभिमुखमागच्छतः' सन्मुखमागच्छमानान् 'अनुजानाति' आगम्यतां भवतामागमनं भव्यं भव्यमस्मदीयस्थानजातं स्थीयतां, गमनप्रस्तावे पुनरागमनं विधेयं, परत्वं न चिन्तनीयं, अस्मद्योग्यं कार्यं ज्ञाप्यमित्यादिकं वचनाडम्बरं करोतीत्यर्थः सा मुण्डी, इकारः पादपूरणे, प्रत्यनीकमिव–प्रतिसैन्यमिव या सा प्रत्यनीका गुरुगच्छसङ्घप्रवचनस्य प्रतिकूलविधानादिति ॥११५॥ किञ्च—

गृहकथावर्जनं गा. ११५

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥११६॥

दीप अनुक्रम [११६]

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ ३५ ॥

बुड्ढाणं तरुणाणं रत्तिं अज्जा कहेइ जा धम्मं । सा गणिणी गुणसायर ! पडिणीया होइ गच्छस्स ॥ ११६ ॥

बुड्ढा० ॥ 'वृद्धानां' जराजीर्णानां पुरुषाणां 'तरुणानां' मन्मथवयःप्राप्तानां उपलक्षणत्वान्मध्यमवयःप्राप्तानां 'रत्तिं'ति रात्रौ निशायां याऽऽर्या कथयति धर्मं सा 'गणिनी' मुख्यसाध्वी हे गुणसागर ! प्रत्यनीका भवति गच्छस्य । यदि च गणिन्याः पुंसां रात्रौ धर्मकथने गणस्य प्रत्यनीकत्वं जायते तदाऽन्यसाध्वीनां का कथा ?, ननु विशेषतरं भवति प्रत्यनीकत्वमिति ॥ ११६ ॥

जत्थ य समणीणमसंखडाइं गच्छंमि नेव जायंति । तं गच्छं गच्छवरं गिहत्थभासाउ नो जत्थ ॥ ११७ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र गणे चात् सङ्घाटकेऽपि 'श्रमणीनां' मोक्षमार्गप्रवृत्तसाध्वीनां 'असंस्कृतानि' परस्परं गृहस्थसार्द्धं वा स्वगणमुनिसार्द्धं स्वसङ्घाटकमुनिवर्गसार्द्धं वा कलहगालिप्रदानावर्णवादादीनि 'नैव जायन्ते' कदाऽपि नैवोत्पद्यन्ते तं 'गच्छं' गणं 'गच्छवरं' गणप्रधानं, तथा च यत्र गणे 'गृहस्थभाषाः' पूर्वोक्तसावद्यरूपाः, यद्वा मामा आई बाप भाई बाई बेटी" इत्यादिका नोच्यंते स गच्छो गच्छवर इति ॥ ११७ ॥

जो जत्तो वा जाओ नालोयइ दिवसपक्खियं वावी । सच्छंदा समणीओ मयहरियाए न ठायंति ॥ ११८ ॥

जो जत्तो० ॥ यो यावानिति 'जातः' उत्पन्नस्तं तथा 'नालोचयति' न गुरोः कथयति, तथा दैवसिकं पाक्षिकं वा, अपिशब्दाच्चातुर्मासिकं सांवत्सरिकं चातीचारं नालोचयति, तथा 'स्वच्छन्दाः' स्वेच्छाचारिण्यः श्रमण्यो 'महत्तरिकायाः' मुख्यसाध्व्याः आज्ञायां न तिष्ठन्ति स गच्छो मोक्षपदसाधको न, किन्तूदरपूरक एवेति ॥ ११८ ॥

रात्रिकथावर्जनं कलहस्य च आलोचनं च गा. ११६–८ २० २५ ॥ ३५ ॥ २८

विंटालियाणि पउंजंति गिलाण सेहीण णेय तेप्पंति । अणगाढे आगाढं करंति आगाढि अणगाढं ॥ ११९ ॥

'विण्टलिकानि' निमित्तादीनि, यद्वा 'वेण्टलिकानि' यन्त्रमन्त्रादीनि 'प्रयुञ्जन्ति प्ररूपयन्तीत्यर्थः 'ग्लानिकानां' रोगिणीनां 'सेहीण'त्ति नवदीक्षितसाध्वीनां 'नेय तप्पंति'त्ति औषधभेषजवस्त्रपात्रज्ञानाभ्यासादिना चिन्तां न कुर्वन्तीत्यर्थः । तथा आगाढम्–अवश्यकर्त्तव्यं सर्पभक्षितविषमूर्छितमरणान्तशूलादिपीडितप्रतिजागरणादिकं न आगाढमनागाढं तस्मिन् अनागाढे कार्ये 'आगाढं' अवश्यकर्त्तव्यमितिकृत्वा कुर्वन्तीत्यर्थः, तथा 'आगाढे' पूर्ववर्णितस्वरूपे कार्ये अनागाढं कार्यं कुर्वन्ति, गो०, यद्वा 'अणगाढे'त्ति आचाराङ्गादिअनागाढयोगानुष्ठाने 'आगाढं'ति भगवतीप्रमुखमागाढयोगानुष्ठानं कुर्वन्ति, तथा आगाढयोगानुष्ठानेऽनागाढयोगानुष्ठानं कुर्वन्ति च ॥ ११९ ॥ तथा—

वेण्टलकादिवर्जनं अयतनावात्सल्यादि गा. ११९–२० ५

अजयणाए पकुवंति, पाहुणगाण अवच्छला । चित्तलिआणि अ सेवंति, चित्ता रयहरणे तहा ॥ १२० ॥

अजय० ॥ 'अयतनया' जीवयतनां विनेत्यर्थः 'पकुवंति'त्ति प्रकर्षेण–मनोवाक्कायेन भिक्षाटनभोजनमण्डल्युद्धरणस्थण्डिलगमनग्रामानुग्रामपरिभ्रमणवसतिप्रमार्जनप्रतिलेखनाऽऽवश्यकादिकं कुर्वन्ति, यद्वा न विद्यते यतना–आचरणेनाथ षट्कायपरिपालना यत्र सा अयतना–केवलद्रव्यलिङ्गधारणा तया प्रकुर्वन्ति जठरपूरणार्थं रामाद्यावर्जनादिकमिति, तथा 'प्राघूर्णकानां' ग्रामान्तरागतानां मार्गश्रमसंयुक्तानां क्षुत्पिपासापीडितानां साध्वीनां 'अवच्छल'त्ति निर्दोषभव्यान्नपानादिना बहुमानपूर्वकं भक्तिं न कुर्वन्तीत्यर्थः, तथा 'चित्तलिआणि'त्ति चित्रितानि–नानाचित्रसंयुक्तानि वस्त्रकम्बलीपात्रदण्डादीनि, यद्वा 'चीतलिकानि' चउकचीतलिकापाचीकासारपासकादीनि 'सेवन्ते' स्वयं प्रवर्त्तयन्ती- १०

१४

त्यर्थः, चशब्दाद्धस्ते मिन्धिका चरणेऽलक्तकुङ्कुमादि कण्ठे हारकादि इत्यादि कामाङ्गानि सेवन्ति, तथा रजोहरणे 'चित्ता'इति चित्राणि बाह्याभ्यन्तरपञ्चवर्णगुलादिकर्षणानि कुर्वन्तीति हे गौतम ! ता अनार्या उच्यन्त इति ॥ १२० ॥

गइविब्भमाइएहिं आगारविगार तह पगासंति । जह वुड्ढाणवि मोहो समुईरइ किं तु तरुणाणं ? ॥ १२१ ॥

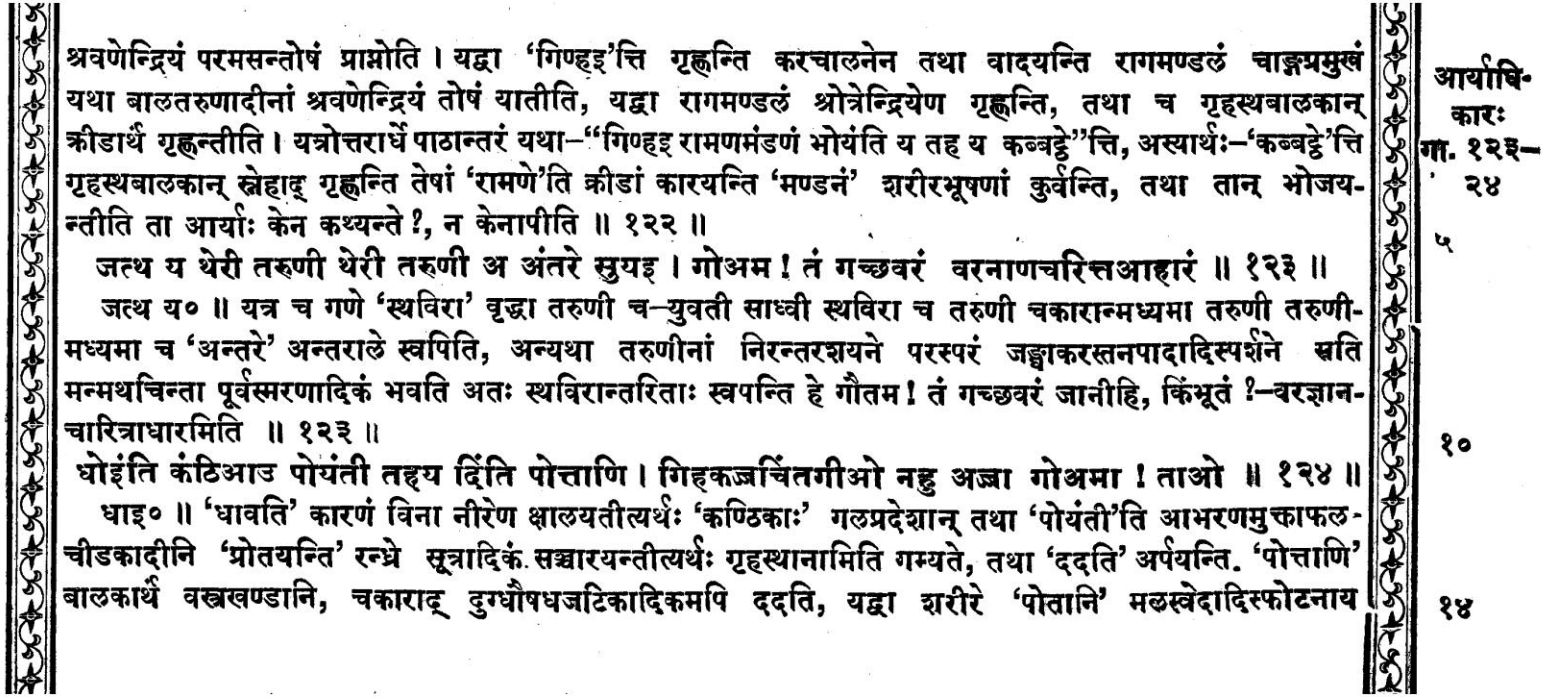
गइ० ॥ याऽऽर्या 'गतिविभ्रमादिकैः' गमनविलासादिकैः आकारश्च–स्थूलधीगम्यदिगवलोकनमुखनयनादिचेष्टा विकारश्च–स्तनकक्षादिप्रदेशे हस्ताङ्गुल्यादिक्षेपणं आकारविकारं तं 'तथा प्रकाशयन्ति' तथा प्रकटीकुर्वन्ति यथा 'वृद्धानामपि' स्थविराणामपि 'मोहः' वेदोदयः कामानुराग इत्यर्थः 'समुदीरइ'त्ति तत्क्षण एवोत्पद्यते, 'तुः' पुनरर्थे, किं पुनस्तरुणानां साधूनामिति, हे सौम्य ! ताः साध्व्यो न, किन्तु नव्य इति ॥ १२१ ॥

बहुसो उच्छोलिंती मुहनयणे हत्थपायकक्खाओ । गिण्हेइ रागमंडल सोइंदिय तह य कब्बट्टे ॥ १२२ ॥

बहु० ॥ 'बहुशः' कारणं विना वारंवारं 'उच्छोलिंती'ति क्षालयन्तीत्यर्थः 'मुखनयने' वक्त्राक्षिणी हस्तपादकक्षाश्च । तथा च याऽऽर्या 'गिण्हेइ'त्ति परेभ्यो रागज्ञेभ्यो 'गृह्णन्ति' शिक्षन्ते 'रागमण्डलं' श्रीराग १ गऊडी २ मल्हार ३ केदारउ ४-मालवीगुढउ ५ सिन्धुउ ६ देशाख ७ आसाउरी ८ (अधरस ७ काल्हेरउ ८) भूपाल ९ सामेरी १० मारऊणी ११ मेवाडउ १२ रामगिरी १३ केदारगउडी १४ मधुराग १५ प्रभाती १६ सवाब १७ वेलाउली १८ वसंत १९ नाट २० धन्यासी २१' इत्यादिकं रागसमूहं 'तहय'त्ति च पुनस्तद्रागमण्डलं गृहीत्वा 'तथा' तेन प्रकारेण करोति यथा 'कब्बट्टे'त्ति प्राकृतत्वाद्विभक्तिपरिणामः, तरुणपुरुषाणां, यद्वा 'कब्बट्टे'त्ति समयभाषया बालकास्तेषामपि 'सोइंदिय'त्ति श्रोत्रेन्द्रियं

प्रत सूत्रांक ॥१२२॥

दीप अनुक्रम [१२२]



श्रवणेन्द्रियं परमसन्तोषं प्राप्नोति । यद्वा 'गिण्हइ'त्ति गृह्णन्ति करचालनेन तथा वादयन्ति रागमण्डलं चाङ्गप्रमुखं यथा बालतरुणादीनां श्रवणेन्द्रियं तोषं यातीति, यद्वा रागमण्डलं श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्णन्ति, तथा च गृहस्थबालकान् क्रीडार्थं गृह्णन्तीति । यत्रोत्तरार्धे पाठान्तरं यथा–"गिण्हइ रामणमंडणं भोयंति य तह य कब्बट्ठे"त्ति, अस्यार्थः–'कब्बट्ठे'त्ति गृहस्थबालकान् स्नेहाद् गृह्णन्ति तेषां 'रामणे'ति क्रीडां कारयन्ति 'मण्डनं' शरीरभूषणां कुर्वन्ति, तथा तान् भोजयन्तीति ता आर्याः केन कथ्यन्ते ?, न केनापीति ॥ १२२ ॥

जत्थ य थेरी तरुणी थेरी तरुणी अ अंतरे सुयइ । गोअम ! तं गच्छवरं वरनाणचरित्तआहारं ॥ १२३ ॥

जत्थ य० ॥ यत्र च गणे 'स्थविरा' वृद्धा तरुणी च–युवती साध्वी स्थविरा च तरुणी चकारान्मध्यमा तरुणी तरुणीमध्यमा च 'अन्तरे' अन्तराले स्वपिति, अन्यथा तरुणीनां निरन्तरशयने परस्परं जङ्घाकरस्तनपादादिस्पर्शने सति मन्मथचिन्ता पूर्वस्मरणादिकं भवति अतः स्थविरान्तरिताः स्वपन्ति हे गौतम ! तं गच्छवरं जानीहि, किंभूतं ?–वरज्ञानचारित्राधारमिति ॥ १२३ ॥

धोइंति कंठिआउ पोयंती तहय दिंति पोत्ताणि । गिहकज्जचिंतगीओ नहु अज्जा गोअमा ! ताओ ॥ १२४ ॥

धाइ० ॥ 'धावति' कारणं विना नीरेण क्षालयतीत्यर्थः 'कण्ठिकाः' गलप्रदेशान् तथा 'पोयंती'ति आभरणमुक्ताफलचीडकादीनि 'प्रोतयन्ति' रन्ध्रे सूत्रादिकं सञ्चारयन्तीत्यर्थः गृहस्थानामिति गम्यते, तथा 'ददति' अर्पयन्ति. 'पोत्ताणि' बालकार्थं वस्त्रखण्डानि, चकाराद् दुग्धौषधजटिकादिकमपि ददति, यद्वा शरीरे 'पोतानि' मलस्वेदादिस्फोटनाय

गच्छा. ७

आर्याधिकारः गा. १२३–२४

५ १० १४

अथ 'आर्या' अधिकार: वर्णयते

जलार्द्रीकृतवस्त्राणि 'ददति' घर्षयन्तीत्यर्थः, 'गृहकार्यचिन्तिकाः' अगारिगृहव्यापारकरणतत्पराः, नैव ता आर्याः हे गौतम !, किन्तु कर्म्मकर्य्य इत्यर्थः ॥ १२४ ॥

खरघोडाइट्ठाणे वयंति ते वावि तत्थ वचंति । वेसत्थी संसग्गी उवस्सयाओ समीवंमि ॥ १२५ ॥

खरघो० ॥ खरघोटकादिस्थाने व्रजन्ति साध्व्यः, तत्र खरशब्देन दासप्रायः, यदुक्तमोघनिर्युक्तौ–"खरउ द्व्यक्षरो दासप्रायः द्व्यक्षरिका दासी"ति, घोटकशब्देन द्यूतकारादिधूर्त्ताः, यदुक्तं निशीथचूर्णौ–"घोडेहिं गाहा–घोडा वट्टा जूयक्करादिधुत्ता" इति, आदिशब्दादन्येऽपि तादृशा ग्राह्याः, तथा 'तेऽपि' खरघोटकादयः 'तत्र' आर्यास्थाने व्रजन्ति, अकालसकाले आगच्छन्तीत्यर्थः, वाशब्दात् परोक्षे ते ताभिः सह ता वा तैः सह दोहकगाथादिमुत्कलनेन परिचयं कुर्वन्तीति, तथा 'उपाश्रयसमीपे' साध्वीवसतिपार्श्वे वेश्या स्त्री तस्याः यद्वा वेश्यो ना तत्सदृशा याः स्त्रियस्तासां, यद्वा वेश्यायाः स्त्री दासीलक्षणा तस्याः, यद्वा वेश्या या स्त्री नटपुरुषमेलापकलक्षणा तस्याः, वेश्या स्त्री तत्पुत्रीलक्षणा तस्या वा, अथवा वेषस्त्री–योगिन्यादिवेषधारिका तस्याः, यदिवा वेषस्य–रजोहरणादिद्रव्यलिङ्गस्य अर्थः–उदरपूरणमुग्धवञ्चनादिप्रयोजनं वेषार्थः स च विद्यते यस्यासौ वेषार्थी, सर्वभ्रष्टाचारी साधुरित्यर्थः, आर्षत्वादीर्घः, तस्य संसर्गो भवति हे गौतम ! साऽऽर्या द्व्यक्षरिकोच्यते नत्वार्येति ॥ १२५ ॥

छक्कायमुक्कजोगा धम्मकहा विगह पेसण गिहीणं । गिहिनिस्सिज्जं वाहिंति संथवं तह करंतीओ ॥ १२६ ॥

छक्का० ॥ 'षट्कायमुक्तयोगाः' को भावः ?–षट्कायेषु–पृथिव्यादिषु मुक्तो–दूरीकृतो योगो–यत्नालक्षणो व्यापारो

याभिस्ताः षट्कायमुक्तयोगाः संयत्यो धर्मकथामधर्मकथां वा तथा विकथां परस्परं विधवादिसार्द्धं वा रुयादिकथां कुर्वन्ति, तथा गृहस्थानां कार्यादौ प्रेषणं कुर्वन्ति 'गृहनिषद्यां वाहयन्ति' गृहस्थानामासनादिकमुपवेशनार्थं, मुञ्चन्तीत्यर्थः, यदिवा गृहिणां निषद्या–चक्कलकगद्दिकादिरूपा तां 'वाहिंती'ति व्यापारयन्तीत्यर्थः, संस्तवो द्विधा गुणसम्बन्धिसंस्तवभेदात्, एकैको द्विधा पूर्वपश्चाद्भावित्वात्, तत्र दानात्पूर्वं पश्चाद्वा गुणान् यत्र स्तौति स गुणसंस्तवः, सम्बन्धिसंस्तवस्तु जननीजनकभ्रातृभगिन्यादिपूर्वकालभावित्वात् पूर्वः, श्वश्रूश्वशुरकलत्रपुत्रादिपश्चात्कालभावित्वात्पश्चात्संस्तवः, आत्मपरतारुण्यादिलक्षणं वयो ज्ञात्वा तदनुरूपं यत् श्वेतपट्यः सम्बन्धं कुर्वन्ति स सम्बन्धिसंस्तवस्तं सस्तवं 'करंतीउ'त्ति कुर्वन्त्यस्ताः साध्व्यो न भवन्तीति ॥ १२६ ॥ आर्याधिकारः गा.१२७–२८ ५

समा सीसपडिच्छीणं, चोअणासु अणालसा । गणिणी गुणसंपन्ना, पसत्थपरिसाणुगा ॥ १२७ ॥

समा सी० ॥ 'समाः' तुल्या भवन्ति रागद्वेषपरिणामाभावात् 'सीस'त्ति स्वशिष्याः–स्वसङ्घाटिका इत्यर्थः प्रतीच्छिकाश्च स्वपरगच्छात् ज्ञानवैयावृत्त्याद्यर्थमागतास्तासां तासु वेति, 'चोयणासु'त्ति नोदनादिषु पूर्वोक्तशब्दार्थेषु 'अनालस्याः' सर्वथाऽऽलस्यरहिताः, गुणाः–ज्ञानदर्शनचारित्ररूपास्तैः संपन्नाः–समन्विताः, प्रशस्ता–क्षमाविनयवैयावृत्त्यादिगुणयुक्तत्वात् परिषत्– परिवाररूपा तयाऽनुगताः–सदासंयुक्ताः, एवंविधो गणः–साध्वीपरिवाररूपो विद्यते यासां ता गणिन्यो–मुख्यसाध्व्यो भवन्तीति ॥ १२७ ॥ १०

संविग्गा भीयपरिसा य, उग्गदंडा य कारणे । सज्झायझाणजुत्ताँ य, संगहे अविसारया ॥ १२८ ॥ १४

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१२८॥

दीप अनुक्रम [१२८]

श्रीगच्छाचारलघुवृत्तौ ॥ ३८ ॥

संवि० ॥ 'संविग्ना' परमसंवेगरसलीना भीता–भयं प्राप्ता परिषत्–परिवारो यासां ताः भीतपरिषदः, यद्वा भीता–स्व२सङ्घाटिकया सह कलहादिकरणेन भयं गता परिषद् यासां तास्तथा, यद्वा भयमिहलोकभयं–स्वगुरुगुरुगुरूणां गण-कुलजात्यादीनामपकीर्त्तिलक्षणं परलोकभयं–महाव्रतदूषणलक्षणं परिषदि–परिवारे यासां तास्तथा, उग्रः तीव्रो दण्डः प्रायश्चित्तादिरूपो यासां ता उग्रदण्डाश्च 'कारणे' अकर्त्तव्ये कृत इति, 'स्वाध्यायध्यानसंयुक्ताः' तत्र स्वाध्यायः–पञ्चधा–वाचना १ प्रच्छना २ परावर्त्तना ३ ऽनुप्रेक्षा ४ धर्म्मकथा ५ रूपः, ध्यानं च धर्मशुक्लक्षणं, यद्वा ध्यानं चतुर्धा पिण्डस्थादि, यदुक्तम्–"झाणं चउविहं होइ तत्थ पिंडत्थयं १ पयत्थं च २। रूवत्थं ३ रूवाइय ४ मेएसिमिमं तु वक्खाणं॥१॥ देहत्थं गयकम्मं चेदात्तं (जं दंतं) नाणिणं विऊ जत्थ। परम्मिस्सरियं अप्पं पिच्छइ तं होइ पिंडत्थं १॥२॥ मंतक्खराणि सारीरपउमपत्तेसु चिंतए जत्थ। जोगी गुरूवएसा पयत्थमिह वुच्चए तं तु। २॥ ३॥ जं पुण सपाडिहेरं ओसरणत्थं जिणं परमनाणिं। पडिमाइ समारोविय, झायइ तं होइ रूवत्थं ३॥ ४॥ जं परमाणंदमयं परमप्पाणं निरंजणं सिद्धं। झाएइ परमगुरुं रूवाईयं तमिह झाणं ४॥ ५॥" इति। तथा 'सङ्ग्रहे' शिष्यादिसङ्ग्रहणे चकारादुपग्रहे च–निर्दोषवस्त्रपात्रादिसङ्ग्रहणे 'विशारदाः' कुशलास्ता गणिन्य इति ॥ १२८ ॥

जत्थुत्तरपडिउत्तरवडिआ अज्जा उ साहुणा सद्धिं। पलवंति सुरुट्ठावी गोयम! किं तेण गच्छेण? ॥ १२९ ॥

जत्थु० ॥ 'यत्र' गणे उत्तरं प्रत्युत्तरं वा ददाति, तत्रोत्तरं–एकवारं प्रत्युत्तरं–पुनः पुनरिति, कलहेनाशुभरागेण वेति शेषः 'वडिआ'ति मुख्यभिक्षुणी वृद्धा वा–जराग्रस्ता वा 'आर्या' अनार्यारूपा, तथा च यत्र मुख्या अन्या वा मुण्ड्यः

आर्याधिकारः गा. १२९

'साधुना' मुख्यगुरुणा अन्येन मुनिना वा 'सार्द्धं' साकं प्रकर्षेण लोकसमक्षमसमक्षं वा यथा वाक्यं लपन्ति वदन्ति, किंभूताः ?–सु–अतिशयेन रुष्टाः–कोपचाण्डालत्वं प्राप्ताः 'सुरुष्टाः' अत्यन्तकोपगता इत्यर्थः अपिशब्दादल्परुष्टा अपि हे गौतम ! किं 'तेन' अधमरूपेण 'गच्छेन' मुण्डीवृन्देनेति ॥ १२९ ॥

जत्थ य गच्छे गोयम ! उप्पण्णे कारणंमि अज्जाओ । गणिणीपिट्ठिठियाओ भासंती मउअसद्देण ॥ १३० ॥

जत्थ य० ॥ यत्र च 'गच्छे' गणे हे गौतम ! 'उत्पन्ने' प्रादुर्भूते 'कारणे' ज्ञानदर्शनचरणानामन्यतरस्मिन् कार्ये 'आर्याः' लघुसाध्व्यः गणिनी–मुख्यसाध्वी तस्याः पृष्ठिस्थिताः–पश्चाद्भागे व्यवस्थिताः 'भाषन्ते' जल्पन्ति, केन ?–'मृदुकशब्देन' अल्पर्जुनिर्विकारवाक्येन स्थविरगीतार्थादिसार्द्धमिति । 'पट्ठिवियाउ'त्ति पाठे तु गणिन्या प्रस्थापिताः–प्रेषिताः सत्यो 'मृदुकशब्देन' विनयपूर्वकवचनकथनेन भाषन्ते स गच्छ इति ॥ १३० ॥

माऊए दुहियाए सुण्हाए अहव भइणिमाईणं । जत्थ न अज्जा अक्खइ गुत्तिविभेयं तयं गच्छं ॥ १३१ ॥

माऊए० ॥ 'मातुः' जनन्याः 'दुहितुः' सुतायाः पुत्रस्य वाऽपत्यं, 'स्नुषायाः' वधूव्याः, अथवा भगिन्यादीनां 'यत्र' गणे न 'आर्या' भिक्षुणी 'आख्याति' कथयति 'गुप्तिविभेदं' नाम(मर्म)प्रकार, कोऽर्थः ?–कारणं विना स्वपरवर्गे वदति ममेयं माता ममेयं दुहितेत्यादि, यदिवा अहमस्यास्या वा माता अहमस्यास्या वा दुहिता अहमस्य वधूटीत्यादि न जल्पति स गच्छ इति, यद्वा मात्रादीनां गुप्तेः–किमपि गोप्यस्य लोकावाच्यरूपस्य नाख्याति साध्वी स गच्छ इति ॥ १३१ ॥

दंसणइयार कुणई चरित्तनासं जणेइ मिच्छत्तं । दुण्हवि वग्गाणज्जा विहारभेयं करेमाणी ॥ १३२ ॥

आर्याधिकारः गा. १३०–३२

५

१०

१४

दंसण० ॥ 'दर्शनातिचारं' सम्यक्त्वातिचारं करोति 'चारित्रनाशं' चरणविनाशं मिथ्यात्वं च 'जनयति' निष्पादयति द्वयोरपि 'वर्गयोः' साधुसाध्वीलक्षणयोः स्वपरे आर्या 'विहारभेदं' जिनोक्तमार्गविनाशं 'करेमाणी'ति कुर्वाणा, यद्वा विहारो–मासकल्पादिना विचरणं तस्य भेदो–मर्यादोल्लङ्घनं तं कुर्वाणा, एकत्र वसने साध्वीनां कारणं विना दर्शनचरणादिबहुविनाशहेतुत्वादिति । तथा च विहारं कुर्वतां यतीनां कदाचिन्नावा १ संघट्ट २ लेप ३ लेपोपरिकं ४ जलं भवेत तत्रेयं यतना, यथा–"दो जोयण वंकेणं थलेण परिहरइ बेडियामग्गं । सढजोयण घट्टेणं १, जोयण लेवेण २ उवरि दो गाऊ ३ ॥१॥ सढजोयण वंकेणं थलेण लेवोवरिं च वज्जेइ । अधजोयण लेवेणं१संघट्टेणेगजोयणेणं च २ ॥२॥ एगजोयण थलेणं, संघट्टेणद्धजोयणेण मुणी । लेवं वज्जइ य तहा घट्टं अधजोयण थलेण ॥ ३ ॥ एवं मग्गाभावे नावाईहिंपि कारणे मुणिणो । गच्छंतस्सवि दोसो न कोवि भणिओ जिणिंदेहिं ॥ ४ ॥ एएसि गाहाणं भावत्थो जहा– दोहिं जोयणेहिं गए थलपहेण गम्मइ मा य णावाए, जइ थलपहे सरीरोवघाई तेणा सीहा वा वाला वा भवंति थलपहे भिक्खं वा ण लब्भइ, वसही वा, तो दिवड्ढजोयणेणं संघट्टेण गम्मइ मा य णावाए, अह णत्थि संघट्टो सति वा परं दोसजुत्तो तो जोयणेण लेवेण गच्छउ मा य णावाए, अह णत्थि लेवोवि सति वा पुव्वुत्तदोसजुत्तो तो अद्धजोयणेण लेवोवरिणा गच्छउ मा य णावाए, अह तंपि णत्थि सति वा दोसजुयं तदा णावाए गच्छउ, एवं दुजोयणहाणीए णावाए पत्तो १ दिवड्ढजोयणेण थलपहेण गच्छउ मा य लेवोवरिणा, थलपहे असति दोसजुत्ते वा तो एगजोयणेण संघट्टेण गच्छउ मा य लेवोवरिणा,

आर्याधिकारः गा. १३०–३२

२०

२५

॥ ३९ ॥

२८

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ॥१३२॥

दीप अनुक्रम [१३२]

अह तंपि नत्थि दोसजुत्तो वा तो अद्धजोयणेण लेवेणं गच्छउ मा य लेवोवरिणा २, एगजोयणेण थलपहेण गच्छउ मा य लेवेणं, अह नत्थि दोसजुत्तो वा तो अद्धजोयणेण संघट्टेण गच्छउ मा य लेवेणं ३, अद्धजोयणेण थलपहेणं गच्छउ मा य संघट्टेणं ४, एतेसिं परिहासेणं असतीए णावा १ लेवोवरि २ लेव ३ संघट्टेहिवि ४ गंतवं जयणाए" इति ॥ १३२ ॥

आर्याधिकारः गा. १३३–१३४

तंमूलं संसारं जणेइ अज्जावि गोयमा ! नूणं । तम्हा धम्मुवएसं मुत्तुं अन्नं न भासिज्जा ॥ १३३ ॥

तंमूलं० ॥ तत्–पूर्वोक्तजिनाज्ञाखण्डनमूलं संसारं 'जनयति' अर्जयतीत्यर्थः 'आर्या' साध्वी अपिशब्दान्मुनिरपि हे गौतम ! 'नूनं' निश्चितं 'तम्हा'इति यस्माज्जिनाज्ञाखण्डने विरुद्धप्ररूपणेऽनन्तभवभ्रमणं जायते तस्माद्धर्मोपदेशं स्वर्गापवर्गसौख्यप्रदं मुक्त्वा 'अन्यत्' आप्तवाक्यविसंवादि 'न भाषेत' न स्वपरसभायां प्ररूपयेदिति ॥ १३३ ॥ ५

मासे मासे उ जा अज्जा, एगसित्थेण पारए । कलहे गिहत्थभासाहिं, सव्वं तीइ निरत्थयं ॥ १३४ ॥

मासे० ॥ 'मासे मासे उ'त्ति मासक्षपणं २ कृत्वेत्यर्थः, तुशब्दान्मासक्षपणद्वित्र्यादिकं कृत्वाऽऽऽपि याऽऽर्या 'एकसित्थुना' अद्वितीयेन कूरादिरूक्षरूपेण न तु सित्थुद्वयादिनेत्यर्थः 'पारयेत्' पारणकं करोतीत्यर्थः, एवंविधाऽपि साध्वी यदि 'कलहे'त्ति "द्वितीयातृतीययोः सप्तमी"ति द्वितीयार्थे सप्तमी 'कलहं' राटिं स्वपरवर्गसमक्षं करोति, काभिः ?–गृहस्थानां–अनार्यरूपाणां भाषा–मर्मोद्घाटनालप्रदानशापप्रदानमकारचकारादिगालिप्रदानलक्षणास्ताभिर्गृहस्थभाषाभिः 'सर्वं' तपः–कष्टादिकं 'तीइ'त्ति 'तस्याः' नामसाध्व्याः कुरण्डतुल्यायाः 'निरर्थकं' सर्वथा निष्फलमित्यर्थः, ननु साध्वी कलहं करोति १०, १३

प्रत सूत्रांक ॥१३४॥ दीप अनुक्रम [१३४]	मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

साधुः किं न करोति ?, उच्यते–प्रवाहेण स्तोककार्येऽपि रामाः शुनीवत्कलहं निष्पादयन्ति न तथा साधवोऽत आर्याः प्रोक्ता इति ॥ १३४ ॥ अथ कस्मादिदमुद्धरितमिति दर्शयति—

महानिसीहकप्पाओ, ववहाराओ तहेव य । साहुसाहुणिअट्ठाए, गच्छायारं समुद्धियं ॥ १३५ ॥

महा० ॥ श्रीमहानिशीथात्–प्रवचनपरमतत्त्वकल्पात् कल्पात्–बृहत्कल्पलक्षणात् 'व्यवहारात्' परमनिपुणात् तथैव च निशीथादिभ्यः 'साधुसाध्व्यर्थाय' साधुसाध्वीनां हितार्थायेत्यर्थः 'गच्छाचारं' गणाचारप्रतिपादकप्रकीर्णकं सिद्धान्तरूपं 'समुद्धृतं' उत्सर्गापवादनिरूपणेन बद्धमिति ॥ अत्र शिष्यः प्रश्नयति–प्रकीर्णकानामुत्पत्तिः किं गणधरात् गणधरशिष्यात् प्रत्येकबुद्धात् तीर्थकरमुनेर्वा ?, उच्यते–प्रत्येकबुद्धात्तीर्थकरविशिष्टमुनेर्वा, यदुक्तं नन्दिसूत्रे–"से किं तं अंगबाहिरं ?, २ दुविहं पण्णत्तं, तं०–आवस्सयं च १ आवस्सयवइरित्तं च २, से किं तं आवस्सयं ?, २ छविहं पन्नत्तं, तंजहा–सामाइअं १ चउवीसत्थओ २ वंदणयं ३ पडिकमणं ४ काउस्सग्गो ५ पच्चक्खाणं ६, से तं आवस्सयं । से किं तं आवस्सयवइरित्तं ?, आव० दुविहं प०, तं०–कालियं उक्कालियं च, से किं तं उक्कालियं ?, उ० अणेगविहं पं०, तं०–दसवेयालियं १ कप्पिआकप्पियं २ चुल्लकप्पसुयं ३ महाकप्पसुयं ४ उववाइयं ५ रायपसेणियं ६ जीवाभिगमो ७ पन्नवणा ८ महापण्णवणा ९ पमायप्पमायं १० नंदी ११ अणुओगदाराइं १२ देविंदत्थओ १३ तंदुलवेयालियं १४ चंदाविज्झयं १५ सूरपण्णत्ती १६ पोरिसिमंडलं १७ मंडलपवेसो १८ विज्जाचरणविणिच्छओ १९ गणिविज्जा २० झाणविभत्ती २१ मरणविभत्ती २२ आयविसोही २३ वीयरागसुयं २४ संलेहणासुयं २५ विहारकप्पो २६ चरणविही २७ आउरपच्चक्खाणं २८

२०

२५

॥ ४० ॥

२७

	प्रकीर्णक कर्तृ: निर्णय:

मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.....आगमसूत्र-[३०-वृ], प्रकीर्णकसूत्र-[७] "गच्छाचार" मूलं एवं वानर्षिगणि विहिता वृत्तिः

महापच्चक्खाणं २९ एवमाइ, से तं उक्कालियं १। से किं तं कालियं?, २ अणेगविहं पन्नत्तं, तं०–उत्तरज्झयणाइं १ दसाउ २ कप्पो ३ ववहारो ४ निसीहं ५ महानिसीहं ६ इसिभासियाइं ७ जंबुद्दीवपण्णत्ती ८ दीवसागरपण्णत्ती ९ चंदपण्णत्ती १० खुड्डिआ विमाणपविभत्ती ११ महल्लिया विमाणपविभत्ती १२ अंगचूलिआ १३ वंगचूलिआ १४ विवाहचूलिआ १५ अरुणोववाए १६ वरुणोववाए १७ गरुलोववाए १८ धरणोववाए १९ वेसमणोववाए २० वेलंधरोववाए २१ देविंदोववाए २२ उट्ठाणसुए २३ समुट्ठाणसुए २४ नागपरिआवलिआ २५ निरथावलियाउ २६ कप्पिआओ २७ कप्पवडिंसियाओ २८ पुप्फिआओ २९ पुप्फचूलिआओ ३० वण्हीदसाओ ३१, एवमाइआइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवओ अरहओ उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स १ तहा संखिज्जाइं पइन्नगसहस्साइं मज्झिमगाणं जिणवराणं २ चउद्दसपइण्णगसहस्साणि भगवओ वद्धमाणसामिस्स ३, अहवा जस्स जत्तिआ सीसा उप्पत्तिआए १ वेणइआए २ कम्मिआए ३ पारिणामिआए ४ चउविहाए बुद्धीए उववेआ तस्स तत्तिआइं पइण्णगसहस्साइं १ पत्तेअबुद्धावि तत्तिआ चेव से तं कालिअं, से तं आवस्सयवइरित्तं, से तं अणंगपविट्ठं" अत्र 'एवमाइयाइं' इत्याद्यंशस्य वृत्तिः 'एवमाइयाइ' इत्यादि, कियन्ति नाम नामग्राहमाख्यातुं शक्यन्ते प्रकीर्णकानि? तत एवमादीनि चतुरशीतिप्रकीर्णकसहस्राणि भगवतोऽर्हतः श्रीऋषभस्वामिनस्तीर्थकृतः १, तथा सङ्ख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमानामजितादीनां जिनवरेन्द्राणां, एतानि च यस्य यावन्ति तस्य तावन्ति प्रथमानुयोगतो वेदितव्यानि २, तथा चतुर्दश प्रकीर्णकसहस्राणि भगवतोऽर्हतो वर्द्धमानस्वामिनः ३, इयमत्र भावना–इह भगवत ऋषभस्वामिनश्चतुरशीतिसहस्रसङ्ख्याः श्रमणा आसीरन्, ततः प्रकीर्णकरूपाणि चाध्ययनानि

५

१०

१४

कालिकोत्कालिकभेदभिन्नानि सर्वसङ्ख्यया चतुरशीतिसहस्रसङ्ख्यान्यभवन्, कथम्? इति चेदुच्यते, इह यद् भगवदर्हदुपदिष्टश्रुतमनुसृत्य भगवन्तः श्रमणा विरचयन्ति तत्सर्वं प्रकीर्णकमुच्यते, अथवा श्रुतमनुसरन्तो यदात्मनो वचनकौशलेन धर्मदेशनादिषु ग्रन्थपद्धतिरूपतया भाषन्ते तदपि सर्वं प्रकीर्णकं, भगवतश्च ऋषभस्वामिन उत्कृष्टा श्रमणसम्पदासीत् चतुरशीतिसहस्रप्रमाणा ततो घटन्ते प्रकीर्णकान्यपि भगवतश्चतुरशीतिसहस्रसङ्ख्यानि १। एवं मध्यमतीर्थकृतामपि सङ्ख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि भावनीयानि २। भगवतस्तु वर्द्धमानस्वामिनश्चतुर्दश श्रमणसहस्राणि तेन प्रकीर्णकान्यपि भगवतश्चतुर्दश सहस्राणि ३। अत्र द्वे मते–एके सूरयः प्रज्ञापयन्ति–इदं किल चतुरशीतिसहस्रादिकमृषभादीनां तीर्थकृतां श्रमणपरिमाणं प्रधानसूत्रविरचनसमर्थान् श्रमणानधिकृत्य वेदितव्यं, इतरथा पुनः सामान्यश्रमणाः प्रभूततरा अपि तस्मिन् २ ऋषभादिकाले आसीरन् १। अपरे पुनरेवं प्रज्ञापयन्ति–ऋषभादितीर्थकृतां जीवतामिदं चतुरशीतिसहस्रादिकं श्रमणपरिमाणं, प्रवाहतः पुनरेकैकस्मिन् तीर्थे भूयांसः श्रमणा वेदितव्याः, तत्र ये प्रधानसूत्रविरचनशक्तिसमन्विताः सुप्रसिद्धास्तद्गता अतत्कालिका अपि तीर्थे वर्त्तमानास्तेऽत्राधिकृता द्रष्टव्याः २। एतदेव मतान्तरमुपदर्शयन्नाह—'अहवे'त्यादि, अथवेति प्रकारान्तरोपदर्शने यस्य ऋषभादेस्तीर्थकृतो यावन्तः शिष्यास्तीर्थे औत्पत्तिक्या १ वैनयिक्या २ कर्मजया ३ परिणामिक्या ४ चतुर्विधया बुद्ध्या उपेताः–समन्विता आसीरन् तस्य ऋषभादेस्तावन्ति प्रकीर्णकसहस्राणि अभवन्, प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्त एव २। अत्रैके व्याचक्षते–इह एकैकस्य तीर्थकृतस्तीर्थेऽपरिमाणानि प्रकीर्णकानि भवन्ति, प्रकीर्णककारिणामपरिमाणत्वात्, केवलमिह प्रत्येकबुद्धरचितान्येव प्रकीर्णकानि द्रष्टव्यानि, प्रकीर्ण-

२०

२५

॥ ४१ ॥

२८

कंपरिमाणेन प्रत्येकबुद्धपरिमाणप्रतिपादनात्, स्यादेतत् प्रत्येकबुद्धानां शिष्यभावो विरुध्यते, तदेतदसमीचीनं, यतः प्रव्राजकाचार्यमेवाधिकृत्य शिष्यभावो निषिध्यते न तु तीर्थकरोपदिष्टशासनप्रतिपन्नत्वेनापि ततो न कश्चिद्दोषः, तथा च तेषां ग्रन्थः–"इह तित्थे अपरिमाणा पइन्नगा पइण्णगसामिअपरिमाणत्तणओ, किंतु इह सुत्ते पत्तेयबुद्धपणीयं पइण्णगं भाणियव्वं, कम्हा ?, जम्हा पइण्णगपरिमाणेण चेव पत्तेयबुद्धपरिमाणं कीरइ, भणियं–'पत्तेयबुद्धावि तत्तिया चेव''त्ति, चोयग आह–नणु पत्तेयबुद्धा सिस्सभावो य विरुज्झए ?, आयरिओ आह–तित्थगरपणीयसासणपडिवन्नत्तणओ तस्स सीसा हवंती''ति। अन्ये पुनरेवमाहुः–सामान्येन प्रकीर्णकैस्तुल्यत्वात् प्रत्येकबुद्धानामत्राभिधानं नतु नियोगतः प्रत्येकबुद्धरचितान्येव प्रकीर्णकानीति, 'सेत'मित्यादि, तदेतत्कालिकं, तदेतदावश्यकव्यतिरिक्तं, तदेतदनङ्गप्रविष्टमिति १३५ ॥

पढंतु साहुणो एयं, असज्झायं विवज्जिउं। उत्तमं सुयनिस्संदं, गच्छायारं सुउत्तमं ॥ १३६ ॥

पढंतु० ॥ 'पठन्तु' व्यक्तवाचा सूत्रतोऽर्थतश्च कण्ठगतं कुर्वन्तु 'साधवः' मोक्षसाधनतत्परमुनयः, उपलक्षणत्वात् साध्व्योऽपि, ननु यदुक्तं साधुसाध्व्य एव पठन्ति किं श्राद्धादयो न सिद्धान्तं पठन्ति ?, उच्यते, न पठन्त्येव, यदुक्तं श्रीनिशीथसूत्रस्यैकोनविंशतिकोद्देशकप्रान्ते"जे भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा वाएइ वाएंतं वा साइज्जइ" अस्य चूर्णिः–गिही अण्णतित्थिया वा ण वाएयव्वा, इत्थ दसमउद्देसाओ अत्थो जहा–अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा वायति अण्णतित्थिगा अण्णतित्थिणीओ अहवा गिहत्था गिहत्थीओत्ति, भवे कारणं वाएज्जावि, 'पव्वज्जाए'

गाहा, गिहि अण्णपासंडिया पवज्जाभिमुहं सावगं वा छज्जीवणियंति जाव सुत्तत्थो अत्थओ जाव पिंडेसणा, एस गिहत्थाइसु अववाओ"त्ति । तथा 'एयं'ति एनं गच्छाचारं पूर्वोक्तशब्दार्थं, किं विधाय ?–'अस्वाध्यायं' अपठनप्रस्तावं स्थानाङ्गोक्तं 'वर्जयित्वा' परित्यज्य, स्थानाङ्गोक्ता अस्वाध्याया यथा–"दसविहे अंतलिक्खिए असज्झाइए पण्णत्ते, तंजहा–उक्कावाए १ दिसिदाहे २ गज्जिए ३ विज्जुए ४ निग्घाए ५ जूवए ६ जक्खालित्तए ७ धूमिय ८ महिया ९ रयउग्घाए १०" इदं सूत्रम्, अस्य वृत्तिः–'अंत०' आकाशभवं 'अस०' अवाचनादि दिग्विभागे महानगरप्रदीपनकमिव य उद्द्योतो भूमावप्रतिष्ठितो गगनतलवर्त्ती स दिग्दाहः २, 'निर्घातः' साभ्रे निरभ्रे वा गगने व्यन्तरकृतो महागर्जितध्वनिः ५, सन्ध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च यत्र युगपद् भवतस्तत् जूयगोत्ति भणितं, सन्ध्याप्रभाचन्द्रप्रभयोर्मिश्रत्वमिति भावः, तत्र चन्द्रप्रभावृता सन्ध्याऽपगच्छतीति । श्रुतस्य–महानिशीथकल्पादेः सिद्धान्तस्य निःस्यन्दं–सारभूतं बिन्दुभूतं वा सुष्ठु–अतिशयेन उत्तमं 'सूत्तमं' प्रधानतमं तदुक्तक्रियाकरणेन मोक्षगमनहेतुत्वादिति ॥ १३६ ॥ किञ्च—

गच्छायारं सुणित्ताणं, पढित्ता भिक्खु भिक्खुणी । कुणंतु जं जहाभणियं इच्छंता हियमप्पणो ॥ १३७ ॥

गच्छा० ॥ एनं 'गच्छाचारं' सत्साधुगणमर्यादारूपं 'श्रुत्वा' सद्गुरुभ्योऽर्थमाकर्ण्य 'पठित्वा' मोक्षमार्गसाधकसाधुपार्श्वे योगोद्वहनविधिना सूत्रं गृहीत्वा 'साधवः' मुमुक्षवः 'भिक्षुण्यः' व्रतिन्यश्च 'कुर्वन्तु' निष्पादयन्तु यद् यथाऽत्र भणितं तत्तथेति 'इच्छन्तः' वाञ्छां कुर्वन्तः 'हितं' पथ्यं, कस्य ?, आत्मनः ॥ १३७ ॥ इति गच्छाचारप्रकीर्णकसूत्रम् ॥

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
s19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम

[भाग-४०] कल्पसूत्र तथा आगम 24,28,30

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“कल्प(बारसा)सूत्रं” मूलं तथा

चतु:शरणं, तंदुलवैचारिकं, गच्छाचार: प्रकीर्णकसूत्रम्”

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“कल्प(बारसा)सूत्रं” मूलं नामेण (तथा)

प्रकिर्णका: [२४,२८,३०] मूलं एवं टीका: (अवचूर्णि:)

“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग-40



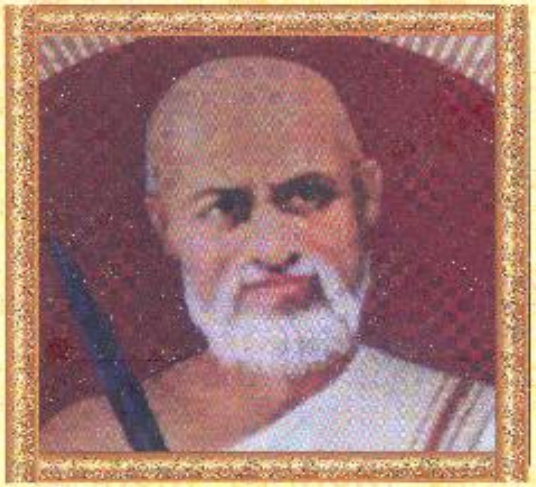
आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

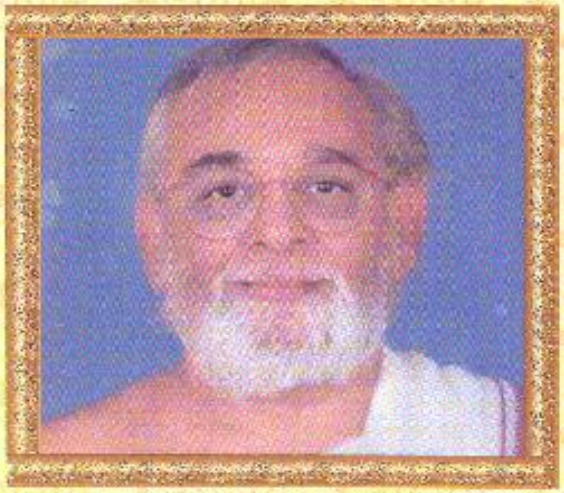
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

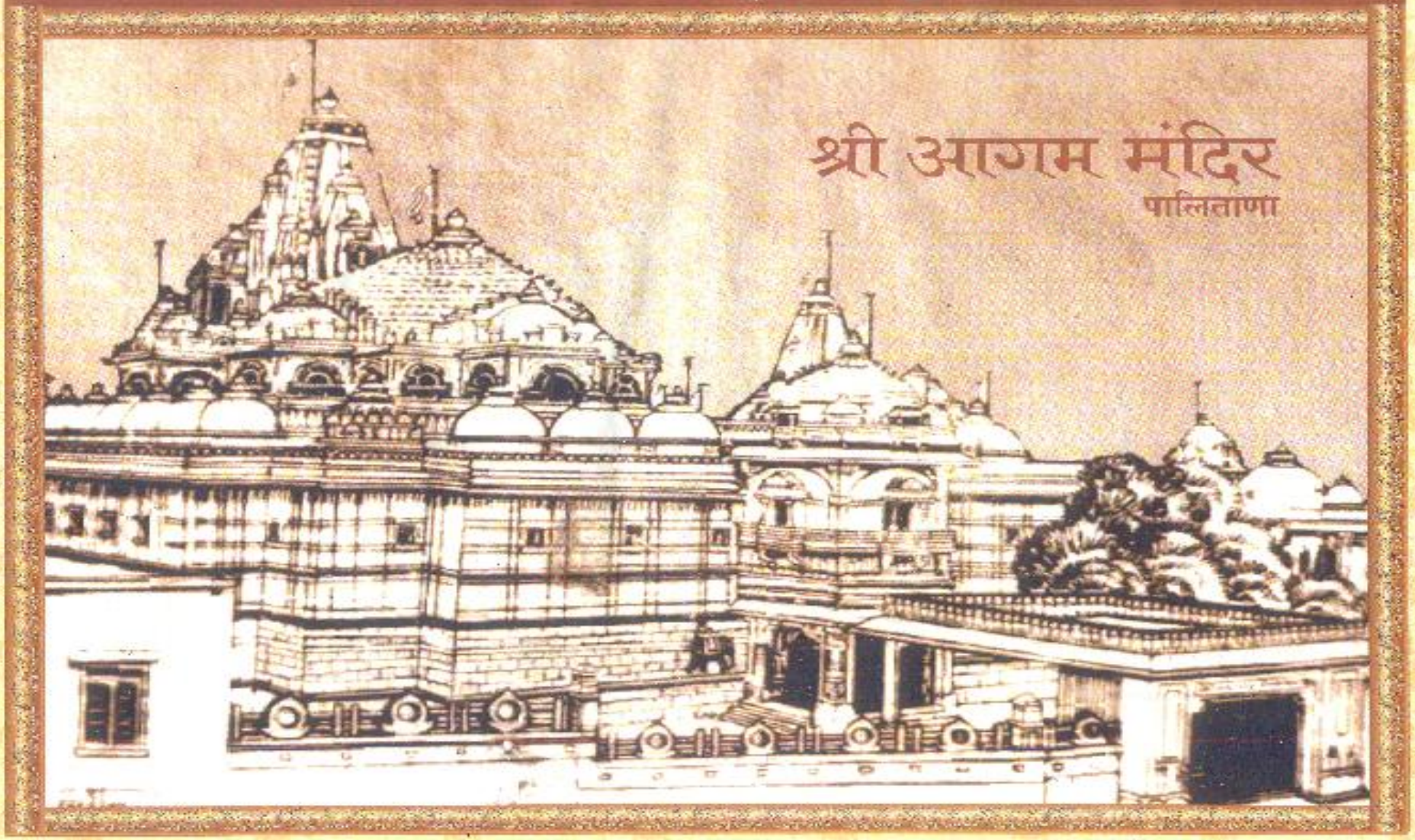
अभिनव-संकलनकर्ता

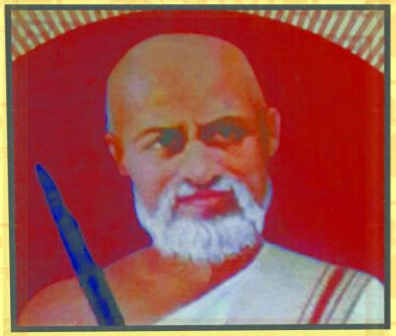


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम ४५

"कल्प(बारसा)सूत्रं" मूलं

२४.चतु:शरण, २८.तंदुलवैचारिक, ३०.गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति:

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

